सम्मेलन-पत्रिका

मास भाद्रपद-आश्विन-कार्तिक २०

अखिल

वाली

पर

हिमा
सिन्धु
बोलत
आचा
हमारी
है, ह
है उस
भाषा
भाषा
नहीं सु
मुहम्म
और ि
लमान
जैसे श

औरंगजे

अखण

भाग २१, संख्या १-२-३ :: भाद्रपद-आश्विन-कार्तिक २००१

सम्मेलन-पत्रिका

हमारी राष्ट्रभाषा*

[श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी]

हिन्दी अकाल-जलदों की उपलवर्षा का परिणाम नहीं है। सरलतम व्याकरण वाली हमारी यह भाषा इतनी सुगम और सुबोध है एवं अपनी बहनों—प्रांतीय भाषाओं से ऐसा घनिष्ट सम्पर्क रखती है कि इसे राष्ट्रभाषा के पद पर बिठाये बिना काम ही न चलता। जो देवनागरी लिपि इसकी प्रमुख प्रचारिका है वह भी अपनी शुद्धता और वर्णमाला की वैज्ञानिकता के कारण माननीय हुई है। सबसे बड़ी बात यह है कि हिमालय की अमल धवल चोटियों का मुकुट धारण करने वाला और गर्जन-गान-रत सिन्धु से पग प्रक्षालित कराने वाला हमारा यह देश चिरन्तन काल से जिस भाषा में बोलता, गाता और गरजता आया है, हिन्दी उसी भाषा का परम्परागत प्रसाद है।

परम्परा का प्रसाद

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "इसका एक-एक शब्द हमारी सत्ता का व्यंजक है, हमारी संस्कृति का संपुट है, हमारी जन्मभूमि का स्मारक है, हमारे हृदय का प्रतिबिम्ब है, हमारी बुद्धि का वैभव है। देश की जिस प्रकृति ने हमारे हृदय में रूप रंग भरा है उसी ने हमारी भाषा का भी रूप रंग खड़ा किया है।" आचार्य कहते हैं, इस भाषा का पहले चाहे जो नाम रहा हो आज इसका नाम हिन्दी है। इतिहास और भाषा विज्ञान के पंडितों ने सिद्ध किया है कि हमारी भाषा का यह रूप भी आज से नहीं मुसलिम शासन काल के भी बहुत पहले से प्रचलित है। यदि ऐसा न होता तो मुहम्मद कासिम, मुहम्मद गौरी और खिलजियों एवं तुगलकों ने हिन्दी को अपने दफ्तरों और सिक्कों में स्थान न दिया होता, खुसरो और जायसी हिंदी में न बोले होते, मुसलमान मित्रों ने इस्लाम के धार्मिक भावों की व्यंजना के लिए 'इन्द्रिय' और 'विकार' जैसे शब्दों से काम न लिया होता।

हम देख रहे हैं कि हिन्दी की यह महत्ता मुगल काल में भी खंडित नहीं हुई। औरंगजेब और मुहम्मदशाह रंगीले की शासन व्यवस्था में भी हिन्दी का स्थान है; रहीम, रसखान और कुतबन आदि हिन्दी में गा रहे हैं और विदेशी पर्यटक गवाही दे रहे हैं कि जनता में संस्कृत निष्ठ नागरी का प्रचार है। मुहम्मदशाह रंगीले के समय में उर्दू का स्वतन्त्र अस्तित्व बना,

अखण्ड ज्योति

*सभापति अखिल भारतीय हिन्दी सा० सम्मेलन जयपूर के भाषण का सारांश।

दिल्ली के शाही दरबार की छाया में 'उर्दू अंजुमन' स्थापित हुई और देश भर में इस गढ़ी हुई भाषा को फैलाने का प्रबल प्रयास किया गया। १८३५ में कंपनी की सरकार ने भी कचहरियों में उर्दू को स्थान दिया परन्तु देश की जनता हिन्दी से विमुख नहीं हो सकी। सैयद इंशा जैसे स्पष्टवादी ने साफ कहा कि उर्दू कुछ अमीरों बेगमों और कसबियों की जबान है अतएव कंपनी सरकार को भी हिन्दी से काम लेना पड़ा। सन् १८८२ में जब प्रथम शिक्षा के सम्बन्ध में भाषा का निर्णय करने के लिए कमीशन बैठा तब सर सैयद अहमदखां ने भी जले भुने शब्दों में स्वीकार किया कि उर्दू 'शिष्टों' और हिन्दी 'गंवारों' की भाषा है। हाईकोर्ट के एक जज आनरेबल सैय्यद महमूद ने कमीशन को सच्चे हृदय से परामर्श दिया कि पश्चिमोत्तर देश में वह हिन्दी का अधिक प्रचार करे और हिसार के एक नायब तहसीलदार हाफिज मुहम्मद अब्दुलरज्जाक ने कहा कि उर्दू बोली की अपेक्षा हिन्दी भाषा बहुत सुगम है। जैसी उर्दू बोली ६ वर्ष में आती है, वैसी हिन्दी भाषा १५ दिन में आ जाती है। पिनकाट साहब ने सात भाषाएं सीख कर केवल हिन्दी को पसन्द किया और सर जान ग्रियर्सन ने लिखा कि बंगाल और पंजाब के बीच में गंगा के क्षेत्र में एक ही हिन्दी भाषा बोली जाती है। सम्पूर्ण उत्तर भारत की भी यही भाषा है। ख्वाजा हसननिजामी ने 'तसलीम' किया कि मध्यप्रदेश, मध्यप्रांत, बिहार और राजपूताने के लगभग डेढ़ करोड़ मुसलमान हिन्दी भाषा के सिवा कोई दूसरी भाषा नहीं जानते। आप जानते हैं कि जनता के हृदय में हिन्दी का यह आदर स्थिर ही नहीं रहा, उत्तरोत्तर बढ़ा है। १९३१ की जनगणना में १० हज़ार में से ७ हज़ार व्यक्ति देवनागरी लिपि या इसके किसी भी प्रकार में लिखी भाषाएं बोलते मिले और बोलने वालों की दृष्टि से हिंदी संसार भर की भाषाओं में तीसरे नम्बर पर स्वीकार की गई। आप यह भी जानते हैं कि आज हिन्दी का यह गौरव और भी उन्नत हो गया है। इस समय काश्मीर से लगाकर कुमारी अंतरीप तक और करांची से लगाकर मणिपुर तक हिन्दी की पताका लहरा रही है, वायु मण्डल में हिन्दी के मीठे बोल ध्वनित हो रहे हैं!

वक्र-कटाक्ष

उचित तो यह था कि सभ्यता के आदि युग से लगाकर अब तक की परम्परा और प्रवाह को सुरक्षित एवं परिचालित रखने वाली, हिन्दुओं और मुसलमानों के आन्तरिक ऐक्य की प्रतीक हिन्दी की यह शक्ति देख कर लोग नतमस्तक हो जाते परंतु नहीं कुछ लोग आज भी अपनी कतरब्यौंत में लगे हैं। मुगलकाल में दिल्ली की 'अंजुमनें उर्दू' ने जो काम अपने हाथ में लिया था आज उसका ठेका भारतीयों के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाली भारत सरकार और उसकी प्रांतीय एवं कुछ रियासती

'पुत्रियों' ने ले रखा है। हिन्दी को नस्यात् कर देने की यह चेष्टा आज एक गहरे षड्यंत्र का आभास देती है अतएव ऐसी आवश्यकता भी जान पड़ती है कि आप इस पर गंभीरता के साथ दृष्टिपात करें।

केन्द्रिय सरकार की कृपाएं ?

भारत सरकार का घोषक आल इण्डिया रेडियो हिन्दुस्तानी की आड़ में एक ऐसी भाषा ठूसने का प्रयास तन मन धन से कर रहा है जो इस देश के अधिकांश निवासियों से कोई संबंध नहीं रखती। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर वह 'आदाब अर्ज' करता है और फिर जो समाचार आदि सुनाता है उसके सब पारिभाषिक शब्द विदेशी भाषाओं से उधार लिए होते हैं। घोषणाएं सब की सब उर्दू में की जाती हैं—मराठी, गुजराती और पंजाबी के कार्यक्रमों की सूचना तक उर्दू में दी जाती है। चिट्ठियों के उत्तरों के लिए भी रेडियो को यही भाषा प्रिय है और स्त्रियों एवं बच्चों का मनोरंजन भी वह इसी भाषा के द्वारा करता है। 'बहन' कहने में उसे लज्जा आती जान पड़ती है. इस लिए 'आपा' की शरण लेता है। संवादों आदि में ८५ प्रतिशत शब्द उर्दू के खजाने से आते हैं और शीर्षकों में भी 'बज्मे-तसव्वर', 'जलीलुल कदर' और 'कैफोनिशात' विराजमान रहते हैं। उच्चारण इतना भ्रष्ट होता है कि भूल चूक से हिन्दी का व्रत, प्रेम, कथन, देश और विदेशी जैसा साधारण शब्द भी आ जाता है तो उसकी कपाल क्रिया हो जाती है। इस देश की सभ्यता और संस्कृति का वह इतना बड़ा जानकार है कि हुमायूं तो फारसी में बोलते हैं परंतु इन्द्र मदन को 'जरा इधर आना' कहकर बुलाते हैं। भगवान शिव के कैलाश में वह 'इश्के पेंचा' तक का आविष्कार कर लेता है और भगवती पार्वती को आज की कालेज गर्ल से पृथक नहीं समझता। युक्त प्रांतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने श्री रविशंकर शुक्ल द्वारा लिखित 'लैंगवेज पालिसी आफ आल इण्डिया रेडियो' नामक एक अध्ययनपूर्ण एवं युक्तियुक्त पुस्तक प्रकाशित की है। रेडियो के अनर्गल प्रलाप का पूरा परिचय इस पुस्तक में है। जिससे यह विश्वास करने में विलम्ब ही न लगेगा कि रेडियो यदि हिन्दी का मित्र हो सकता है तो इसके लिए शत्रु की कोई आवश्यकता नहीं रह गई।

रेडियोकी नीति

डाक विभाग भी भारत सरकार के आधीन है और हिंदी पर उसकी अद्भुत् कृपा से आप सब परिचित हैं। जिन पत्रों पर केवल हिंदी में पता लिखा जाता है उन्हें वह पत्रों के 'मुर्दाघर' में भेज कर मौलवी अब्दुलहक के इस कथन पर अपनी मुहर लगाना चाहता है कि हिंदी तो मुर्दा भाषा है! आश्चर्य यह है कि राजस्थान और संयुक्तप्रान्त के पत्रों के

डाक विभाग की तत्परता

लिये मद्रास का मुर्दाघर चुना गया है ! साधारण पत्रों की जब यह दशा है तब मनी-आर्डरों और रजिस्ट्रियों के सम्बन्ध में क्या कहा जाय। हमारे इस सम्मेलन ने डाक विभाग की इस नीति का विरोध किया है, पंजाब प्रांतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन और केन्द्रीय रक्षा समिति नई दिल्ली ने उसके साथ लम्बा पत्र व्यवहार किया है। प्रांतीय सम्मेलन के अनुरोध से पंजाब के विभिन्न भागों में 'डाक दिवस' मनाया गया है, परन्तु परिणाम नहीं के बराबर ही निकला है। पंजाब प्रांतीय सम्मेलन ने तो डाक विभाग के अधिकारियों से यहां तक कह दिया था कि हमारे कार्यकर्ता तुम्हारे कर्मचारियों को हिन्दी पढ़ाने के लिये प्रस्तुत हैं। अधिकारियों ने कुछ कर्मचारियों के नाम भी भेजे थे, सम्मेलन ने उन्हें हिन्दी पढ़ाने की व्यवस्था भी कर दी थी, परन्तु कार्यकर्ताओं को ज्ञात हुआ कि जिनके नाम आये हैं उनमें से कोई दूसरे डाकखाने में चले गये हैं, और कोई साहब अभी हिन्दी न पढ़ सकेंगे।

भारत सरकार के सूचना और ब्राडकास्टिंग विभाग की ओर से अंग्रेजी पत्रों को ३६१२५४ रुपये के, हिन्दी पत्रों को ५४६१० रुपये के और उर्दू पत्रों को ८५४१४ रुपये के विज्ञापन दिये गये हैं।

पक्षपात के चिह्न

यह समाचार भी आपने सुना ही है कि सिपाहियों को शिक्षित करने के लिये सरकार ने जो योजना बनाई है उसके अनुसार राष्ट्रलिपि के नाम पर रोमनलिपि और राष्ट्रभाषा के नाम पर उर्दू पढ़ाई जा रही है। यह भी आप से छिपा नहीं है कि सन् ४१ की जनगणना में भाषाओं सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने की एक ही नीति नहीं बरती गई, इसीलिए जनगणना की रिपोर्ट से भाषा के प्रश्न का कोई निर्णय कर लेना सरल काम नहीं रह गया। और रुपये में हिन्दी को स्थान नहीं मिला। इन सब बातों से भारत सरकार का वह 'प्रेम' ही टपक रहा है जो वह जनता की भाषा को दे रही है।

प्रान्तों में—

पंजाब अहिंदी प्रान्त नहीं है। हिंदी की ही एक शाखा पंजाबी इसकी मातृभाषा है। यहाँ के हिन्दू सिख संत और कवि शुद्ध हिन्दी में एवं मुसलमान संत और कवि पंजाबी में अपने भावोद्गार प्रकट करते रहे हैं।

पंजाब

मेरे दोस्त मियां बशीर अहमद साहब मानते हैं कि ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ में उर्दू को भी पंजाब की शिक्षा का माध्यम बनाया गया है और यह भी एक तथ्य है कि ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ में ही बन्दोबस्त करने के लिये कुछ लोग यू० पी० से पञ्जाब आये, बन्दोबस्त उर्दू में हुआ और वह अदालती भाषा भी बन गई। १८८० में शिक्षा सम्बन्धी ज़ांच करने के बाद पञ्जाब प्रांतीय कमेटी ने अपनी

रिपोर्ट में लिखा कि सतलज और जमुना के बीच में नागरी में, मध्य पञ्जाब में गुरुमुखी में एवं उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में बिलोची और पश्तो में शिक्षा दी जाय। कमेटी ने यह भी कहा कि उर्दू भाषा फारसीलिपि के स्थान पर देव नागरी लिपि में पढ़ाई जाय तो अधिक सुविधा होगी। इस सत् परामर्श पर कोई ध्यान नहीं दिया इसीलिये यूनिवर्सिटी जाँच कमेटी को हिन्दी उर्दू और पञ्जाबी शिक्षा के माध्यम के रूप में मिलीं और उसने अपनी रिपोर्ट में तीनों भाषाओं को माध्यम के रूप में स्वीकार किया। अब माननीय शिक्षा मंत्री महोदय उर्दू को पञ्जाब की मातृभाषा कहते हैं और एक ही भाषा को—जिसके नाम की माला वे अपने मन में ही जप रहे हैं—शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते हैं। इसीलिये पञ्जाब में लड़कों के लिये जो सरकारी और बोर्डों आदि के स्कूल हैं उनमें हिन्दी माध्यम वाले स्कूलों की संख्या दो-एक उंगलियों पर ही समाप्त हो सकती है। कांगड़ा और अम्बाला डिवीजन में भी उर्दू का बोलबाला है। लड़कियों के स्कूलों में हिंदी माध्यम की सुविधा है परन्तु माननीय मित्रों को वह भी रुचिकर नहीं जान पड़ती। पिछले दिनों में अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा बिल नाम की जो योजना कानून बनी है उसमें सहशिक्षा को स्थान देकर इस सुविधा को भी छीनने की चेष्टा की गई। स्वर्गीय सर सिकन्दर ने हिन्दी प्रेमियों को आश्वासन देते हुए कहा था कि इस कानून में भी पूर्वावस्था स्थिर रहेगी परन्तु यह वचन उनके साथ ही चला गया जान पड़ता है। कठोर सत्य यह है कि जिस व्यक्ति ने स्कूल में अपना बच्चा न भेज कर स्वतंत्र रूप से हिन्दी पढ़ाने की चेष्टा की है उसे जुर्माना हुआ है और शाहपुर में हिन्दी पढ़ने वाली कन्याओं के मार्ग में इस दलील के साथ रोड़ा अटकाया गया है कि उर्दू पढ़नेवाली लड़कियों की संख्या कम है अर्थात् जब तक उनकी संख्या बराबर न हो जाय तब तक हिंदी पढ़ने वाली लड़कियां प्रतीक्षा करें। अब शिक्षा मंत्री महोदय हिंदी को द्वितीय भाषा के स्थान पर देख कर भी पीड़ित होते जान पड़ते हैं और इसे फारसी जैसी धार्मिक भाषा बनाना चाहते हैं। सिकन्दर बलदेव पैक्ट से मिली 'न्यामत' का बटवारा दो वर्ष के बाद जिस प्रकार किया गया है वह क्या इसी चेष्टा का प्रमाण नहीं है? वे यह भी नहीं सोचना चाहते कि यू० पी० और बिहार में उर्दू भाषियों की संख्या थोड़ी है फिर भी वहां उर्दू को शिक्षा और न्यायालय में हिंदी जैसा स्थान दिया गया है। वहां उर्दू के साथ ऐसा ही व्यवहार किया जाय तो क्या हो?

पंजाब यूनिवर्सिटी का नाम पहले ओरियण्टल यूनिवर्सिटी था। जब मैं विद्यार्थी था तब इस नाम की कुछ सार्थकता भी थी। अब यूनिवर्सिटी प्रति वर्ष हिन्दी परीक्षाओं से ५०,६० हजार रुपये पैदा करती है परंतु हिंदी और संस्कृत के साथ जो व्यवहार

करती है वह दुख ही देता है।

सीमाप्रान्त में एक बार हिन्दी और गुरुमुखी पर प्रहार हो चुका है परन्तु वह सफल नहीं हुआ। बिलोचिस्तान के ३४ प्रतिशत व्यक्ति बलोची, २७ प्रतिशत पश्तो, १८ प्रतिशत सिन्धी और ४ प्रतिशत लंहदा बोलते हैं परन्तु वहां की अदालती भाषा उर्दू है। कोयट के एक-दो गर्ल्स स्कूलों को छोड़ दिया जाय तो सब सरकारी स्कूलों में प्रारंभ से उर्दू पढ़ाई जाती है। पांचवीं और छठी में दो भाषाएं पढ़ाई जा सकती हैं परन्तु सातवीं के बाद एक ही भाषा लेनी पड़ती है। पंजाब में बालिकाओं से हिन्दी पढ़ने की सुविधा छीनी जा रही है वह यहां छीन ली गई है। कोयट के बाहर जो बालिका-विद्यालय हैं उनमें लड़कियों को भी उर्दू पढ़नी पड़ती है। सिब्बी और लोरालाई आदि में स्थानीय पंचायतों के ऐसे विद्यालय थे जिनमें बालिकाओं को हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा विभाग ने ऐसी संस्थाओं को अनेक आश्वासन देकर अपनी मुट्ठी में कर लिया है और अब कन्याओं को भी बलपूर्वक उर्दू की शिक्षा दे रहा है। बिलोचिस्तान की राजधानी में दो वर्ष हुए इण्टरमीडियट कालेज खुला है परन्तु संस्कृत और हिन्दी अध्यापक का स्थान अब तक रिक्त है!

(सीमांत और बिलोचिस्तान)

सिंध में वर्नाक्यूलर फाइनल की परीक्षा में बैठने वाले सब विद्यार्थियों के लिए उर्दू अनिवार्य कर दी गई है और हिंदी स्वीकृत भाषा भी नहीं रही। अब देवनागरी लिपि में लिखी 'हिन्दुस्तानी' स्वीकार की गई है परन्तु सरकार हिन्दी के किसी स्कूल को सहायता नहीं देती। करांची कारपोरेशन से कुछ स्कूलों को सहायता अवश्य मिलती है।

(सिन्ध)

बम्बई प्रांत में उर्दू की शिक्षा को कुछ सुविधा दी ही गई है। साथ ही साथ सरकारी हिन्दुस्तानी बोर्ड भी 'हिन्दुस्तानी' के प्रचार के लिए पसीना बहा रहा है। बोर्ड की ओर से 'हिन्दुस्तानी' पाठ्य पुस्तकों की व्यवस्था हुई है और अध्यापकों को शिक्षा देने के लिए एक परीक्षा भी रख दी गई है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले भाग्यशाली ही 'हिन्दुस्तानी' को शिक्षा देने के योग्य समझे जाते हैं। मद्रास आदि में हिन्दी प्रचार सभा को हिंदुस्तानी प्रचार सभा नाम रखने का परामर्श दिया गया है। श्री सैय्यद अब्दुल्ला बरेलवी ने इसी सभा के दीक्षान्त भाषण में यह भी कह दिया है कि उर्दू ही इस राष्ट्र की भाषा होगी। श्री बरेलवी के इस कथन से हिंदुस्तानी का आवरण उतर गया है और उसके प्रचारकों की मनोवृत्ति स्पष्ट हो गई है परंतु मुझे उनके जैसे राष्ट्रवादी को फिसलते देखकर दुख हुआ है। जो भी

(बम्बई प्रांत और दक्षिण भारत)

हो, दक्षिण भारत में अनिष्ट का सूत्रपात्र हो चुका है।

बंगाल के मुसलमान भाई भी संस्कृत निष्ठ बंगला लिखते-बोलते हैं परंतु वहां भी उर्दू ठूंसी जा चुकी है और 'अंजुमने तरक्किए उर्दू' की स्थापना हो चुकी है।

बंगाल आसाम और उड़ीसा

एक ऐसी ध्वनि भी आई है कि उर्दू तो वह भाषा है जिससे बंग भाषा का साहित्य समृद्ध हुआ है। माध्यमिक शिक्षा के लिए जो बिल बना है, उसमें भी उर्दू को ऊपर उठाने की नीति काम कर रही है। आसाम में पादरी बन्धु रोमनलिपि और अंग्रेजी भाषा का प्रचार कर रहे हैं। उड़ीसा की स्थिति और भी विलक्षण हो गई है। एक प्रतिष्ठित दैनिक पत्र के अनुसार उड़िया और उर्दू उड़ीसा की देशी भाषाएं मानी गई हैं और यूनिवर्सिटी ने हिन्दी माध्यम से शिक्षा देने वाली संस्थाओं को सहायता देना बंद कर दिया है। बिरला बंधुओं तथा मारवाड़ी समाज के अन्य दानियोंकी सहायता से संचालित एक कालेज से भी हिंदी शिक्षा की व्यवस्था उठा देनी पड़ी है। उड़ीसा जैसे प्रांत में उर्दू का देशी भाषा बनना इसीलिए संभव माना जा सकता है कि दोनों का प्रारम्भ एक ही अक्षर से होता है।

सीता को बेगम, दशरथ को बादशाह और द्रोणाचार्य को उस्ताद लिख कर जिस हिंदुस्तानी' ने 'यश' प्राप्त किया था और 'माद्री को अपने शौहर के साथ जल मरने' वाली बना दिया था, बिहार में उसकी होली जलाई जा चुकी है। सरकार ने ऐसी हिंदुस्तानी का निर्माण करने वाली कमेटी अब विघटित कर दी है परंतु जन

बिहार

साक्षरता समिति अभी जीवित है और कमेटी के फैलाये हुए विष को हलाहल बनाने में जुटी है। इसी समिति ने संथालों को संथाली भाषा में शिक्षा देने का परामर्श दिया था यह दूसरी बात है कि किसी लिपि विशेष में कोई विशेष संथाली साहित्य नहीं है! यह समिति 'रोशनी' नाम की एक पाक्षिक पत्रिका निकालती है जिसके आधे पृष्ठ देवनागरी में और आधे फारसी में छपते हैं। बिहार हिंदी भाषी प्रांत है, यहाँ के वयस्कों को हिंदी में शिक्षा दी जानी चाहिए परंतु जन साक्षरता समिति फ़ारसी लिपि और हिंदुस्तानी भाषा का प्रचार कर रही है। देवनागरी लिपि को तो उसने यों ही साथ लगा लिया है, इसीलिए फारसी लिपि के साथ वह भी उस लीथो में छपती है जिसमें लिपि का सौन्दर्य तक नष्ट हो जाता है!

विशुद्ध हिंदी भाषी संयुक्तप्रांत के सम्बंध में आप से क्या कहूँ! हिंदुस्तानी की अधकचरी रीडरें अब तक चल रही हैं, अदालतों में भी उर्दू बैठी है। यही नहीं हिंदी पढ़ने वाले लड़कों के लिए उर्दू पढ़ना भी अनिवार्य है और इस वर्ष यह नियम लड़कियों

के लिए भी लागू किया गया था। शिक्षा विभाग जानता था कि उर्दू पढ़नेवाली कन्याओं की संख्या अनुपात में १० प्रतिशत से अधिक नहीं है फिर भी उसने हाथ घुमा कर नाक पकड़ी। प्रबल विरोध के कारण यह आज्ञा स्थगित हो गई है परंतु मेरी समझ में नहीं आता कि शिक्षा विभाग को यह दुष्कर्म करने का साहस कैसे हुआ।

संयुक्त प्रांत

देशी राज्यों पर प्रभाव

भारत की केन्द्रिय और प्रांतीय सरकारों की यह गतिविधि देशी राज्यों को भी प्रभावित कर रही है। शैवों का गढ़ काश्मीर संस्कृत साहित्य और शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र रहा है। १९वीं सदी तक यहां शुद्ध हिन्दी के काव्यों की रचना हुई है। आज भी ४० लाख जनता में से ३७ लाख जो भाषाएं बोलती है, उनमें से चार देव नागरी लिपि में लिखी जाती हैं, एक शब्द भण्डार की दृष्टि से संस्कृत के निकट है और दो हिंदी की शाखाओं से सम्बन्ध रखती है परन्तु राज्य की भाषा और शिक्षा का माध्यम उर्दू है। उर्दू को शिक्षा का माध्यम बनाते समय उसके साथ 'सरल' का विशेषण भी जोड़ा गया था और यह भी कहा गया था कि इस सरल उर्दू की पाठ्य पुस्तकें नागरी और फारसी दोनों लिपियों में छपेगी। नागरी लिपि की पुस्तकें छपने में, न जाने क्यों, असहनीय विलम्ब हुआ और उनका मूल्य भी फारसी लिपि की पुस्तकों से अधिक रखा गया। परन्तु वे पुस्तकें गर्भ में ही रह जातीं तो भी हिन्दी संसार को उतना कष्ट न होता जितना उनके 'दिव्यदर्शन' करने के बाद हुआ है। इनकी सरल उर्दू इतनी 'तरल' (!) है कि मेरे जैसे व्यक्ति को भी इसे समझने के लिए किसी 'उस्ताद' की शरण लेनी पड़ेगी। इनमें नागरी लिपि का वैज्ञानिक क्रम तक उलट दिया गया है, उसे फारसी बनाया गया है और कुछ अक्षर इसलिए निकाल दिए गए हैं कि उनका प्रयोग हिंदुस्तानी में नहीं होता। रियासत की हिंदी भाषी जनता ने जब इन विलक्षण पुस्तकों का विरोध किया तब शिक्षा के मुसलिम संचालक महोदय ने कहा कि ये पुस्तकें तो उनके लिए हैं जो नागरी लिपि में उर्दू पढ़ना चाहते हैं। हिंदी पढ़ाने की पुस्तकें इनसे भिन्न हैं। संचालक महोदय ने जिन पुस्तकों का उल्लेख किया है उनके द्वारा हिंदी एक विषय के रूप में और तीसरी श्रेणी से पढ़ाई जाती है। यहां उन पुस्तकों का संकेत करके एक ऐसी सफाई दी गई है जिसकी कोई तुक नहीं मिलती। मेरा विश्वास है कि काश्मीर के महाराज इस अन्याय के साथ नहीं है, उनके अनुग्रह से हिंदी को सांस लेने का अवसर भी मिल रहा है परंतु एक धार्मिक सम्प्रदाय के बहुमत का तर्क काश्मीर को उर्दू बनाने पर तुल गया है।

काश्मीर

हैदराबाद

दूसरी ओर हैदराबाद है। वहां भी एक धर्म के अनुयायियों का ठोस बहुमत है। भाषाओं की दृष्टि से १४ लाख में से ११ से अधिक व्यक्ति तेलगू, मराठी और कन्नड बोलते हैं। गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी एवं पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी बोलने वालों की संख्या भी दो लाख है परन्तु राज्य की भाषा और प्रारम्भ से ही शिक्षा का माध्यम वह उर्दू है जिसे रियासत के शासक की भाषा होने का गौरव मिल गया है। ८ वर्ष तक निरन्तर आवेदन निवेदन करने के बाद भी हिन्दी को शिक्षा विभाग में स्थान नहीं दिया गया, कहा गया यह तो राज्य से बाहर की भाषा है! रियासत के अधिकारियों ने हिन्दी सम्बन्धी अपनी इस विलक्षण नीति को क्रियान्वित करना भी प्रारम्भ कर दिया है। अखिल भारतीय प्राच्य परिषद के अधिवेशन में हिन्दी को 'नान लोकल लैंगवेजेज' में रखा गया और वायु आक्रमण से बचने के लिये जो सूचनाएं छापी गईं उनमें हिन्दी को स्थान नहीं दिया गया—जिस अंग्रेजी को रियासत के केवल १४००० व्यक्ति जानते हैं, निश्चित रूप से द्वितीय भाषा के रूप में जानते हैं, उसमें तो सूचनाएं छापी गईं परन्तु अन्ततः २ लाख हिन्दी भाषा भाषियों को संकट से बचने की सूचना देना भी उचित नहीं समझा गया! चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य जैसे महानुभाव निजामशाही की प्रशंसा कर सकते हैं परन्तु मैं उनका साथ न दे सकूँ तो वे मुझे क्षमा करें!

राजस्थान

राजस्थान के राज्यों में, जयपुर में आप उपस्थित ही हैं। मेरी सूचना के अनुसार यहाँ हिन्दी और उर्दू को समान अधिकार दिये गये हैं। सर मिर्जा इस्माइल जैसे न्यायप्रिय महामंत्री की उपस्थिति में यदि यह सूचना सत्य निकले तो मुझे प्रसन्नता होगी परन्तु मैं उस लिफाफे को नहीं भूल सकता जो राज्य की ओर से पंजाब प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को प्राप्त हुआ है। लिफाफे पर उर्दू और अंग्रेजी में बहुत कुछ छपा है और उर्दू को प्रमुख स्थान दिया गया है, हिन्दी बिचारी निर्वासित है! अलवर में स्वर्गीय महाराजा साहब के शासन काल में 'राज्यरत्न' 'राज्य प्रिय' 'राज्य मान्य' आदि पदक दिये जाते थे, अब 'अजीजुल सल्तनत' आदि पदक प्रदान किये जाते हैं। राजस्थान के अन्य राज्यों में हिन्दी राज्य भाषा है। परन्तु हिंदी भाषा की उन्नति शिथिल है। विज्ञप्तियों आदि की लिपि तो देवनागरी होती है परन्तु भाषा फारसी आदि के शब्दों से लद जाती है।

ग्वालियर

ग्वालियर की श्रीमंत शिंदे सरकार राज्यभाषा को सरल एवं स्वाभाविक बनाने का स्तुत्य प्रयास कर चुकी है, जनता को इस प्रयत्न से लाभ भी हुआ है परन्तु कुछ बाहरी व्यक्ति इस प्रयत्न को नष्ट करना चाहते हैं, पञ्जाब के मुसलिम पत्रों में भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ

लिखा गया है । श्रीमंत शिंदे सरकार ने संशोधन आदि करने के लिये फिर एक समिति बनाई है । विदेशी शब्दों वाली पहिली भाषा का व्यवहार बंद नहीं हुआ ।

बन्धुओ, उपरोक्त तथ्यों की उपस्थिति में यह निर्णय करना कठिन नहीं है कि उर्दू को सम्पूर्ण भारत-राष्ट्र की भाषा बनाने का प्रयास ही नहीं हो रहा है, उसे काश्मीर, सीमांत, पंजाब, बिलोचिस्तान, सिंध और हैदराबाद की मातृभाषा भी बनाया जा रहा है । इस निर्णय से यह भी समझा जा सकता है कि यह अमल

भाषा और पाकिस्तान

उर्दू प्रेमी मित्रों की ओर से हो रहा है और सत्ता उन्हें प्रसन्न करने के लिये उनकी पीठ थपथपा रही है परन्तु मैं ऐसा नहीं समझता । मेरी नम्र सम्मति में इस व्यापक प्रयास या कूट षडयन्त्र के पीछे उन चतुर राजनीतिज्ञों का हाथ है जो भारतवासियों को अपनी गौरव पूर्ण परम्परा से हटाकर हमें किंभूत किमाकार बनाना और संसार के बूटों के नीचे पिसने के लिए छोड़ देना चाहते हैं । एक विदेशी भाषा और विदेशी लिपि द्वारा वे अपने उद्देश्य को पूर्णतया सिद्ध करने में असफल हो चुके हैं इसीलिए अब इस टट्टी की आड़ में शिकार खेला जाता है । संभव है वे अपने अन्तर में इस लालसा का पोषण भी करते हों कि जब उर्दू के अस्त्र से भारत की परम्परा छिन्न भिन्न हो जायगी तब हम उर्दू को भी पुराने कपड़े की भांति फेंक देंगे । पाकिस्तान के प्रपंच को जिन लोगोंने अपने दुलार से पाला है आज वे भी उसका विरोध कर रहे हैं ! राजनैतिक क्षेत्र का यह नाटक भाषा के क्षेत्र में भी दुहराया जाय तो मुझे कोई आश्चर्य न होगा। उर्दू भाषा के प्रेमियों को इस स्थिति पर विचार करना चाहिए । उन्हें यह भी मान लेना चाहिए कि हिंदी को राष्ट्रभाषा मानने वाले किसी भाषा के विरोधी नहीं हैं । वे प्रत्येक भाषा को अपने स्थान पर मुकुलित और सुरभित देखना चाहते हैं । उर्दू भाषा के प्रेमी उनके सहयोग से चलेंगे तो अपनी स्थिति को सुखद बना सकेंगे । इस सीधी बात को समझने के स्थान पर यदि वे इसी तरह उङ्गलियों पर नाचते रहे और अपनी भाषा को विदेशी शब्दों से लादते रहे तो भविष्य उन्हें अँधेरा गर्त ही देगा । जो भी हो, इस षडयंत्र से राष्ट्रवाणी को ही नहीं, सम्पूर्ण भारत राष्ट्र की परम्परा को भी सुरक्षित रखने का पवित्र उत्तरदायित्व हमारे ऊपर आ गया है और हम प्रत्येक स्थिति में इसका पालन करेंगे ।

स्वाभाविक प्रसार

" प्रसन्नता की बात है कि राष्ट्र के ऊपर एक भाषा लादने का यह षड़यंत्र जनता के हृदय को नहीं छू सका । जनता हिंदी को ही अपने मंदिर में स्थान दे रही है । जिस पञ्जाब में कभी आदरणीय टण्डन जी को हिंदी परीक्षाएं पढ़ाने वाले अध्यापक न

मिलते थे और वे स्वयं पढ़ाने बैठ जाते थे उस पञ्जाब में अब प्रतिवर्ष लगभग आठ हजार विद्यार्थी पञ्जाब विश्व-विद्यालय की परीक्षाओं में बैठते हैं। स्कूलों में हिंदी को माध्यम बनाने वालों और हिंदी भाषा के रूप में लेने वालों की संख्या भी बढ़ रही है। सरगोधा और लायलपुर ने प्रारंभ से ही हिंदी पढ़ाने का प्रण कर लिया है। हिंदी के दो दैनिक प्रकाशित होने लगे हैं। अन्य पत्र पत्रिकाओं के अतिरिक्त एक गंभीर त्रैमासिक का भी उदय हुआ है। अबोहर का साहित्य सदन और हिसार की विद्या प्रचारिणी सभा अपने ढङ्ग से काम कर रही हैं। पञ्जाब प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रांत के हिंदी क्षेत्रों को सुगठित करने में संलग्न है। सम्मेलन के साथ १५० सभाएं सम्बंधित हो गई हैं। इस कार्य में आर्यसमाज और सनातन धर्म दोनों का ही पूर्ण सहयोग है। काश्मीर में जम्मू और श्रीनगर की हिंदी प्रचारिणी सभाएं तथा साहित्य मण्डल से जनता को उचित मार्ग प्रदर्शन मिल रहा है। दो मासिक पत्रिकाओं और एक साप्ताहिक पत्र का सबल अस्तित्व जनता के हिंदी प्रेम का ही परिणाम है। सीमाप्रांत के हिंदी प्रेमी भी करवट ले रहे हैं, आगामी वर्ष में वहाँ भी कुछ संगठित कार्य होगा। बिलोचिस्तान में इस वर्ष राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की परीक्षाओं में १०० से अधिक विद्यार्थी बैठे हैं। सम्मेलन परीक्षाओं में बैठने वालों की संख्या पृथक है। हिंदी प्रचारिणी सभा कोयटा के यत्न से हिंदी प्रेमी संगठित हो रहे हैं और सम्मेलनों एवं उत्सवों आदि के द्वारा राष्ट्र भारती की वंदना कर रहे हैं। हिंदी नाटक का सफल अभिनय तक हो गया है।

(उत्तर भारत का उत्साह)

सिंध, गुजरात, बम्बई और महाराष्ट्र में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की परीक्षाएं सर्वप्रिय हो रही हैं। सिंध के लगभग एक हजार परीक्षार्थी इन परीक्षाओं में बैठने लगे हैं। समिति का एक पत्र भी प्रकाशित होने लगा है और विभिन्न स्थानों में हिंदी के पुस्तकालय भी खुल गये हैं। करांची में सेठ रामप्रसाद खण्डेलवाल ट्रस्ट के आधीन कुछ प्रायमरी विद्यालय भी खुले हैं और वहाँ के निवासी एक हिंदी साप्ताहिक या दैनिक की आवश्यकता अनुभव करते हैं। आर्यसमाज एवं सनातन धर्म से सम्बंधित विविध संस्थाएं एवं मारवाड़ी विद्यालय और प्रियतम धर्म सभा आदि से भी जनता को हिंदी पढ़ने की सुविधा मिलती है। गुजरात में परीक्षार्थियों की संख्या दस हजार से भी अधिक हो गई है और हिंदी के पुस्तकालय खोलने की रुचि बराबर बढ़ रही है। बम्बई में समिति की परीक्षाओं के साथ साथ बम्बई विद्यापीठ की परीक्षाएं भी चलती हैं और दोनों में प्रतिवर्ष ९ हजार से भी अधिक विद्यार्थी बैठते हैं।

(गुजरात महाराष्ट्र में प्रगति)

बम्बई प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन की भी स्थापना हो गई है। मेरे मित्र श्री कन्हैयालाल माणकलाल मुंशी उसके सभापति हैं। एक नया हिंदी दैनिक भी प्रकाशित होने लगा है। एक दैनिक पहले ही से प्रकाशित हो रहा है। महाराष्ट्र में ५०० से अधिक महानुभाव प्रचार और शिक्षण कार्य द्वारा राष्ट्रभाषा की सेवा कर रहे हैं। प्रति वर्ष १०००० से अधिक परीक्षार्थी केवल समिति की परीक्षाओं में बैठते हैं। हिंदी प्रचार संघ पूना की परीक्षाएं भी हैं और इनसे लाभ उठाने वालों की संख्या भी नगण्य नहीं है।

मद्रास प्रांत में महात्मा गांधी ने सन् १९१८ में जो बीजारोपण किया था, वह आज उनके संकल्प की पवित्रता से विशाल वृक्ष हो गया है। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा ने इतने दिन में दस लाख से अधिक व्यक्तियों को राष्ट्रभाषा की शिक्षा दी है और पौने दो लाख व्यक्ति हिंदी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए हैं। १४०० से अधिक भाई राष्ट्रभाषा के प्रचार में संलग्न हैं और इनमें केवल १० उत्तर भारत के निवासी हैं। प्रतिवर्ष लगभग २० हजार परीक्षार्थी सभा के ८०० परीक्षा केन्द्रों में बैठते हैं। दक्षिण भारत के सब विश्व-विद्यालयों में हिंदी को सम्मान पूर्ण स्थान मिला है अतएव लगभग ५०० हाई स्कूल और कालेज हिंदी की शिक्षा दे रहे हैं। सभा ने अब तक इस कार्य पर लगभग १४ लाख रुपया खर्च किया है और वह अधिकांश में दक्षिण भारत से ही प्राप्त हुआ है।

दक्षिण के १० लाख हिन्दी ज्ञाता

हैदराबाद के निवासी परीक्षाओं एवं उत्सवों द्वारा राष्ट्रभाषा के प्रति अपना अनुराग प्रकट कर रहे हैं। निजाम की सरकार ने उन्हें हिंदी शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा नहीं दी, यह कमी हैदराबाद की हिंदी प्रचार सभा पूरी कर रही है। राज्य भर में हिंदी शिक्षा देने के लिये एक व्यापक योजना बन गई है। पन्जाब की रियासतों में मंडी में हिंदी का चमत्कार देख कर आनन्दपूर्ण आश्चर्य होता है, अब नाहन और सोलन नरेश ने भी अपने अपने राज्य की भाषा हिन्दी कर दी है। इंदौर में हिन्दी विश्वविद्यालय की योजना बन ही रही है। अजयगढ़ में श्री लालकवि-स्मारक समिति ने हिन्दी मंदिर, वाचनालय और संग्रहालय की स्थापना की है।

प्रबल उमंग

रेडियो द्वारा जो विष वमन हो रहा है उससे युक्तप्रांत की जनता विशेष रूप से क्षुब्ध हुई है। इस क्षोभ को संगठित करने के लिये युक्त प्रांतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन बड़े बल के साथ क्षेत्र में उतर आया है और प्रत्येक जिले में जिला सम्मेलन बना रहा है। हरिद्वार के हिन्दी साहित्य संघ ने अदालती कागजों को हिन्दी में लिखने का प्रयत्न

तरुणाई का तेज

प्रारम्भ किया है और जाग्रत जनता ने उसे आशीर्वाद दिया है। आशा है कि प्रांतीय सम्मेलन अपने जिला सम्मेलनों को इस उदाहरण का अनुकरण करने की आज्ञा देगा। बिहार का तरुण रक्त सुहृद संघ और छपरा की लोकमान्य समिति के रूप में संगठित होकर हिन्दुस्तानी कमेटी को छिन्न भिन्न कर चुका है। संथालों को रोमन लिपि में शिक्षा देने का प्रयत्न भी सरल हिन्दी प्रेम के सामने परास्त हुआ है। संथालों के लिए अब देवनागरी, बंगला और रोमन लिपि में पुस्तकें छपेंगी। प्रबुद्ध राष्ट्रभाषा प्रेमियों की दृष्टि इस योजना के छिद्र को भी ताड़ रही है और अवसर आते ही उसे बंद कर देगी। आज बिहार की राजधानी से हिन्दी के दो दैनिक प्रकाशित हो रहे हैं और दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में सफल हैं। मध्य भारत एवं मध्यप्रांत की प्रमुख संस्थाएं धीर एवं जागरुक गति से जनता के अन्तर में बढ़ी हुई साहित्यिक प्यास को तृप्त करने में सफल हो रही हैं।

बंगाल के निवासियों में, जिनमें छोटे नगरों तथा गांवों के निवासी अधिक हैं, राष्ट्रभाषा पढ़ने की इच्छा निरन्तर बढ़ रही हैं। पूर्वभारत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा उन्हें सुविधा पहुँचाने का प्रयास कर रही हैं। उत्कल में परीक्षार्थियों की संख्या सहस्रों की सीमा में नहीं पहुँची परन्तु अन्य साधनों द्वारा जनता राष्ट्रभाषा के निकट आ रही है। हिन्दी नाटकों के अभिनय तक वह विशेष रुचि के साथ देखती है।

मणिपुर, सिक्कम और चीन

आसाम की स्थिति और भी उत्साहप्रद है। वहां के हिन्दू मुसलमान, बच्चे और बूढ़े एक साथ बैठ कर एक ही लगन से हिन्दी की शिक्षा ले रहे हैं। इनकी संख्या अब प्रतिवर्ष दस हजार तक पहुँच गई है। हाई स्कूलों की ५वीं, छठीं और सातवीं श्रेणी में हिन्दी पढ़ाई जाती है। शिक्षा विभाग जनता की बढ़ती हुई आकांक्षा देख कर हिन्दी को अनिवार्य करने के लिये भी तत्पर हो रहा है। मणिपुर के पुरातन राज्य में भी राष्ट्रभाषा के प्रचार का एक सुगठित केन्द्र खुल गया है परन्तु राष्ट्रवाणी का प्रसार यहीं तक सीमित नहीं है। सिक्कम में भी हिन्दी के वाचनालय और पुस्तकालय की स्थापना हुई है एवं प्रचार कार्य होने लगा है। यही नहीं चीन की राष्ट्रीय सरकार ने चुकिंग में पूर्वी भाषाओं का जो विद्यालय स्थापित किया है उसमें हिन्दी को सम्मानपूर्ण स्थान दिया है और हमारे एक विद्वान् वहां पहुँच गये हैं।

साहित्यकारों से निवेदन

मित्रो, प्रगति के ये चिह्न और प्रमाण हमारे उस लक्ष्य की ओर संकेत ही करते हैं जो अभी बहुत दूर है और जिसे हमें प्राप्त करना ही है। अतएव हमें अपनी त्रुटियां भी देखनी हैं और अपना बल भी बढ़ाना है। आज वर्तमान विश्व युद्ध के

कारण संसार की राजनीति में जो विस्मयकारी परिवर्तन हो रहे हैं उनको देखते हुए यह कहना कठिन है कि कल क्या होगा। संहारकारी विज्ञान के

शक्ति की माँग

इन प्रयोगों ने मनुष्य की शक्ति को कितना तुच्छ बना डाला है, साथ ही साथ मनुष्य को कितना बल भी दिया है। यह देख कर तो ऐसा मालूम होता है कि हम न जाने कहां जा रहे हैं। इस स्थिति ने मनुष्य को विकल कर दिया है। इस समय जो नये २ शब्द, नई नई विचार धारायें और उनके नये नये प्रयोग हमारे सामने आ रहे हैं उन्हें देख कर भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। हमारी भाषा में इतनी शक्ति है, हमारी संस्कृति में इतना बल है कि वह उन्हें पचा कर अपने योग्य बना लेगी। और मुझे तो यह विश्वास है कि मेरे देश की संस्कृति छिन्न भिन्न हो कर भी अपनी आत्मा को कभी खो नहीं सकी, उसका गौरव अक्षुण्ण रहा है। जैसे ईरान के फूलों से मेरे देश के उद्यान सजे हैं उसी प्रकार इन विचारों से भी देश का साहित्य समृद्ध होगा। साहित्य एक नदी की तरह है जो मैदानों की भांति देश के प्राणियों के मस्तिष्कों का सिंचन करता है। हमें नवीन से घबराना न चाहिए, वह तो जीवन है और मैं इसी प्रकार का जीवन चाहता हूँ। इसीलिए हमें अपने युग निर्माता साहित्यकारों की सेवा में निवेदन करना है कि हिन्दी साहित्य में भारत की अपनी विशेषता सुरक्षित रहनी ही चाहिए और आज के मनुष्य को निराश करने की आवश्यकता भी नहीं है। आप उसे वह उत्साह, वह साहस और वह शक्ति दीजिये जिससे वह रक्तिम मेघों की छाया में निरन्तर बढ़ने वाली विभीषिका के साथ अनवरत संग्राम कर सके। हमें उनसे यह भी निवेदन करना है कि केवल मनोरंजन के लिये हलका साहित्य प्रस्तुत करना साहित्यकार के गौरव की रक्षा नहीं करता। हमें साहित्य के पाठकों से भी कहना है कि वे कला का मूल्य देना सीखें—अधिक से अधिक मूल्य देना सीखें जिससे साहित्यकार दस के स्थान पर एक ही रचना दे और वह एक ही रचना भारती का एक विशेष आभरण हो जाय। हिन्दी में प्रत्येक विषय की ऊँची से ऊँची शिक्षा देने वाले साहित्य का निर्माण भी हमारे सामने एक प्रश्न है और हमें वर्षों में नहीं महीनों में उसका पूर्ण उत्तर देना है। यह भी सोचना है कि इस कार्य के लिये कोई कोष स्थापित किया जाय तो क्या यह उपयोगी होगा।

हमारी पत्रकार कला में आदर्श के स्थान पर व्यापार का प्रभाव बढ़ रहा है। हमें यह सदा स्मरण रखना है कि हमारे आदर्श पत्रकार अपने रक्त से इस क्षेत्र को सींच गये हैं। प्रादेशिक बोलियों में शिक्षा देने का प्रश्न भी उठा

प्रादेशिक बोलियाँ

है। इस विषय में कुछ विवाद भी हो रहा है परन्तु दोनों पक्षों

की शुभ कामनाओं में मेरा विश्वास है । और मैं इस दिशा में सतर्क रहने की प्रार्थना करता हूँ कि भावी संतति के लिये हम कोई संकट मोल न लें लें। जनपदों और प्रान्तों के संगठन का प्रश्न दूसरे रूप में भी देखा जा सकता है । और वह अधिक निर्दोष भी हो सकता है । .

सबसे बड़ी बात यह है कि हमें राष्ट्रभाषा के प्रसार-पथ को निष्कंटक रखना है । इस सम्बन्ध में मुझे कृपालुमित्रों ने कई परामर्श दिये हैं । इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन यह है कि सबसे पहले केन्द्रीय एवं प्राँतीय सम्मेलनों को आर्थिक एवं संगठन की दृष्टि से सुदृढ़ बनाया जाय । मुझे बताया गया है कि सम्मेलन के दिल्ली अधिवेशन में ७ लाख रुपये का एक स्थायी कोष बनाने का निश्चय आप कर चुके हैं । आज उस निश्चय को हम प्रण के रूप में ग्रहण करें और यहीं से कार्य प्रारम्भ कर दें । अपने संगठन को दृढ़ करने के लिए हम सम्मेलन के साथ सम्बन्धित संस्थाओं की स्थिति पर अच्छी तरह विचार करें । केन्द्र के साथ प्रान्तीय सम्मेलनों को और प्राँतीय सम्मेलनों के साथ स्थानीय संस्थाओं को ही सम्बद्ध करें । केन्द्रिय सम्मेलन के अन्तर्गत एक ऐसी शाखा स्थापित की जाय जो कम से कम ५० निस्वार्थ हिन्दी सेवकों का दल तैयार करे और सम्मेलन पत्रिका को अधिक व्यापक एवं प्रभावशाली बनाया जाय । मेरी सम्मति से पत्रिका को साप्ताहिक और मासिक दो रूपों में प्रकाशित करना चाहिए । प्रचार सम्बन्धी सामग्री के लिये साप्ताहिक और साहित्यिक प्रगति के लिए मासिक उचित रहेगी । अखिल भारतीय हिन्दी विश्वविद्यालय की योजना को भी हमें कार्य-रूप देना होगा ।

हमारे सामने जो बड़ी-बड़ी बाधाएँ हैं उनमें से आल इण्डिया रेडियो की हिन्दीघाती नीति को मैं सबसे पहले ले लेना चाहता हूँ। आप स्वीकार करें तो किसी निश्चित तिथि को अखिल भारतीय रेडियो विरोधी दिवस मनाया जाय । इस दिन सम्पूर्ण भारत में विरोध सभाएँ हों, सब हिन्दी-हितैषी पत्र अपने-अपने विशेष संस्करण प्रकाशित करें और रेडियो के श्रोता एवं वक्ता व्यक्तिगत रूप से रेडियो के कर्मचारियों को पत्रों द्वारा अपने मत भेजें ।

———

राष्ट्रभाषा हिन्दी[1]

[श्री कन्हैयालाल माणकलाल मुन्शी]

उद्गम और विकास

राष्ट्रभाषा राष्ट्र की वह भाषा नहीं है, जो राष्ट्र अपने साहित्य की अभिव्यक्ति के लिये उपयुक्त करता है। राष्ट्रभाषा का आज जो स्वरूप है, उसके अनुसार वह राष्ट्रीय व्यवहार की भाषा व राष्ट्रीय संगठन का साधन हो सकती है। उसको अपनाने से राष्ट्र अधिक शक्तिशाली बनेगा व संगठित स्वरूप को प्राप्त होगा।

हिन्दी भारत का स्वभावसिद्ध व न्याययुक्त अन्तर्प्रान्तीय माध्यम है। उसने यह स्थान राजनैतिक प्रचार या धार्मिक उत्साह के कारण प्राप्त नहीं किया है। ऐतिहासिक, सामाजिक व सांस्कृतिक शक्तियों ने, जो कि दीर्घकाल से क्रियाशील थीं, बहुत सी भाषाओं में से उसे यह उन्नत स्थान प्राप्त कराया है।

भारत के जीवन में मध्यदेश ने जो महान् स्थान प्राप्त किया है, वह इसका पहिला कारण है। साम्राज्य की राजधानी कन्नौज के राजकवि राजशेखर ने इ. स. ९१५ में मध्यदेश को परिभाषित किया। बनारस इसका पूर्व बिन्दु था। पंजाब के कर्नाल जिले का पृथूदक अथवा पेहोवा इसकी उत्तरीय व आबू पर्वत पश्चिमीय सीमा था। दक्षिण में इसका विस्तार नर्मदा तक था। इतिहास के प्रारभ होने के कितने ही पूर्व वहां की भाषा के विभिन्न रूप ठीक गोदावरी के तट तक बोले जाते थे। अशोक के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि देहरादून से बम्बई के निकटवर्ती सोपारा तक जो बोलचाल की भाषाएँ थीं वे उसी भाषा के विभिन्न स्वरूप थीं। इनमें से मध्यदेश की भाषा संस्कृत बन गई, जिसका प्रयोग वहां के सुसंस्कृत लोग करते थे।

विभिन्न ऐतिहासिक युगों में प्रत्येक प्रान्त में बोलचाल की भाषा -- प्राकृत व अपभ्रंश— संस्कृत के शब्दकोश, रचना व सौन्दर्य को ग्रहण करने से विकसित हुई। उन सब में मध्यदेशवर्ती आर्यों की भाषा शौरसेनी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थी। पश्चात्, गोदावरी के उत्तरवर्ती प्रदेश में गौण बोली के रूप में अपभ्रंश के चार विभिन्न स्वरूप बोले जाने लगे; मध्यदेश में शौरसेनी, बिहार में मागधी, नर्मदा के दक्षिण में महाराष्ट्री व उत्तर में पैशाची। इन सब में शौरसेनी अपभ्रंश सर्वाधिक प्रभावशाली थी। वह संस्कृत के निकटतम थी, व अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार का माध्यम बन गई। इस प्रकार

---

[1] हिन्दी साहित्य सम्मेलन जयपुर के राष्ट्रभाषा परिषद के सभापति श्री मुन्शी के भाषण का सारांश।

१३ वीं सदी के अन्त तक संस्कृत शिष्टसमाज की भाषा थी व शौरसेनी अपभ्रंश या उसका कोई परिवर्तित स्वरूप कृष्णा के उत्तर में काठियावाड़ से आसाम तक समस्त भारत में लौकिक व्यवहार व साहित्य के माध्यम के रूप में प्रचलित था, जिसकी साक्षी राजशेखर (इ० स० ६१५) देता है। उत्तर भारत की परस्पर सम्बन्धित सब भाषाएँ-यथा पञ्जाबी, हिन्दी, बङ्गाली, मराठी, गुजराती व मारवाड़ी-संस्कृत के रचनात्मक व समृद्धिदायी प्रभाव के परिणाम-स्वरूप अपभ्रंश से उत्पन्न हुईं। दक्षिण भारत से व्यवहार केवल संस्कृत के द्वारा होता था, जो कि समस्त देश में शिष्टसमाज का माध्यम थी।

मध्यदेश की भाषा को महत्त्व प्राप्त होने का दूसरा कारण यह था कि देश का वह भाग भारतीय संस्कृति का जन्मदाता समझा जाता था। अत्यन्त ही प्राचीन काल से तो ईसा की तेरहवीं सदी तक बनारस, कन्नौज, उज्जैन व श्रीमाल महान् विद्या-केन्द्र थे, जहां से समस्त देश में सांस्कृतिक प्रभाव का प्रसार होता था। गंगा समस्त भारतीयों की जीवित माता थी। तंजौर के सम्राट् राजेन्द्र चोल (इ० स० १०१२-१०४४) प्रति दिवस गंगा से जल मँगवाते थे, इसी प्रकार काठियावाड़ में सोमनाथ की मूर्ति भी प्रति दिवस उसी जल से धोई जाती थी।

मध्यदेश के लोग, जैसा कि राजशेखर ने कहा है, देश की सब भाषाओं में निष्णात थे। वहाँ के कवि सर्वोत्तम थे। कन्नौज, जिसका नाम महोदय रखा गया था तथा जो इ० स० ५४०-१००० के मध्य भारत की राजधानी रहा, भारतीय संस्कृति का आदि स्रोत था। सब दिशाओं का मापन वहीं से होता था। कवि कहता है—'अन्य देशों की स्त्रियों को महोदय की स्त्रियों की वेश-भूषा, भाषा आदि का अनुकरण करना चाहिये।' पाञ्चाल देश के निवासी आर्यावर्त के भूषण थे। उन्हें सुन्दर व नयी साहित्यिक कृतियें पसन्द थीं। वहां के कवियों की रचनाएँ सुन्दर होती थीं। उनका कवितापाठ मधु के समान मीठा रहता था।

राजनैतिक दृष्टि से महाभारत-युद्ध के समय से भारत का इतिहास मध्यदेश की परिस्थितियों द्वारा विशेषतया प्रभावित हुआ था। ऐतिहासिक युग में मध्यदेश के साम्राज्य देशभर में शक्तिशाली थे। प्रथम साम्राज्य का शासन ई० पू० ६००-६९ वर्ष के मध्य पाटलीपुत्र से होता था व दूसरा साम्राज्य ई० स० ३२०—५५० के मध्य गुप्तों का था; व अन्तिम ई० स० ५००—१००० के मध्य कन्नौज-साम्राज्य था, जो ई० स० ८००—९५० के मध्य प्रतीहारवंशीय गुर्जर-सम्राटों के समय अपनी चरम-सीमा को पहुँचा था। ईसा की १४ वीं सदी तक कृष्णा के उत्तर में इन साम्राज्यों के अन्तर्गत भूप्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तराधिकारी का कोई न कोई रूप व्यवहार

के माध्यम के रूप में प्रचलित था, व विद्यापीठ, न्यायालय, संस्कृति तथा धर्म की भाषा संस्कृत थी। मध्यदेश के बाहर पञ्जाब, काश्मीर, बिहार, बङ्गाल, आसाम में व कृष्णा के दक्षिण तटपर बोली जानेवाली भाषाएँ या तो मध्यदेश की भाषा से सम्बन्धित थीं या संस्कृत भाषा के साधारण तत्त्वों का विकास कर समृद्धिशाली बनीं।

मुसलमानी शासन में उर्दू

अलाउद्दीन खिलजी ने १४ वीं सदी में जब दिल्ली में साम्राज्य का केन्द्र स्थापित किया तब फ़ारसी मुस्लिम साम्राज्य व प्रान्तीय न्यायालयों की भाषा बन गई। दो नये तत्त्वों ने अस्तित्व धारण किया। प्रथम, उन भूप्रदेशों के हिंदूराजाओं द्वारा उदार आश्रय प्राप्त करने वाले संस्कृत-विश्वविद्यालयों को नष्ट किया गया व विद्वान् लोग ग्रामों में भाग गये; वे संस्कृत की सहायता से वहाँ की बोलियों को समृद्ध बनाने लगे। द्वितीय, मुस्लिम राजधानियों के आसपास के भूप्रदेश में बोली जानेवाली भाषा में राजाश्रय के परिणाम-स्वरूप तथा फारसी-भाषा बोलने वाले दर्बारियों व जनसाधारण के मध्य व्यवहार के माध्यम की आवश्यकता-पूर्ति के कारण फारसीशब्द प्रवेश करने लगे। मुस्लिम राजदर्बारों से सम्बन्धित हिंदुओं को राजा या राजकर्मचारियों के कृपापात्र बनने के लिये उनकी भाषा सीखनी पड़ती थी और इस प्रकार वे भारतीय भाषाओं में फारसी-शब्दों का प्रवेश कराने के साधन बन गये। परिणाम-स्वरूप, ईसा की १७ वीं सदी तक हिंदी भाषा में फारसी-शब्द रूढ़ बन गये। एक ओर तुलसी व सूर स्वतंत्रतापूर्वक इन अपनाये हुए फारसी शब्दों का प्रयोग करने लगे, व दूसरी ओर मलिक मुहम्मद जायसी, खानखाना व यारी साहेब के समान लेखकों ने अपनी साहित्यिक कृतियों के लिये हिंदी का प्रयोग किया। किंतु इस प्रकार समृद्ध बनी हुई हिंदी वही भाषा थी जो शौरसेनी अपभ्रंश से सीधी विकसित हुई थी। केवल मुगल-सम्राटों की सेना में इस हिंदी भाषा ने अधिकांश में फारसी शब्दों को ग्रहण किया। इस प्रकार फारसी द्वारा प्रभावित हिंदी या उर्दू का श्रीगणेश हुआ।

अतः हिंदी के दो रूप हैं—अपभ्रंश से निकला हुआ उसका मौलिक रूप व फारसी द्वारा प्रभावित अर्ध-राजकीय रूप। प्रथम रूप जन-साधारण द्वारा प्रयुक्त किया जाने लगा, द्वितीय अर्ध-राजभाषा बन गया।

जब ब्रिटिश-साम्राज्य का सूत्रपात हुआ, तब अंग्रेज़ों ने उत्तरभारत के कुछ भागों में मुगल-शासन की फारसी-परिपाटियों को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया। मुस्लिम सरदारों व मुस्लिम-शासन के अन्तर्गत समृद्धि-प्राप्त हिंदू-परिवारों ने फारसी द्वारा प्रभावित हिंदी को अपना लिया। किंतु फारसी-भाषा-भाषी दर्बारों से संसर्ग स्थापित करने की आवश्यकता अब नहीं रही, अंग्रेज़ी राजभाषा व न्यायालय की भाषा बन गई

व जनता की भाषा में फारसी शब्दों के मिश्रण की स्वाभाविक क्रिया बंद हो गई। विश्व-विद्यालयों में अंग्रेज़ी के साथ साथ संस्कृत का अध्ययन भी प्रारंभ किया गया। इस के परिणाम-स्वरूप हिन्दी पुनः अपने शुद्ध रूप व संस्कृत के सान्निध्य को प्राप्त होने लगी। श्री व्यङ्कटेश नारायण तिवारी ने कुछ महत्वपूर्ण तुलनात्मक अङ्क दिये हैं, जिन से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार फारसीभाषा-भाषी न्यायालयों के लुप्त होते ही फारसी द्वारा प्रभावित हिंदी की लोकप्रियता भी कम हो गई।

पत्रों के ग्राहक

१८९१	उर्दू-पत्र—१६,२५६	६७-१	प्रति शत
,,	ऊँचे हिंदी-पत्र—८०००	३१-९	,,
१९३६	उर्दू-पत्र—१,८२४८५	३६	,,
,,	ऊँचे हिंदी-पत्र—३,२४८८०	६४	,,

व्हर्नेक्यूलर फायनल परीक्षा के परीक्षार्थी

१८९०	उर्दू-पाठी —७७ प्रतिशत
	हिंदी-पाठी—२२-४ ,,
१९३६	उर्दू-पाठी—४१-४ प्रतिशत
	हिंदी-पाठी—५८-६ ,,

प्रकाशित पुस्तकें

१८८९-९०	उर्दू —६५१	६१-२	प्रतिशत
	हिंदी—३६१	३८-८	,,
१९३५-३६	उर्दू —२५२	१०-९	,,
	हिंदी—२१३९	८१-५	,,

यदि संयुक्तप्रांत के न्यायालय ८४ प्रति शत जनता की भाषा को अपने न्याय संगत स्थान से वञ्चित रख फारसी भाषा से प्रभावित हिंदी को अपना माध्यम न बनाते, तो उर्दू का प्रचार बहुत ही कम हो जाता।

संस्कृती करण

अतः, तथाकथित हिंदी व अन्य भाषाओं का 'संस्कृती-करण' बल-प्रयोग की क्रिया नहीं है, वह तो वैदेशिक शब्दों के प्रवेश के बन्द होने पर भाषाओं का पुनः अपनी स्वाभाविक शुद्धता को प्राप्त करना है। हिंदी की संस्कृत से समानता स्वाभाविक व न्यायसंगत है। संस्कृत आधुनिक सर्वाधिक प्रभावशाली भारतीय भाषाओं की जन्मदात्री भाषा का परिपूर्ण रूप है, व उन भाषाओं के पूर्वक्रमागत रूपों में से प्रत्येक ने युग प्रतियुग में संस्कृत से समृद्धि प्राप्त की है। आधुनिक हिंदी लेखक व संस्कृत-परिवार की अन्य भाषाओं के लेखक अपने विषय-वैचित्र्य व साहित्यिक समृद्धि के लिये

'संस्कृतीकरण' के पुनरुज्जीवन से सम्बन्धित भाषाशास्त्रीय व साहित्यिक आन्दोलन के ठीक उतने ही ऋणी हैं, जितने कि पाश्चात्य साहित्य के शक्तिवर्धक संसर्ग के।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि —

(१) अत्यन्त ही प्राचीन काल से कृष्णा के उत्तरवर्ती समस्त भारत में उसी भाषा के विभिन्न रूप प्रयुक्त किये जाते थे, जिसका पूर्ण विकसित स्वरूप मध्यदेश की बोलचाल की भाषा में पाया जाता था।

(२) इतिहास के प्रारंभ से मध्यदेश भारतीय राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन में अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण रहा है।

(३) मध्यदेश की सर्वप्रथम बोली ने संस्कृत के रूप में पूर्ण विकास प्राप्त किया और इसीलिये मध्यदेश की बोलियों में संस्कृत के साथ सर्वाधिक समानता थी।

(४) ई० स० १२०० तक संस्कृत राज-भाषा व समस्त भारत के लिये सांस्कृतिक व्यवहार की भाषा थी, और दक्षिण में तो और दो सौ वर्ष तक वह शिष्ट-समाज की भाषा रही।

(५) आज वह पूर्णतया राष्ट्र भाषा हो सकती है, यदि राष्ट्र-भाषा से उस भाषा का तात्पर्य्य हो, जिसकी सांस्कृतिक प्रेरणा भारत के लोगों को एकता के स्वाभाविक बन्धन में बाँध दे।

(६) १९३१ की मनुष्यगणना के अनुसार भारत व ब्रह्मदेश में ३४९८८८००० व्यक्ति भारतीय भाषाओं का प्रयोग करने वाले थे। उनमें से २५,३७१२००० संस्कृत परिवार की भाषाओं के बोलनेवाले, ४६७१८०७० संस्कृत प्रधान द्रविड़ भाषाओं के बोलने वाले व २,१४१२००० संस्कृत मिश्रित द्रविड़ भाषाओं को बोलने वाले थे।

(७) संस्कृत के प्रभाव व मध्यदेश की भाषा से उसकी निकट समानता के कारण वह भाषा कृष्णा नदी के उत्तरवर्ती भारत के व्यवहार का नैसर्गिक माध्यम बन गई है।

(८) आधुनिक हिन्दी मध्यदेश की प्राचीनतम भाषा की उत्तरोत्तर वृद्धिगत अत्रुटित प्रणालिका में विकसित हुई है व इसके शब्द-कोष का प्रयोग उत्तर भारत की सब भाषाओं तथा द्रविड़-भाषाओं द्वारा किया जाता है, जिन्होंने युग प्रतियुग में संस्कृत शब्दों द्वारा अपने को समृद्ध बनाया है।

(९) अतः हिंदी को राष्ट्र-भाषा बनाने की आवश्यकता नहीं है, वह तो पहिले ही से है।

आधुनिक साम्प्रदायिक समस्याओं ने यह भ्रम फैलाया है कि हिंदी का आवश्यकता से अधिक 'संस्कृतीकरण' हो रहा है। किंतु वही स्वाभाविक राष्ट्रभाषा है, क्योंकि उसके स्वर, व्याकरण व शब्दकोष संस्कृत से लिये गये हैं, और संयुक्तप्रांत,

बिहार, नेपाल, बंगाल, आसाम, उड़ीसा, आन्ध्र, तामिलनाड, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, गुजरात व राजस्थान की भाषाओं का भी यही हाल है। उसके संस्कृत-भाषा सम्बन्धी अंश महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक ग्रन्थी के रूप में हैं, जो कि इन प्रांतों के लोगों को एकता के सूत्र में बाँधती है। यही ग्रंथी उसे देश के प्रान्तीय व्यवहार की भाषा बनाती है।

कितनी ही भाषाओं द्वारा नैसर्गिक राष्ट्रभाषा बनने का दावा किया जाता है। इस प्रकार अधिकार जमाने वाली भाषाओं में फारसी भाषा से प्रभावित हिंदी, जिसे उर्दू भी कहते हैं, प्रथम है। इसे कुछ दिनों से अरबी का स्वरूप दिया जा रहा है। जब यह दावा किया जाता है, तब इस बात को भुला दिया जाता है कि राष्ट्रभाषा की आवश्यकता केवल हिंदू-मुस्लिम के पारस्परिक व्यवहार के लिये ही नहीं होती, संस्कृत-परिवार की व संस्कृतमिश्रित प्रान्तीय भाषा-भाषी हिंदुओं के व्यवहार के लिये उसकी विशेष आवश्यकता होती है। प्रत्येक प्रांत के मुसलमान वहां के हिंदुओं के साथ अपनी प्रांतीय भाषा में व्यवहार चला सकते हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक वे एक ही प्रायमरी-स्कूल में पढ़ते थे। आजकल की विकसित उर्दू एक विदेशी भाषा के समान उसी प्रकार उन की समझ में नहीं आ सकती, जैसे कि संयुक्तप्रांत व पञ्जाब के बाहर के अधिकांश लोगों की समझ में नहीं आ सकती।

निजाम अपनी रियासत में उर्दू अनिवार्य्य बना सकता है, जहाँ ९० प्रतिशत व्यक्ति संस्कृत-परिवार या संस्कृत-द्रविड़ परिवार की भाषाएँ बोलते हैं। काश्मीर की राजसत्ता अपनी हिंदूप्रजा को उर्दू द्वारा प्रभावित हिंदी पढ़ने को मजबूर कर सकती है, पञ्जाब की सरकार अपनी कृपा-दृष्टि से उर्दू को हिंदी विद्यार्थियों के लिये शिक्षा का माध्यम बना सकती है, किन्तु कोई भी राष्ट्र भाषा कृत्रिम दबाव से जनता के ऊपर लादी नहीं जा सकती। भारत के कुछ भागों में सात सौ वर्ष तक मुस्लिम-राज्य के रहते हुए भी भारतीय भाषाओं ने अपनी संस्कृत-आत्मा को सजीव रखा है, और आधुनिक परिस्थितियों के रहते हुए भी वे उसे आगे भी सजीव रखेंगी। भाषा व संस्कृति के नियम इतने दृढ़ हैं कि वे मानवनिर्मित योजनाओं को सफल नहीं होने देंगे।

हिन्दू व मुस्लिम के पारस्परिक व्यवहार के लिये फारसी द्वारा अधिक प्रभावित बोलचाल की हिन्दी अस्तित्व में रहेगी। किन्तु वह समस्त भारतीय माध्यम कदापि नहीं बन सकेगी।

खिचड़ी भाषा

हिंदी व उर्दू के मिश्रण से एक खिचड़ी भाषा विकसित करने का प्रयत्न भी किया जा रहा है और यह कहा जाता है कि इसमें संस्कृत या फारसी-अरबी के लिये

कोई पक्षपात नहीं किया जाता। साधारण अर्थ में हिंदुस्थानी उत्तर के अशिक्षित लोगों के दैनिक व्यवहार की बोली है। जो इसके लिये राष्ट्रभाषा का दावा करते हैं उनके लिये यह भाषा नहीं है, यह एक वृत्ति है, शैली का एक भिन्न रूप। सर्वसाधारण द्वारा सरलता से समझे जाने वाले हिंदी शब्दों के प्रयोग के बदले हिंदी के शब्दकोष को फारसी द्वारा प्रभावित करने का प्रयत्न इसमें स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है।

हिंदी ही एक मात्र भारत की राष्ट्र-भाषा रह सकती है, क्योंकि उसका जन्म एक ऐसी भाषा से हुआ है जिसकी संस्कृत से बड़ी भारी समानता है, उसका पोषण युगयुगांतर में संस्कृत द्वारा ही हुआ है और विकास, समृद्धि, सौंदर्यादि के आवश्यकीय तत्वों के लिये उसे संस्कृत पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यदि वह अपनी भावी शक्ति के लिये संस्कृत से प्रेरणा प्राप्त करे, तो वह भारत की राष्ट्रभाषा, उसकी आत्मा का माध्यम, सौंदर्य का मंदिर, व सांस्कृतिक पैतृक सम्पत्ति की वाणी सहज ही में बन सकती हैं।

उन सब लोगों को, जो राष्ट्र-भाषा के लिये काम करना चाहते हैं, मैं एक चेतावनी देना चाहता हूँ। आज्ञामात्र से भाषाएँ नहीं बना करतीं। हिंदी में संस्कृत शब्द ईंटों के समान नहीं है कि राजनीति या धर्म की आज्ञा पर कुशल इञ्जीनियर द्वारा उनका स्थान-परिवर्तन किया जा सके। वे सजीव प्रतीक के रूप में सब भारतीय भाषाओं में वर्तमान हैं, वे भारतीयों के मानस के साथ में अपरिहार्य्य रूप से परिवीत हो गये हैं। वे सांस्कृतिक मन्तव्यों के प्रतिनिधि हैं, जो स्नायुकेन्द्रों के समान भारत के समस्त समाज के जीवन को धारण करते, उसे प्रोत्साहित करते व शक्ति प्रदान करते हैं। नये शब्द, विदेशी भाषा के शब्द, जो कि ज़बरदस्ती लादे जाते हैं, संगठित स्वरूप नहीं प्राप्त कर सकते। उनका कोई गहरा तात्पर्य्य नहीं होता। रूढ़ फारसी-अरबी शब्दों से मेरा कोई झगड़ा नहीं है। अंतर्प्रान्तीय माध्यम पर अरबी या फारसी समानार्थी शब्दों को लादना भद्दा है व उर्दू नहीं जाननेवाले भारत के लिये निरर्थक है, और जो उसे बोलते हैं उनके लिये घृणास्पद है।

हिन्दी बनाम उर्दू साम्प्रदायिक समस्या

हमें एक क्षण के लिये भी यह न भूलना चाहिये कि देश के सामने जो हिंदी-उर्दू समस्या उग्ररूप धारण किये है, उसका भाषा से कोई सम्बंध नहीं है। वह तो एक साम्प्रदायिक समस्या है, जिसे ज़बरदस्ती भाषा के क्षेत्र में ढकेल दिया गया है। हिंदी व उर्दू के मध्य कृत्रिम समझौता कदापि व्यवहार का सच्चा माध्यम नहीं बन सकता। उर्दू व हिंदी के मध्य तब तक कोई समझौता नहीं हो सकता, जब तक कि दोनों ओर से, न कि एक ओर से, केवल राजनैतिक समझौते की ही नहीं, बल्कि

सांस्कृतिक संश्लेषण की भी, इच्छा प्रदर्शित की जाय। यदि दोनों संस्कृतियों के मध्य की खाई भरी नहीं जा सकती, तो संस्कृत शब्दों को हटाकर हिंदी उर्दू के मध्य किया गया भाषा-संश्लेषण असत्य होगा व वह असफल होना ही चाहिये।

किंतु, जिनके पास संस्कृत की पैतृक सम्पत्ति है, जिनके पास इतिहास द्वारा प्राप्त हिंदी भाषा है, वे हिंदू मुस्लिम समस्या के संतोषपूर्वक हल किये जाने तक ठहर नहीं सकते। हिंदुओं को चाहिये कि वे अपने अंतर्प्रान्तीय व्यवहार का माध्यम बना लें, जोकि सरलता से प्राप्त हो सकता है। सम्पूर्ण देश के मुसलमानों को उर्दू सीखना चाहिये, जो कि वे अभी तक नहीं जानते। यह मानना भ्रम है कि भारत का प्रत्येक मुस्लिम उर्दू जानता है। जब दोनों समाज जीवित रहना व जीवित रहने देने का सिद्धांत मान लेंगे और जब प्रत्येक अपनी पृथक् रहने की वृत्ति को दूर कर देगा व साधारण राष्ट्रीय वृत्ति धारण कर लेगा, तब हिंदी-उर्दू के संश्लेषण के लिये पर्याप्त समय रहेगा।

राष्ट्रभाषा का रूप

अपने हिंदीभाषा-भाषी मित्रों से मैं एक शब्द कहूँगा जिन लोगों की हिंदी मातृभाषा है, उन्हें उसके राष्ट्रभाषा माने जाने में अहंकारयुक्त आनंद होता है। उनमें से कुछ में मैंने एक प्रकार के "हिंदी-साम्राज्य-वाद" की गंध पाई है। वे संयुक्तप्रांत की हिंदी के राष्ट्रभाषा माने जाने का आग्रह करते हैं। किंतु यदि हिंदी को सच्ची राष्ट्र भाषा बनाना है, तो हर एक भाषा को उसे अपनी विशेषता प्रदान करने का स्वातंत्र्य देना चाहिये। इस प्रकार हिंदी की कल्पनातीत वृद्धि होगी। जिस प्रकार ऑक्सफोर्ड की अंग्रेज़ी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया या भारत की अंग्रेज़ी से भिन्न है, उसी प्रकार हिंदी का राष्ट्रभाषा-स्वरूप देश के विभिन्न भागों में पृथक् पृथक् रहेगा। बंगाली अपनी समृद्धि, राजस्थानी अपने लोकसाहित्य के तत्त्व, गुजराती व मराठी अपनी भावप्रदर्शन की शक्ति और द्रविड़ भाषाएँ संभवतः, अपना सौंदर्य उसे प्रदान करेंगी, और उन सब की संस्कृत-आत्मा इन विभिन्न तत्त्वों को एकता के सूत्र में बाँधेगी। इस प्रकार हिंदी एक सच्ची राष्ट्रभाषा का रूप धारण कर लेगी; वह हमारे राष्ट्र की मातृभाषा बन जायगी, जिसके द्वारा भारत विश्व के सन्मुख अपनी आत्मा को उपस्थित कर सकेगा।

———

हिन्दी में वैज्ञानिक शिक्षण[1]

[श्री डा० सत्यप्रकाश]

पुर्णे के अधिवेशन में जिस समय मैंने भाग लिया था, उस समय इस विश्व-व्यापी युद्ध को परिस्थिति कुछ और थी, और इन चार वर्षों में युद्ध अब दूसरी स्थिति में आ गया है। युद्ध के क्षणिक विराम के अब दिन दूर नहीं हैं। मैं यह तो नहीं कह सकता कि युद्ध का अन्त इस वर्ष हो जायगा, कोई कारण नहीं कि निकट भविष्य में फिर युद्ध आरम्भ न हो जाय। यूरोप में देशों का भाग्य-निबटारा संभवतः कुछ दिनों के लिये इस वर्ष अवश्य हो जाय, पर एशिया के युद्ध का सूत्रपात जो इस महायुद्ध के समय हुआ है, इतना शीघ्र अन्त नहीं होने का। भविष्य में हमारा यह महाद्वीप भी प्रचंड युद्ध-क्षेत्र रहेगा, इसके चिह्न अब स्पष्ट हैं। इन युद्धों के प्रति हमारे देश का मौन धारण करना, उदासीन रहना अथवा अपने को तटस्थ रखना भी सम्भव न होगा। हम चाहें कितने भी शान्ति-प्रिय रहें, दूसरे हमें शान्ति-प्रिय रहने न देंगे, इसलिए वर्तमान युद्ध के विराम और विश्राम के अनन्तर भी हमें सतर्क रहने की आवश्यकता है। मैंने युद्ध-संबंधी परिस्थति की ओर इसलिए निर्देश किया, कि आज कल के युद्ध का बहुत कुछ संचालन वैज्ञानिकों के हाथ में है और युद्धकालीन कारखानों का इस दृष्टि से विशेष महत्त्व है। सफल युद्ध के लिए सफल वैज्ञानिक शिक्षण का होना अनिवार्य है। युद्ध जब तक भारतीय जनसमूह का युद्ध नहीं होगा, तब तक भाड़े के टट्टू सैनिकों, स्वार्थ में निरत व्यवसायियों एवं चलतू सहयोग देने वाले वैज्ञानिकों से इसमें वास्तविक सफलता नहीं प्राप्त की जा सकती। सफल युद्ध के लिये केन्द्रस्थ स्वराष्ट्रीय परिषद् की जहां आवश्यकता है, वहाँ उसके लिये स्वदेशीय भाषा द्वारा उत्पन्न साहित्य और उसके द्वारा दिये गये वैज्ञानिक-शिक्षण की भी आवश्यकता है। कोई भी राष्ट्रीय संस्था तब तक पूर्णरूपेण राष्ट्रीय नहीं कही जा सकती, जब तक वह अपने समस्त दृष्टिकोणों में राष्ट्रीय न हो।

युद्धान्तरीय योजनाओं की चर्चा इस समय यूरोप और अमरीका के सभी देशों में हो रही है, और हमारे देश में भी इस चर्चा की कभी हलकी सी प्रतिध्वनि सुनाई दे जाती है। इस प्रतिध्वनि से जो आभास हमें मिला है वह हमारे लिये असंतोष ही नहीं प्रत्युत ग्लानि का विषय है। हमें बारबार यह स्मरण दिलाया जारहा है कि यह देश "कृ

---

[1] सम्मेलन अधिवेशन के विज्ञान परिषद के सभापति के भाषण का सारांश

प्राधान्य"है, और कृषि के उद्योग को युद्ध के अनन्तर प्रोत्साहन दियेजाने की आयोजना हो रही है। बाह्यदृष्टि से यह बात कोई बुरी नहीं प्रतीत होती, पर इस भावना के अंतर्गत एक कुटिलनीति भी है। इस भावना का अर्थ यह है, कि हमारा देश केवल कच्चेमाल की पूर्ति का क्षेत्र बना रहे, और देश के उद्योगों और कारख़ानों को युद्ध के अनन्तर बन्द कर दिया जाय। युद्ध के इन पाँच वर्षों में अनेक सामग्रियों के कारख़ाने देश में खुले हैं, और इन्होंने गौरव भी प्राप्त किया है, व्यवसायियों ने प्रचुर-लक्ष्मी इनके कारण कमायी है, और वे युद्ध के अनन्तर कारख़ानों और उद्योगों का इस देश में पाश्चात्य ढंग पर प्रसार करने के लिए उत्सुक भी हैं। इन कारख़ानों को शासन-सत्ता की ओर से जहाँ संरक्षण मिलना चाहिये था, वहाँ इनके मार्ग में विभिन्न प्रकार के अवरोध प्रस्तुत किये जायँगे। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि यूरोप और अमरीका से हमारे देश में रासायनिक पदार्थ और यांत्रिक सामग्री पूर्वापेक्षया बहुत अधिक मात्रा में आने लगेगी, जिसका निश्चित परिणाम यह होगा कि हमारे नवस्थापित कारख़ाने बन्द हो जावेंगे। इन कारख़ानों में इस समय वैज्ञानिक-शिक्षा-प्राप्त-युवक संलग्नता से काम कर रहे हैं; वे बेकार हो जायँगे। ऐसी परिस्थिति में वैज्ञानिक-शिक्षण की आयोजनाओं को धक्का पहुँचेगा। आवश्यक तो यह था कि हम युद्ध के अनन्तर अपनी शिक्षण-योजनाओं में क्रांति उत्पन्न करते, पर संभवतः हमारे भाग्य में ऐसा अवसर आना अभी दूर-भविष्य की बात है। अभी हमें विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करना है। वैज्ञानिक शिक्षा के दृष्टिकोण को परिवर्त्तित करना है। युद्ध के अनन्तर अनेक नयी समस्यायें उपस्थित होंगी। बहुत संभव है कि यह देश एशियाई युद्ध का एक अड्डा बन जावे और फिर हमारे कारख़ानों की क्या परिस्थिति होगी, और उन उद्योगों में देश के शिक्षित युवकों का किस प्रकार सहयोग होगा, यह एक सोचने का विषय है। मेरा विश्वास तो यह है कि युद्धान्तरीय काल में भारत का यदि गौरवपूर्ण सहयोग वांछित समझा गया तो यहाँ की वैज्ञानिक शिक्षण पद्धति में विशेष परिवर्त्तन करने पड़ेंगे, और इन परिवर्त्तनों में सबसे मुख्य परिवर्त्तन होना चाहिये—हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक शिक्षण। जनता में वैज्ञानिक प्रवृत्ति जागृत करने के लिये हिन्दी में लोकप्रिय साहित्य की वृहद् परिमाण में सृष्टि करना नितान्त आवश्यक होगा।

अन्तर्जातीय शब्द क्या है?

हैदरी कमिटी के परामर्शों में इस प्रकार के शब्द हैं—"टर्म्स व्हिच हैव औल-रेडी सीक्योर्ड जनरल इन्टरनेशनल एक्सेप्टेन्स" "एन इन्टरनेशनल टर्मिनोलोजी"—इन स्थलों पर प्रयुक्त "इन्टर नेशनल" या अन्तर्जातीय-शब्द से मैं सदा घबराया करता हूँ। मुझे तो ऐसे स्थलों पर "अन्तर्जातीय" शब्द का प्रयोग अनेक देशों के लिये

अपमान का सूचक प्रतीत होता है। कोई शब्द केवल इतने से ही कैसे "अन्तर्जातीय" हो जायगा यदि उसका प्रयोग यूरोप के कुछ देशों और अमरीका में ही होता हो। जर्मन, फ्रेंच, और अंग्रेज़ी में (अथवा यूरोप की कुछ और भाषाओं में भी) प्रयोग होने पर किसी शब्द को अन्तर्जातीय घोषित कर देना अन्तर्जातीयता को कलुषित करना है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इन भाषाओं में उतना ही सम्पर्क है जितना बङ्गाली, हिन्दी, मराठी या गुजराती में। जिस प्रकार कोई शब्द हमारी इन चार भाषाओं में एक समान होता हुआ भी अन्तर्जातीय नहीं कहला सकता, उसी प्रकार अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रैंच आदि कुछ एक ही वंश की भाषाओं में समान प्रयुक्त होने वाले शब्द अन्तर्जातीय नहीं कहे जा सकते। इनके शब्दों को जब कोई अन्तर्जातीय घोषित करता है, तो उसे इस बात का ध्यान विस्मृत हो जाता है कि संसार के किसी कोने में वे जातियाँ भी जीवित हैं जिनकी भाषायें हेमेटिक, सेमेटिक, इंडोएरियन, ड्रैविडियन, मङ्गोलियन आदि वंश की हैं, उन जातियों के मानव प्राणियों की संख्या यूरोपीय और अमरीकन प्रदेशों में रहने वाले व्यक्तियों से अधिक है, उनकी भी भाषायें हैं, संस्कृति है, और उनके पास भी साहित्य है, उनकी अपनी एक पृथक् परम्परा है, एवं उनको भी जीवित रहने का अधिकार है। मेरी अपनी धारणा यह है कि जिसको कुछ व्यक्ति "अन्तर्जातीय" घोषित कर रहे हैं, उनकी अन्तर्जातीयता आभास-मात्र है। यदि कुछ शब्द जर्मन या अँग्रेजी में समान-रूप व्यवहृत हो रहे हैं, तो अधिकांश इस लिये नहीं कि वे "अन्तर्जातीय" हैं, प्रत्युत इसलिये कि वे दोनों एक ही परम्परा के अनुकूल हैं। यूरोप और अमरीका में "अन्तर्जातीय" शब्द यूरोप, अमरीका और आस्ट्रेलिया के देशों के लिये ही रूढ़ि सा हो गया है—गौरांगों की भाषा और उनका साहित्य हम कृष्ण-वर्ण वालों की उपेक्षा करता हो, तो यह कोई नयी बात नहीं है।

अस्तु, मेरी धारणा यह है, कि कोई भाषा या कोई शब्द अन्तर्जातीय नहीं है। हमारे इस मानव समाज में इतना समुचित विस्तार है कि इसमें तीन-चार पद्धतियों पर प्रचलित शब्दावली सुगमता से चल सके। सबके लिये मुक्त क्षेत्र विद्यमान है। (१) एक यथाशक्य समान पारिभाषिक शब्दावली अँग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, इटैलियन आदि भाषाओं की हो, (२) दूसरी समान शब्दावली मिश्र, अरब, तुर्क पारस और अफ़गानिस्तान वालों की हो, और हमारे उर्दू के प्रेमी इसको अपनाना चाहें, तो हमें कोई आपत्ति नहीं, और न हमें उनसे प्रतिस्पर्धा ही है। (३) तीसरी शब्दावली आर्य्यदेशस्थ भारतीय भाषाओं की हो। (४) चीन-जापान वालों की मङ्गोलियन शब्दावली हो।

मेरा विचार है कि जिस पद्धति पर उसमानिया में उर्दू वैज्ञानिक साहित्य

तैयार हुआ है, अब उर्दू के क्षेत्र में वही श्रेयस्कर है; स्वाभाविक विकास के लिये तो अवश्य स्थान रहेगा, पर इसमें मौलिक परिवर्त्तन नहीं लाये जा सकते। उनकी शब्दावली के स्थान पर आज-कल की रूढ़ि "हिन्दुस्तानी" शब्द अथवा संस्कृत-गर्भित शब्द कभी प्रचलित हो सकेंगे इसकी आशा करना अनुचित है।

"अन्तर्जातीयता" के नाम पर अंग्रेज़ी के शब्दों की भरमार कर लेने के विरोध में हैदराबाद के डाइरेक्टर के ये शब्द भी विशेषता रखते हैं—"नेवरदिलेस, इट इज़ फेल्ट दैट दि एडोप्शन आव् मि० सीलस क्लासिफिकेशन आव् टर्म्स व्हिच शुड बि बौरोड एक्सलक्लूसिवली फ्रौम दि इंग्लिश वोकेबुलेरी, उड मिलिटेट अगेन्स्ट दि वेरी परपस व्हिच इट इज़ इस्टेब्लिश्ड टु सर्व, नेम्ली, दैट आव् डिस्सेमिनेटिंग सायंटिफिक नालेज थ्रू दि मीडयम आव् दि इन्डियन लैंग्वेजेज़"।

मेरी धारणा यह है कि उसमानिया यूनिवर्सिटी का कार्य्य उर्दू क्षेत्र की दृष्टि से ठीक ही मार्ग पर हो रहा है, और हिन्दी-क्षेत्र को लगभग उसी नीति पर अपने क्षेत्र में काम करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये। पर यह आशा रखना कि उर्दू की यह शब्दावली हिन्दी क्षेत्र में भी व्यवहृत हो सकेगी, प्रवंचना मात्र है। हैदराबाद के डाइरेक्टर के ये शब्द कुछ अत्युक्ति ही होंगे—"विद औल इट्स वर्ब्स डिराइव्ड फ्रौम दि ब्रजभाषा एण्ड बीइङ्ग ए कम्पोज़िट लैंग्वेज, उर्दू हैज़ ए ग्रेटर क्लेम टु बि मेड ए बेसिस आव् टर्मिनोलोजी दैन ऐनी अदर लैंग्वेज एण्ड दि प्रेज़ेंट टेक्निकल टर्म्स कॉयण्ड एट दि उसमानिया यूनिवर्सिटी मे वेल सर्व दि पर्पस आव् ऐन औल-इन्डिया टर्मिनोलोजी।"

क्रियाओं के समान होने पर भी अपने शब्द-भंडार के कारण उर्दू हिन्दी से बहुत पृथक् हो चुकी है, और साहित्यिक हिन्दी और साहित्यिक उर्दू में क्रियायें तो अपना महत्वपूर्ण स्थान खो चुकी हैं,—है, था, रहा, गया आदि कुछ साधारण क्रियायें ही रह गयी हैं, सर्वनाम अवश्य अब भी समान हैं। यह आश्चर्य की बात है कि सर्वनाम और क्रियाओं के भिन्न होने पर भी वर्त्तमान हिन्दी से अवधी, बुन्देलखंडी, ब्रजभाषा, राजपूतानी, और यही नहीं, '' ाली, गुजराती और मराठी भी, अधिक निकट प्रतीत होती हैं, पर फ़ारसी, अरबी और तुर्की के भंडार से लदी हुई उर्दू सर्वनाम और क्रियाओं के समान होने पर भी हम से दूर जा पड़ी है।

हिन्दी उर्दू से दूर हो रही है अथवा उर्दू हिन्दी से ?

यह स्पष्ट है कि आज कल हिन्दी और उर्दू के साहित्यिक रूप में बहुत अन्तर आ गया है, साधारण भाषणों और वक्तृताओं की भाषा में भी अन्तर है। बाज़ारू बोली में (अथवा बेसिक भाषा में) यह अन्तर अधिक नहीं है, पर बेसिक

भाषा का भंडार केवल १००० शब्दों का है। इसमें बहुत से शब्द फारसी और संस्कृत के भी हैं, पर उन्हें बहुधा सभी समझ लेते हैं।

मुसलमान शासकों ने कचहरी की भाषा फारसी बना रक्खी थी, और मोग़ल-काल तक ऐसा रहा। उत्तर और मध्य भारत में इस समय तक लोगों की भाषा हिन्दी थी। "हिन्दी जीती जागती भाषा थी और इसलिये इसने बहुत से फारसी शब्दों को अपने में पचा लिया। गुजराती और मराठी ने भी ऐसा ही किया। पर फिर भी हिन्दी हिन्दी ही रही। शाही दरबारों के निकट इस समय हिन्दी के फारसी-गर्भित रूप का विकास हुआ और इसका नाम रेखता पड़ा! मोग़लों के कैम्पों में इस समय उर्दू नाम का भी जन्म हुआ, पर इस शब्द का प्रयोग हिन्दी के ही पर्याय के रूप में रहा। यह स्थिति सन् १८५७ के विद्रोह तक रही। उर्दू और हिन्दी में केवल भेद लिपि का रहा। यही नहीं कुछ काल बाद तक भी उर्दू लिपि में लिखने वाले मुसलमानों ने अपनी भाषा का नाम हिन्दी ही रक्खा,' (जवाहरलाल नेहरू)। अस्तु, आगे जिस ढंग से उर्दू हिन्दी से अलग होती गयी, उसका इतिहास तो स्पष्ट है।

पर प्रश्न यह है कि इस पार्थक्य का उत्तरदायित्व हिन्दी वालों पर है, अथवा उर्दू वालों पर। पार्थक्य स्वभावतः एक भाषा में संस्कृत-प्राधान्य शब्दों के कारण है, और दूसरी में फारसी-प्राधान्य। उर्दू वाले कहते हैं, और बहुत से राष्ट्रीयवादी भी, कि हिन्दी की वर्त्तमान प्रवृत्ति अपने में संस्कृत शब्दों को पूर्वापेक्षया अधिक ग्रहण करने की ओर अग्रसर हो रही है। मौलाना अब्दुल हक़ साहेब लिखते हैं—

अवर कम्प्लेंट दैट संस्कृत वर्ड्स आर बीइंग इंक्रीज़िंगली इण्ट्रोड्यूस्ड इन दि लैंग्वेज इज़ यूज़ुऐली आन्सर्ड बाइ दि रिटॉर्ट दैट वी आर एज़ गिल्टी आव् यूजिंग मोर आव् पर्शियन एण्ड ऐरेबिक वर्ड्स। बट व्हाइल इट हैज़ नेवर बीन अवर इण्टेन्शन टु ओवरलोड उर्दू विद ऐरेबिक एण्ड पर्शियन वर्ड्स, इट हैज़ बीन दि एवाउड पालिसी आव् गांधी जी, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, काका कालेलकर एण्ड देयर फौलोअर्स टु मेक इंक्रीज़िंग यूज़ आव् संस्कृत वर्ड्स औन दि ग्राउंड दैट दि लैंग्वेज वुड देयरबाइ बि ईज़िली अंडरस्टुड बाइ दि पीप्ल् आव् सदर्न इण्डिया, व्हूज़ मदरटंग्स हैव ए संस्कृत कम्प्लेक्शन।"

इस विषय की विस्तृत मीमांसा करने का यहाँ स्थल नहीं है। मेरे विचार में यह धारणा नितान्त भ्रममूलक है कि हम पूर्वापेक्षया अब अपनी हिन्दी भाषा को अधिक संस्कृतगर्भित बना दे रहे हैं। हिन्दी भाषा के परम्परागत रूप का संक्षिप्त निदर्शन अमरनाथ जी ने अपने अबोहर के भाषण में कराया था। हमारी भाषा आज भी उतनी ही संस्कृत गर्भित है, जितनी चन्द बरदायी, कबीर, नानक, सूरदास, मीरा

तुलसी, केशव, बिहारी, रसखान, जायसी या देव के समय में थी। यह सम्भव है कि कभी हमने तद्भव शब्दों का प्रयोग किया हो, और कभी तत्समों का। तुलसी, कबीर और सूर के पद आज भी सार्वजनिक जनता के लिये भाषा सम्बंधी आदर्श हैं। "सरन सरोरुह जल बिहँग, कूजत गुंजत भृंग। बैर विगत विहरत विपिन, मृग बिहंग बहुरंग"—यह हमारी जनता के सर्वप्रिय कवि तुलसीदास जी की भाषा है। "ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास। गुरु सेवा ते पाइये सतगुरु चरन निवास" यह भाषा अशिक्षित कबीर की है। रैदास, पलटू, दूलन आदि जनश्रेणी के संत कवियों की भाषा भी सदा ऐसी ही रही है। अतः यह लांच्छन व्यर्थ है, कि हिन्दी की वर्त्तमान प्रवृत्ति पूर्वापेक्षया अधिक संस्कृत-गर्भित होने की ओर है।

वस्तुतः जब हम किसी ऐसे शब्द का प्रयोग करते हैं, जो दूसरों को संस्कृत प्रतीत होता है (और सौभाग्यतः वह संस्कृत के कोष में है भी), तो हमारा अभिप्राय किसी ऐसे शब्द के प्रयोग करने का नहीं होता है, जो शब्द हमारा नहीं है। मोहन-दास, पुरुषोत्तमदास, सम्पूर्णानन्द, गंगाप्रसाद, अशोक, ये सब नाम जब हम अपने व्यक्तियों के रखते हैं, तो वे सब शब्द हमारी दृष्टि में हिन्दी के ही शब्द हैं। ये सब जनता के शब्द हैं, जनता के साहित्यिकों के शब्द हैं, इनकी परम्परा बहुत पुरानी है, इन शब्दों का प्रयोग कोई आज की हमारी नयी नीति नहीं। अतः स्पष्ट है, कि हमारा परम्परागत शाब्दिक भण्डार लगभग एकसा ही रहा है। यह स्मरण रखना चाहिए कि संस्कृत शब्दों का प्रयोग अंगरेज़ी अथवा फारसी शब्दों के प्रयोग के सम-कक्ष में नहीं रक्खा जा सकता है। कुछ अंगरेज़ी और फारसी शब्दों को हमने उदारता वश पचाने का प्रयत्न अवश्य किया है, पर संस्कृत शब्दों के सम्बन्ध में "पचाने" शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सकता। वे तो हमारी पैतृक सम्पत्ति हैं; यही नहीं, उनसे पृथक हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं है, हम तो उन्हीं के दूसरे रूप हैं, हमारा प्रवाह उन्हीं की परम्परा में है। संस्कृत कोषकी प्रत्येक संज्ञा हमारी संज्ञा है, यह परम्परागत देन सभी भारतीय आर्य्य भाषाओं को प्राप्त है। यह दूसरी बात है कि किसी प्रान्त में अथवा किसी समय में हम किसी एक शब्द का अधिक प्रयोग करें, और अन्य प्रान्त में अथवा अन्य समय में उसी शब्द के किसी अन्य पर्याय का।

फारसी और अंगरेजी के शब्द हम किसी विशेष समय पर विशेष आवश्यकता होने पर अवश्य ग्रहण करेंगे; और उस आवश्यकता के मिट जाने पर उस शब्द को फिर निकाल बाहर भी कर देंगे, पर संस्कृत के शब्द जो कि अपने ही शब्द हैं, एक-रस प्रवाह में यहाँ हमारे साथ रहेंगे। आवश्यकता पड़ने पर हमने "मक़तब" शब्द को अपनाया, मक़तबों के दिन बीते, "स्कूल" शब्द भी हमने पचा लिया, पर पाठशाला

और विद्यापीठ शब्द तो प्रवाह के साथ प्रत्येक युग में रहेंगे। मुसलमानी शासन में कचहरी शब्द मिला और आज कल कोर्ट। ये शब्द सामयिक हैं, पर न्यायालय शब्द साहित्य में अमर रहेगा। उस्ताद और टीचर या मास्टर ये शब्द समय पर आये, और समय परिवर्त्तित होने पर ये साहित्य से निकाल भी दिये जायँगे पर गुरु और अध्यापक शब्द प्रवाह के साथ निरंतर चलेंगे। इस प्रकार स्पष्ट है, कि अंगरेज़ी, फारसी आदि शब्दों का प्रयोग व्यावहारिक और कालापेक्षित है, पर इनके होते हुए भी हमारा एक स्थायी शब्द भण्डार है, वह हमें संस्कृत और प्राकृत के प्रवाह से मिला है, वह अपना है, और उसके शब्दभंडार को सामयिक-शब्द भण्डार के समकक्ष में नहीं रक्खा जा सकता है।

मेरे इस दृष्टिकोण के आधार पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दी तो अपने पूर्व प्रवाह की परम्परा में अब भी आगे बढ़ रही है, और हिन्दी-उर्दू के पार्थक्य का संपूर्ण उत्तरदायित्व उर्दू लेखकों पर है। स्वभावतः यह पार्थक्य अब इस सीमा तक पहुँच गया है,—उर्दू वालों ने अपने को हमसे और अपने मूल परम्परा के रूप से इतना अलग कर लिया है, कि उनको अब पहचानना भी कठिन हो गया है। यह सोचने में मस्तिष्क को बल देना पड़ता है, कि कभी वे भी हम में ही थे, पर दुराग्रहता के कारण वे आज हमसे पृथक् हो गये हैं।

मैं इस चर्चा को यहाँ न छेड़ता, पर वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली का संस्कृत के कोष-भंडार पर क्या अधिकार है, यह निश्चय करने के लिये इन विचारों को उपस्थित करना मैंने आवश्यक समझा।

विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक शिक्षण

इधर दो-तीन वर्षों में लखनऊ विश्वविद्यालय की सायंस फैकल्टी ने मातृभाषा में वैज्ञानिक शिक्षण की ओर कुछ विशेष प्रवृत्ति दिखायी है, और उनका यह प्रयास स्तुत्य अवश्य है, पर उनके एकाध निश्चय ऐसे हैं जिनसे कुछ अकल्याण होने की आशंका है। हिन्दी और उर्दू की व्यावहारिक कठिनाई दूर करने के लिये उन्होंने रोमन लिपि का उपयोग करना निश्चय किया है। रोमन लिपि में कुछ विशेषतायें होते हुये भी वह हमारे साहित्य के लिये नागरी लिपि की स्थानापन्न नहीं हो सकती। यह ठीक है कि कुछ भाषा-विशारदों ने पाश्चात्य जनता की सुविधा के लिये हमारे देश के वेदादि संस्कृत साहित्य को रोमन लिपि में प्रकाशित किया है, ईसाई समाज में उनके हिन्दी-उर्दू के संगीत भी रोमन लिपि में प्रकाशित हैं, और अन्तर्राष्ट्रीय लिपि का स्वप्न देखने वाले सज्जन एवं वे व्यक्ति भी जिनका ध्यान प्रेस और टाइपराइटर की सुविधा की ओर अधिक जाता है, इस लिपि के प्रसार के इच्छुक हैं; पर हमारी आस्था अपनी

लिपि के प्रति इतनी है कि यह आशा रखना व्यर्थ है, कि रोमन लिपि के पक्ष में हम अपनी लिपि का कभी बहिष्कार कर सकेंगे।

प्रयाग विश्वविद्यालय अथवा काशी विश्वविद्यालय हिन्दी-भाषा को माध्यम बनाने में अभी सफल नहीं हो सके हैं। मेरा अपना अनुभव यह है, कि बी० एस-सी० कक्षा में पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थियों का हिन्दी-उर्दू भाषा संबंधी ज्ञान बहुत कच्चा होता है। यदि उनके लिये हिन्दी पढ़ने की कुछ सुविधायें विश्वविद्यालयों में दी जायँ, और उनसे वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखवाये जायँ, तो आगे हिन्दी को माध्यम बनाने में बहुत सुविधा होगी। प्रयाग विश्वविद्यालय में जनरल-इंग्लिश का जो स्थान है, लगभग वैसा ही स्थान हिन्दी का हो जाना चाहिये।

विश्वविद्यालयों की आवश्यकता की दृष्टि से "भारतीय हिन्दी परिषद्" ने भी अच्छी आयोजना तैयार की है। इस परिषद् ने एम० एस सी० के विद्यार्थियों और अध्यापकों की आवश्यकता की पूर्ति कर सकने वाले अंग्रेज़ी-हिन्दी वैज्ञानिक कोष के कार्य को प्रारंभ कर दिया है! नमूने के कुछ पृष्ठ भी "हिन्दी अनुशीलन" में प्रकाशित हुये हैं। परिषद् के प्रधान और मंत्री दोनों डा० वर्मा (श्री धीरेन्द्र जी एवं रामकुमार जी) इस कार्य के लिये धन का संचय भी कर रहे हैं। ये सब आशा के चिह्न हैं जिनसे हिन्दी के गौरव की वृद्धि हुई है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी भी इस प्रकार के कार्य के लिये उत्सुक प्रतीत होती है, और जिस प्रगति से वातावरण हमारे अनुकूल हो रहा है, वह हमारे सौभाग्य की बात है।

अनेक लिपियों का प्रयोग

अंग्रेज़ी साहित्य में रोमन लिपि के साथ-साथ ग्रीक अक्षरों का भी बहुत प्रयोग होता है,—रासायनिक, भौतिक और गणित के समीकरणों में ऐलफा, बीटा, गामा, थीटा, पाई, ओमेगा आदि लगभग पूरी ग्रीक वर्णमाला का ही प्रयोग आवश्यक समझा जाता है। हमारे स्कूल के विद्यार्थी रेखागणित और बीजगणित में अंग्रेज़ी के ए, बी, सी, एक्स, वाई, जेड आदि वर्णों का प्रयोग करते हैं, और इन विषयों की प्रकाशित हिन्दी पाठ्य पुस्तकों में भी इन अक्षरों का प्रयोग विस्तार से हो रहा है। रासायनिक समीकरणों में शब्दों के संकेत भी रोमन लिपि में लिखना एक प्रकार से सर्वमान्य हो गया है, इसका फल यह है कि हिन्दी में लिखे गये वैज्ञानिक साहित्य में नागरी, रोमन और ग्रीक तीन की वर्णमालाओं का प्रयोग करना पड़ेगा, यह बात कहाँ तक श्रेयस्कर है इसके सम्बन्ध में मैं अब तक कुछ निश्चय नहीं कर सका हूँ। मैं इस क्षेत्र में कार्य करने वाले सहयोगियों का ध्यान इस ओर आकर्षित कराना चाहता हूँ। मेरा विचार यह है कि छापेखाने की सुविधा की दृष्टि से जहाँ तक सम्भव हो (१) अँग्रेज़ी वर्ण-

माला का कम से कम उपयोग किया जाय,—बीजगणित और रेखागणित में नागरी अक्षरों से काम आसानी से निकाला जा सकता है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पास गणित की जो पुस्तकें प्रकाशनार्थ आयी हैं, वे इस बात के लिये आदर्श हैं। श्री सुधाकर द्विवेदी जी ने अपने चलन-कलन, समीकरण-मीमांसा आदि ग्रन्थों में सर्वत्र नागरी अक्षरों का ही प्रयोग किया है। (२) जिन स्थलों पर कोई अक्षर रूढ़ि हो गया है (जैसे ग्रीक का "पाई" अक्षर व्यास और परिधि के सम्बन्ध के लिये), उसको छोड़ कर यथा-शक्य ग्रीक अक्षरों का प्रयोग किया ही न जाय। ऐलफा किरण, बीटा किरण, गामा किरण ये शब्द ले लिये जायँ, पर इन्हें उच्चारण सहित नागरी लिपि में ही लिखा जाय, इसी प्रकार एक्स-किरण लिखना शुद्ध माना जाय, न कि X-किरण। (३) समीकरण सूत्रों में जहाँ नागरी लिपि के अक्षरों में कुछ विभिन्नता करनी आवश्यक प्रतीत हो वहाँ बंगाली लिपि के अक्षरों का प्रयोग किया जा सकता है। यदि उच्चारण के लिये ध्वनि भेद भी आवश्यक हो तो वहाँ उच्चारण करते समय अकार, मकार, गकार इस प्रकार का उच्चारण किया जाय, अर्थात् बोलते समय नागरी 'अ' को 'अ' कहा जाय और वंगाली के 'अ' को 'अकार' बोला जाय इस प्रकार बोलने में वह अन्तर उत्पन्न किया जा सकता है जो ए और एलफा, बी और बीटा, जी और गामा में है। यदि और आवश्यक हो गुजराती की लिपि के अक्षर भी अपनाये जा सकते हैं। (४) श्री सुधाकर द्विवेदी ने जैसा अपनी समीकरण-मीमांसा में किया है a, a', a,'' a''' में ऊपर लगाये गये डैशों को मात्राओं द्वारा व्यक्त किया जाय—क, का, कि, की। डैशों की अपेक्षा यह पद्धति हिन्दी में बहुत सफल रही है और इसका अनुसरण किया जा सकता है।

सारांश यह है कि यथा-शक्य नागरी लिपि से काम निकाला जाय, और अनिवार्य्य परिस्थितियों में ही इतर लिपियों का उपयोग किया जाय। ऐसा प्रतीत होता है कि रासायनिक समीकरणों में रोमन संकेतों का ही प्रयोग करना पड़ेगा।

क्या रोमन गिनतियाँ अपना ली जायँ

यूरोप में तो रोमन गिनतियों का प्रयोग होता ही है, चीन और जापान वालों ने भी इन गिनतियों को अपनाया है, क्योंकि उनकी अपनी लिपि में गिनतियों के लिये ऐसे चिह्न न थे जिनका गणित में सुविधापूर्वक उपयोग किया जा सके। यही परिस्थिति दक्षिणात्य लिपियों की रही है उदाहरणतः तामिल में जो मूल गिनती है वह वर्णमाला का कुछ रूपान्तर है, और उसके द्वारा बड़ी संख्याओं को प्रकट करने की पुरानी परिपाटी बड़ी जटिल है। इसीलिये इन भाषाओं ने भी रोमन गिनतियों को अपना लिया है। उनकी पुस्तकों के पृष्ठों पर पृष्ठों की संख्या रोमनांकों में।

ही होती है। अब प्रश्न यह है कि क्या हम अपने नागरी अङ्कों को छोड़ दें। हमारे इन अङ्कों के प्रयोग में कोई कठिनाई नहीं है। इनका अपना एक इतिहास है। जहाँ तक सिद्धांत का सम्बन्ध है हमारे इन अंकों में और रोमन अंकों में कोई मौलिक भेद नहीं है। रोमन अंकों के पक्ष में उनका व्यापक प्रयोग एक प्रबल तर्क है। आजकल हम देखते हैं कि हमारे स्कूलों में नीची कक्षा के विद्यार्थी भी रोमन अंकों का उपयोग कर रहे हैं, और नागरी अंकों की अपेक्षा रोमनांक लिखने का उन्हें अधिक अभ्यास है। मैं इस समस्या को अपने साहित्यिक मित्रों के समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ, और आशा करता हूँ कि वे इस संबंध में उचित परामर्श देंगे। वे कृपया यह भी बतावें कि $H_3 PO_४$ सूत्र को $H_३ PO_४$ लिखना शोभा देगा या नहीं।

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का वर्णानुक्रम

अन्त में एक विशेष विषय की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यह विषय साहित्यिकों की दृष्टि से अब तक उपेक्षित रहा है। वैज्ञानिक क्षेत्र में ही नहीं, समाचार पत्रों के क्षेत्र में भी यह विषय अपना महत्व रखता है। हमें अपने लेखों में बहुत सी विदेशी व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग करना पड़ता है। ये शब्द अंगरेजी में वर्णानुक्रमित होकर हमारे सामने आते हैं। अंगरेजी वर्णमाला की ध्वन्यात्मक कला इतनी अनिश्चित है, कि उस वर्णमाला में वर्णानुक्रमित किसी शब्द का उच्चारण क्या होना चाहिये, यह कोई नहीं कह सकता। कहने को तो यूरोप के सभी देशों में वर्णमाला एक ही प्रकार की है और इसके आधार पर भ्रमवश लोग रोमन लिपि को सर्वसम्मत लिपि घोषित कर भी देते हैं। पर लिपि केवल अक्षरों की बाह्य-रूपरेखा का नाम नहीं है। बाह्य-रूपरेखा एक होने पर यदि अक्षरों का उच्चारण भी एक हो तब लिपि समान कहला सकती है अथवा नहीं (इस भेद से मेरा अभिप्राय उदात्त-अनुदात्त स्वर भेद से नहीं है, जैसा कि नागरी वर्णमाला के बंगाली, हिन्दी एवं मद्रासी उच्चारणों में है)। यूरोप में उच्चारण का मौलिक अन्तर है, P-A-R-I-S लिखा गया शब्द फ्रान्स में पेरि उच्चरित होता है, और अंग्रेजी में (रस। M-I-N-E शब्द अंग्रेजी में माइन है और जर्मन में मिने। K-N-I-F- शब्द अंग्रेजी में नाइफ है, पर जर्मन पद्धति पर इसका उच्चारण क्निफे होगा। इतना अन्तर होने पर भी यह कहना कि रोमन लिपि सर्वमान्य है, इसका कोई अर्थ नहीं। इसकी सर्वमान्यता तभी स्वीकृत हो सकती थी जब इस वर्णमाला में लिखे गये शब्दों का यूरोप के समस्त देशों में एक समान उच्चारण होता।

उच्चारण का यह अन्तर साधारण भाषा में कठिनाई नहीं डालता है, अर्थ-बोध से वहाँ उच्चारण कर लिया जाता है। पर व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में यह बाधा

बहुत खटकती है। Europe शब्द को कोई हिन्दी में योरुप लिखता है, कोई यूरोप, कोई योरोप। America को अमरीका, एमेरिका, अमेरिका इत्यादि। Leipzig को भूगोल की पुस्तकों में लीपजिग लिखा जाता है, यद्यपि इसका शुद्ध उच्चारण लाइपत्सिग है। Nazi को नाजी लिखना भूल है, यह शब्द नात्सी है। Lavoisier फ्रैन्च वैज्ञानिक का नाम कोई लवासिये लिखता है कोई लवाशिये, कोई लेवोइसिये; यद्यपि इसका उच्चारण लाव्वासीए है। Einstein को कोई ऐन्सटीन, कोई आंइसटीन लिखता है, इसका उच्चारण आइन्सटाइन है। चीनी-जापानी नगरों के नाम भी हमारे सामने अंग्रेजी वर्णानुक्रमण में आते हैं, और हम उनका मनमाना उच्चारण करने लगते हैं। उनका असली उच्चारण क्या है, इसकी ओर लोगों का ध्यान नहीं गया है। मेरा अभिप्राय यह है कि अंग्रेजी वर्णानुक्रमण के आधार पर उच्चारण करना और तदनुकूल नागरी में लिप्यन्तरित करना कोई गौरवपूर्ण पद्धति नहीं है। साहित्य सम्मेलन से मेरा अनुरोध है कि वह एक ऐसा कोष प्रकाशित करे जिसमें भूगोल में प्रयुक्त नगरों, प्रान्तों, सरिताओं, पर्वतों आदि के नामों की आदर्श सूची हो, और इनके उच्चारण यथा-शक्य शुद्ध दिये हों। शुद्ध से मेरा अभिप्राय उस उच्चारण से है, जो वहाँ का देशवासी करता हो अंग्रेजी कोषों में भौगोलिक नामों के उच्चारण की एक सूची दी होती है, उससे सहायता मिल सकती है, पर सब से अच्छा यह होगा कि तद्देशीय व्यक्तियों के सहयोग से यह सूची तैयार की जाय। इसी कारण एक सूची ऐतिहासिक और वैज्ञानिक साहित्य में प्रयुक्त होने वाले पुरुषवाचक नामों की भी होनी चाहिये। जब से रेडियो का व्यवहार बढ़ा है तब से हमें सभी देशों के मौलिक उच्चारण सुनने का अवसर प्राप्त होने लगा है, पर अब हमें अपना अंग्रेजी लिपि द्वारा सीखा गया भ्रष्ट उच्चारण बहुत खटकने लगा है। इन नामों के वर्णानुक्रमण के संबंध में स्थिरीकरण की नितान्त आवश्यकता है।

नागरी में लिप्यन्तरित करने की क्षमता

मैंने कई बार अपने लेखों में यह अनुरोध किया है कि नागरी अक्षरों में ही हमें विदेशी भाषाओं के उद्धरणों को प्रस्तुत करना चाहिये। यदि रोमनाक्षरों में आपके वेद-शास्त्रादि प्रकाशित मिलते हैं और अधिकांश पाश्चात्य देशों में अपनी लिपि में ही दूसरों की भाषाओं के उद्धरणों को लिप्यन्तरित करने की पद्धति है, तो हम भी ऐसा ही क्यों न करें। हमने अपनी लिपि को फारसी और अरबी के शब्दों के उपयुक्त तो बना ही लिया है, और इन भाषाओं के उद्धरणों को बहुधा हम अपनी लिपि में ही प्रस्तुत करते आये हैं, तो कोई कारण नहीं कि हम अंग्रेजी, फ्रैन्च, जर्मन, अथवा चीन-जापान की भाषाओं के उद्धरणों को अपनी लिपि में ही क्यों न लिखें। चीनी

भाषा के लिये चीनी लिपि, मिश्री भाषा के लिये मिश्री लिपि, अंग्रेजी के लिये अंग्रेजी लिपि और रूसी भाषा के लिये रूसी लिपि ऐसी प्रथा तो बहुत दिनों नहीं चल सकती। हमको काम अपनी लिपि से ही लेना है। मेरा अनुरोध है कि हिन्दी भाषा के लेखक-वैज्ञानिक और शुद्ध साहित्यिक दोनों—अंग्रेजी भाषा के उद्धरणों को अपने लेखों और ग्रन्थों में देते समय नागरी लिपि का ही प्रयोग करें। सभी उन्नत भाषायें अपने उद्धरणों में अपनी लिपि का ही प्रयोग करती हैं, और अंग्रेजी को छोड़कर फारसी, अरबी, बंगाली, गुजराती, तामिल, तैलगू आदि भाषाओं के उद्धरणों के प्रति हम भी अब तक ऐसा ही करते आये हैं। ऐसा करने में प्रेस और टाइपराइटर दोनों की सुविधा है।

दूसरी भाषाओं की नयी ध्वनियों के लिये नये संकेत हमें अपने 'विशेष, कामों के लिये बनाने पड़ेंगे पर यह अनिवार्य्य नहीं है कि हम लिप्यन्तरित करने में सदा इन स्वरों का व्यवहार करें। साधारण कार्यों के लिये हमारी लिपि और वर्णमाला पर्याप्त है।

हिन्दी में अनुसन्धानों की पत्रिका

अब तक हमने "विज्ञान" पत्रिका द्वारा लोकप्रिय अथवा पाठ्य पुस्तक संबंधी साहित्य ही प्रकाशित किया है। इस प्रकार का कार्य करते हुए हमें ३० वर्ष हो गये। अब आवश्यकता है कि हम एक पग आगे बढ़ें। मेरा प्रस्ताव है कि हिन्दी में एक वैज्ञानिक अनुसंधान पत्रिका आरंभ करनी चाहिये। जापान में तो जापानी भाषा में अनेक अनुसंधान-पत्रिकायें अनेक वर्षों से प्रकाशित हो रही हैं। हमें भी यह काम किसी दिन आरंभ करना है। जापान वाले इन पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का सारांश अँग्रेजी, जर्मन, और फ्रेंच भाषाओं में भी प्रकाशित करते हैं जिससे यूरोप वाले इनकी प्रगतियों से परिचित रहें। मैं हिन्दी में इस प्रकार की पत्रिका के लिये उत्सुक हो रहा हूँ। मैं इसके संपादन का भार अपने पर लेने को तैयार हूँ; यदि साहित्य सम्मेलन ५००) वार्षिक के लगभग इस पर व्यय करने को तैयार हो, तो नागरी प्रचारिणी पत्रिका के समान एक त्रैमासिक पत्रिका से आरंभ किया जाय। भारतवर्ष में इस समय अँग्रेज़ी में कई अनुसंधान पत्रिकायें निकल रही हैं, और जो समस्त विदेशों में जाती हैं, पर उनपर कहीं भी किसी भारतीय भाषा या लिपि का चिन्ह तक नहीं होता। ये पत्रिकायें विदेश में यही भावनायें उत्पन्न करती होंगी कि हमारे देश की न कोई भाषा है, और न कोई लिपि ही। इस दृष्टि से चीनी और जापानी पत्रिकायें हमसे कहीं अधिक गौरव अपनी भाषा को देती हैं। मैंने उनकी अँग्रेज़ी पत्रिकाओं पर भी पत्रिका का नाम एवं उनके परिषद् के पदाधिकारियों के नाम उनकी ही वर्णमाला

में प्रकाशित देखे हैं।

मेरी यह. हार्दिक इच्छा है कि हमारी भाषा का सर्वतोन्मुखी गौरव बढ़े। भाषा में हमारी मनोवृत्ति का प्रतिबिम्ब पड़ता है, राष्ट्रीय भाषा की सेवा राष्ट्र की एक परमोच्च सेवा है।

सम्मेलन के जयपुर अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव

१—यह सम्मेलन माता कस्तूरबा गांधी, श्री शिवप्रसाद गुप्त, प्रो० ब्रजराज, श्री शालिग्राम वर्मा, श्री रणजित सीताराम पंडित, डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, श्री अच्युतानन्द दत्त, श्री कपिलदेव मालवीय, श्री ऋषिलाल अग्रवाल, श्री राजा ज्वालाप्रसाद, श्री श्रीदेवसुमन, राजमाता जयपुर, महाराजा गंगासिंह जी बीकानेर, महाराजा श्री राजेन्द्रसिंह जी सुधाकर झालावाड़,तथा महाराजा श्री सदाशिवराव खासे साहब पंवार, देवदास (लघु) के देहावसान पर हार्दिक दुःख तथा उनके कुटुम्बियों के साथ सहानुभूति और समवेदना प्रकट करता है।

२—यह सम्मेलन हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा, सभी विषयों की शिक्षा देने वाले विश्वविद्यालय की स्थापना की आवश्यकता का तीव्र अनुभव करता है। और इस दिशा में इन्दौर और ग्वालियर में जो प्रयास हुए हैं, उनका स्वागत करता है। सम्मेलन इन राज्यों के नरेशों से साग्रह अनुरोध करता है कि वे तत्संबंधी योजनाओं को कार्यान्वित करने में शीघ्रतापूर्वक प्रयत्नशील हों।

३—यह सम्मेलन आल इन्डिया रेडियो की हिन्दी-विरोधी नीति के प्रति अपना तीव्र असन्तोष और विरोध प्रकट करता है और बंबई, पेशावर, लाहौर, दिल्ली, लखनऊ आदि स्टेशनों से हिन्दुस्तानी के नाम पर जटिल अरबी-फारसी शब्दों से भरी उर्दू का जो निरन्तर और संगठित प्रचार किया जा रहा है उसकी निन्दा करता है। इसका निराकरण करने तथा इस सम्बंध में सर्वांगीण आन्दोलन करने के लिए सम्मेलन निम्नलिखित सज्जनों की एक समिति नियुक्त करता है—

१—श्री रामचन्द्र शर्मा, (संयोजक) २—श्री मौलिचन्द्र शर्मा, ३—श्री शिवराम सेवक, ४—श्रीमती सावित्री दुलारेलाल, ५—श्री रविशंकर शुक्ल।

४—यह सम्मेलन उत्कल विश्वविद्यालय के अधिकारियों से अनुरोध करता है कि हिन्दी भाषा-भाषियों द्वारा संचालित विद्यालयों में हिन्दी माध्यम के द्वारा शिक्षा

देने तथा हिन्दी भाषा और साहित्य को अध्ययन करने की स्वतंत्रता दे।

५—लगभग ६ वर्ष हुए काश्मीर राज्य ने अपनी आज्ञा द्वारा देवनागरी लिपि और आसान उर्दू को शिक्षा के लिए माध्यम स्वीकार किया था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने सन् १९४१ में अपने अबोहर के अधिवेशन में काश्मीर राज्य से अनुरोध किया था कि माध्यम की भाषा का नाम 'सरल हिन्दी' होना चाहिये। सम्मेलन को खेद है कि अभी तक माध्यम का नाम 'सरल हिन्दी' स्वीकार नहीं किया गया। सम्मेलन का पुनः अनुरोध है कि काश्मीर राज्य सरल हिन्दी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार करे।

आज तक काश्मीर राज्य ने देवनागरी लिपि और सरल हिन्दी की पुस्तकें प्रचलित नहीं कीं। सम्मेलन को राज्य की हिन्दी के प्रति इस उदासीनता पर खेद है। सम्मेलन का अनुरोध है कि यदि तुरन्त सम्भव न हो तो आगामी शिक्षा-वर्ष के आरम्भ होने से पहले सब पाठ्य विषयों की पुस्तकें हिन्दी भाषा और देवनागरीलिपि में तैयार कराकर छपाई जायँ।

अभी तक काश्मीर राज्य ने यह अड़चन भी नहीं हटाई है कि देवनागरी लिपि के द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध केवल उन स्कूलों में होगा जहां १५ प्रतिशत छात्र देवनागरी माध्यम द्वारा शिक्षा पाने की इच्छा प्रगट करें। सम्मेलन का निवेदन है कि राज्य के प्रत्येक बालक का जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह देवनागरी लिपि द्वारा अपनी शिक्षा पावे। इसलिए प्रत्येक स्कूल में जहां एक छात्र भी देव नागरी द्वारा शिक्षा पाना चाहता है उसका प्रबन्ध होना चाहिये। अतः सब अध्यापकों और शिक्षा विभाग के सब पदाधिकारियों के लिए हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि का ज्ञान अनिवार्य बनाया जाय और उनके ज्ञान की जांच के लिए परीक्षाएं नियत की जांय।

६—यह सम्मेलन निम्नांकित सज्जनों की एक समिति इस काम के लिए बनाता है कि वह उन देशी रियासतों में जहाँ की राज्य-भाषा हिन्दी या उर्दू है स्थानीय कार्यकर्ताओं के सहयोग से इस बात की जांच करे कि हिन्दी की वहाँ क्या दशा है। और अपनी जाँच का विवरण तथा आवश्यक योजना कार्यसमिति के सामने उपस्थित करे। इस समिति को यह अधिकार होगा कि वह दो व्यक्ति तक और भी सम्मिलित कर सकती है।

१—सर्व श्री मौलिचन्द्र शर्मा, दिल्ली। (प्रधान), २—कुमारी शकुन्तला सेठ, जम्मू; ३—रामनाथ शर्मा, ग्वालियर; ४—पूर्णचन्द्र जैन, जयपुर; ५—म०.तु० कुलकर्णी, पूना;

७—जयपुर राज्य के अधिकांश विभागों और कचहरियों में फारसी लिपि और...

कठिन उर्दू भाषा काम में लाई जाने से जनता को बड़ी असुविधा और असंतोष रहा है। ऐसी स्थिति में यह संतोष का विषय है कि जयपुर सरकार ने जनवरी १९४३ में राज्य के सभी विभागों और कचहरियों में देवनागरीलिपि में काम करने के संबंध में अपना निश्चय प्रकट किया है। परन्तु इस सम्मेलन को यह जानकर खेद हुआ है कि उक्त निश्चय को कार्यरूप देने के लिए अभी तक साधन नहीं बनाये गये हैं। इसके साथ ही कुछ समय से राज्य के कार्यालयों और न्यायालयों में निरन्तर बढ़ता हुआ अंगरेजी भाषा का प्रयोग बहुत चिन्ता का कारण बनता जा रहा है अतः यह सम्मेलन जयपुर सरकार से यह निवेदन करता है कि वे कृपया शीघ्र ही ऐसी योजना बनाकर काम में लावें जिससे राज्य के प्रत्येक विभाग और कचहरी में देवनागरी लिपि तथा सरल और सुबोध भाषा में काम होने लगे। यह सम्मेलन जयपुर के राज्य कर्मचारियों तथा वकीलों से भी अनुरोध करता है कि वे देवनागरी लिपि में काम करके अपने राष्ट्रभाषा प्रेम का परिचय दें। साथ ही यह सम्मेलन स्थानीय जनता और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं से अनुरोध करता है कि वे जयपुर राज्य में राष्ट्रभाषा के व्यापक प्रचार के लिए अपने शुभप्रयत्नों को बराबर जारी रखें।

८—यह संमेलन समस्त हिन्दी-प्रेमियों, लेखकों और कवियों से विशेषकर सम्मेलन के सदस्यों से, अनुरोध करता है कि वे रेडियो के कार्यक्रम में तब तक भाग न लें जब तक कि उसकी साधारण नीति हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अनुकूल न हो जाय, क्योंकि उसकी वर्तमान नीति हिन्दी के लिए हानिकर और अपमानजनक है। सम्मेलन की स्थायी समिति को अधिकार होगा कि वह समयानुसार इस निषेद को उठा दे।

९—सम्मेलन का यह अधिवेशन प्रस्ताव करता है कि राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के आगामी संगठन का कार्यकाल तीन साल के लिए हो।

१०—हैदराबाद राज्य में राज्य की ओर से हिन्दी विरोधिनी जो नीति चल रही है वह बहुत अनुचित और प्रजा के लिए हानिकर है। यह सम्मेलन निजाम सरकार से अनुरोध करता है कि वह शीघ्र वहां हिन्दी भाषी तथा हिन्दी प्रेमियों की इस मांग को स्वीकार करे कि उनके बालकों को हिन्दी भाषा द्वारा प्राथमिक शिक्षा देने की सुविधा प्रदान की जाय तथा उस्मानिया यूनिवर्सिटी में हिन्दी को भी एक स्वतंत्र तथा एच्छिक विषय स्वीकार किया जाय।

११—इस सम्मेलन को यह जान कर बड़ा क्षोभ हुआ है कि विहार-सरकार ने हिंदुस्तानी कमेटी तोड़कर भी शिक्षा के माध्यम के लिए एक अत्यन्त कृत्रिम हिन्दुस्तानी भाषा बनाकर उस भाषा में विभिन्न पुस्तकों के निर्माण तथा हिन्दुस्तानी

शब्दकोष, हिन्दुस्तानी व्याकरण और हिन्दुस्तानी पारिभाषिक शब्दसंग्रह के प्रकाशन का भार बिहार पाठ्य पुस्तक निर्धारिणी समिति को सौंप दिया है। यह सम्मेलन बिहार सरकार से साग्रह अनुरोध करता है कि वह उपर्युक्त हिन्दुस्तानी भाषा का प्रयोग रोक कर हिन्दी का व्यवहार करे और हिन्दुस्तानी शब्दकोष, व्याकरण तथा पारिभाषिक शब्द संग्रह के प्रकाशन का कार्य रोक दे।

१२—देश की सर्वाङ्गीण सांस्कृतिक उन्नति और देशी भाषाओं के पूर्ण विकास के लिये यह आवश्यक है कि सब पाठ्य विषयों में उच्चतम शिक्षा देशी भाषाओं के माध्यम से दी जाया करे और इस प्रकार देश में साहित्यिक स्वराज्य की स्थापना हो। परन्तु यह बड़े खेद का विषय है कि अभी तक बृटिश भारत की सब सरकारों द्वारा स्वीकृत विश्वविद्यालय अंगरेजी के माध्यम से शिक्षा दे रहे हैं।

अतः हिन्दी भाषी प्रान्तों में स्थित विश्वविद्यालयों में हिन्दी माध्यम की स्वीकृति के लिये तथा इस उद्देश्य से विश्वविद्यालयों के संचालकों तथा उनके निर्वाचकों का बहुमत संगृह करने के लिये यह सम्मेलन निम्नलिखित सज्जनों की एक समिति बनाता है जो इस नीति के शीघ्रतर साफल्य के लिये उचित कार्यवाही करे :—

श्री मौलिचन्द्र शर्मा, श्री श्रीप्रकाश, श्री गोस्वामी गणेशदत्त, श्री सेठ जुगलकिशोर बिड़ला, श्री संपूर्णानन्द।

१३—यह सम्मेलन, सम्मेलन की कार्यसमिति को आदेश देता है कि आगामी अधिवेशन के लिये आए निमंत्रणों पर विचार कर अपनी स्वीकृति की सूचना आमंत्रित करने वाली संस्था अथवा व्यक्ति को दे।

१४—कलकत्ते के श्री नेमीचन्द पांड्या जैन के पत्र का नीचे लिखा हुआ अंश पढ़ा गया—

"मैंने जयपुर सम्मेलन के अवसर पर ५००) रु० वार्षिक का एक पुरस्कार घोषित करने का विचार किया है। इसका नाम होगा—'श्री नेमीचंद-पुरस्कार', और वह वीर रस पूर्ण बाल-साहित्य के प्रकाशन पर दिया जायगा। बाल साहित्य के अन्तर्गत वे सभी रचनाएं गृहीत होंगी जो देश, धर्म, समाज एवं बालकों के चतुर्दिक विकास और उत्थान को ध्यान में रख कर लिखी जायंगी।"

निश्चय हुआ कि सम्मेलन श्री नेमीचन्द पांड्या के प्रस्ताव को स्वीकार करता है और इस दान के लिए उन्हें धन्यवाद देता है।

१५—कलकत्ते के श्री वसन्तलाल मुरारका जी के २३ सितम्बर के तार का निम्नलिखित सारांश पढ़ा गया :—

"५००) का मुरारका पारितोषिक आगामी पाँच वर्ष के लिए बंगाली, उड़िया

या आसामी भाषी सज्जन द्वारा लिखी गई हिन्दी पुस्तक पर प्रदान करने का निश्चय किया है।"

निश्चय हुआ कि सम्मेलन श्री बसन्तलाल जी मुरारका के प्रस्ताव को स्वीकार करता है और इस दान के लिए उन्हें धन्यवाद देता है।

१६—प्रान्तीय भाषाओं और बोलियों को पृथक पृथक सभ्यता और संस्कृति का परिचायक बताकर जो संकुचित आन्दोलन कई प्रदेशों में किए जा रहे हैं यह सम्मेलन उनको अवांछनीय समझता है। उसकी सम्मति है कि भारत की एक ही संस्कृति है और एक ही संस्कृति एवं भाषा से प्रभावित भाषाएं एवं बोलियां देश में प्रचलित हैं। इस सम्बन्ध को दृढ़ करने के लिए ऐसे प्रान्तीय शब्द-कोषों के निर्माण की आवश्यकता है जिनमें प्रचलित और प्रयुक्त तद्भव और तत्सम शब्दों एवं व्युत्पत्ति के आधार पर यह आन्तरिक एकता स्पष्ट हो जाय। यह सम्मेलन प्रान्तीय सम्मेलनों से अनुरोध करता है कि वे अपनी अपनी प्रादेशिक भाषा में इस कार्य को पूर्ण करने का प्रयत्न करें।

१७—सम्मेलन को कई आवश्यक कार्यों के लिए धन की अपेक्षा है।

अभी तक संस्कृत तथा अन्य प्राचीन भाषाओं के मुख्य ग्रन्थों के अच्छे अनुवाद हिन्दी में नहीं हुए हैं। अपने उस प्राचीन भंडार को हिन्दी में लाने की आवश्यकता है।

राजपूताना में प्राचीन हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों का बहुत अच्छा भंडार अभी तक भिन्न भिन्न स्थानों में इस प्रकार पड़ा है कि उसके नाश हो जाने की संभावना है। उसकी रक्षा की आवश्यकता है। सम्मेलन का ध्यान इस बात की ओर है कि जयपुर में उसका एक केन्द्र हो और एक संग्रहालय हो जहाँ यह ग्रन्थ-भण्डार खोज खोजकर इकट्ठा किया जाय और जहाँ से इस भंडार में से मुख्य सामग्री प्रकाशित की जाय।

इस बात की भी आवश्यकता है कि समस्त राजपूताना में इस केन्द्र से हिन्दी का प्रचार किया जाय।

इस बात की आवश्यकता का भी कई वर्षों से अनुभव हो रहा है कि एक ऐसी संस्था बनाई जाय जो हिन्दी-सेवा का व्रत लेने वालों के भरण-पोषण का भार अपने ऊपर ले और जो अपने नियंत्रण में रखकर उन व्रतियों के हिन्दी कार्य का मार्ग प्रदर्शन करें।

इन उपर्युक्त कामों के लिए सम्मेलन हिन्दी प्रेमी जनता से सात लाख रुपए के धन की भिक्षा मांगता है। सम्मेलन का विचार है कि यह सम्पत्ति कुछ ट्रस्टियों की देख रेख में रहे और इन ट्रस्टियों का यह काम हो कि वे आवश्यकता देखकर इस

सम्पत्ति और उसकी वृद्धि में से सम्मेलन के कार्य के लिए उसकी स्थायी समिति की मांग पर बराबर देते जाँय।

सम्मेलन इस प्रकार के ट्रस्ट बनाने और उन ट्रस्टियों द्वारा सात लाख की मांग उपस्थित करने आदि कामों के लिए निम्नलिखित हिन्दी सेवकों की समिति बनाता है—

१. गोस्वामी-गणेशदत्त जी, सभापति तथा संयोजक। २. श्री माखनलाल चतुर्वेदी ३. श्री श्री नारायण चतुर्वेदी ४. श्री मौलिचन्द्र शर्मा ५. श्री पुरुषोत्तमदास टंडन

१८—सिंध के श्री रामप्रसाद जी के पत्र का नीचे लिखा हुआ अंश पढ़ा गया:—मैं "५००) वार्षिक पारितोषिक ४ वर्ष के लिए, भारत की गौ सम्पत्ति संवर्द्धन विषयक साहित्य पर देना चाहता हूँ।"

निश्चय हुआ कि सम्मेलन श्री रामप्रसाद जी के प्रस्ताव को स्वीकार करता है और इस दान के लिए उन्हें धन्यवाद देता है।

सभापति द्वारा

१९—सम्मेलन की नियमावली में संशोधन

१—नियम १० (त) हटा दिया जाय और उसके स्थान पर लिखा जाय कि—

(१) अधिकृत शिक्षामंडलों (हाई स्कूल इन्टर-बोर्ड, यूनिवर्सिटी आदि) द्वारा स्वीकृत हिन्दी अध्यापकों में से वे सज्जन जो सम्मेलन को १) वार्षिक देकर 'रजिस्टर्ड' हो जायँगे, स्थायी समिति के लिए, अपने में से अपनी संख्या का दशमांश चुनेंगे, किन्तु किसी भी स्थिति में यह संख्या पन्द्रह से अधिक न होगी।

(२) हिन्दी पत्रकारों, लेखकों तथा कवियों में से वे सज्जन जो सम्मेलन को १) वार्षिक, देकर 'रजिस्टर्ड' हो जाँयगे, स्थायी समिति के लिए अपने में से अपनी संख्या का दशमांश चुनेंगे; किन्तु किसी भी स्थिति में यह संख्या पन्द्रह से अधिक न होगी।

(३) वार्षिक अधिवेशन के पूर्व स्थायी समिति अपनी बैठक में अगली स्थायी समिति के लिये प्रसिद्ध हिन्दी सेवियों, (लेखकों, कवियों, कार्यकर्त्ताओं) में से अधिक से अधिक १५ सज्जनों को चुनेगी जिन में से ५ से अधिक किसी एक प्रान्त के न होंगे।

२—नियम २२ (ख) के बाद नया पैरा इस प्रकार कर दिया जाय—

"इस समिति में कम से कम २० प्रतिशत सदस्य संयुक्तप्रान्त से बाहर के होंगे।"

३—नियम ३१ के आगे जोड़ा जाय कि—"इन परिषदों में स्वीकृत प्रस्ताव और योजनाएँ विषय निर्वाचिनी समिति के पास विचारार्थ भेजी जाँय। यदि विषय-निर्वाचिनी समिति का कार्य समाप्त हो चुका हो तो उन्हें स्थायी समिति में रखा जाय। आवश्यकतानुसार सम्मेलन में भी उपस्थित किए जा सकते हैं।"

४—नियम ३९ में..........."सम्मेलन के अधिवेशन में.........जहाँ सम्मेलन का अधिवेशन हो रहा है।" यह निकाल दिया जाय।

और दूसरे पैरा में यह जोड़ा जाय, "इस अधिवेशन में अगली स्थायी समिति के सदस्य भी भाग ले सकेंगे"

स्थायी समिति का प्रथम अधिवेशन

स्थायी समिति की बैठक बुधवार आश्विन सौर ११ संवत् २००१, तारीख २७-९-४४ को ४ बजे सायंकाल जयपुर में टाउनहाल में हुई।

१—नियमानुसार गोस्वामी गणेशदत्त जी ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—सम्मेलन के पदाधिकारियों के निर्वाचन का विषय उपस्थित किया गया।

श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन कार्यवाहक उपसभापति तथा श्री जगन्नाथ प्रसाद जी शुक्ल उपसभापति चुने गये।

सर्वसम्मति से पं० मौलिचन्द्र जी शर्मा प्रधान मंत्री चुने गए।

"श्री शर्मा जी ने वक्तव्य देते हुए कहा कि मुझे प्रधान मंत्री का पद प्रदान करके आप लोगों ने मेरे ऊपर अधिक भार सौंपा है। कार्यालय से अधिक से अधिक सहयोग मिलना चाहिए। मैंने सम्मेलन की नियमावली देखी है। उसके देखने से ज्ञात हुआ कि मैं काम कर सकता हूँ। महीने में दो बार प्रयाग जाऊँगा। व्यय अपने पास से करूँगा। व्यय की बात मेरे मार्ग में बाधक नहीं हो सकती।"

मुझे आप लोग अपना अनन्य सेवक तथा सहयोगी पावेंगे। यदि सहयोग मिलता रहा तो विश्वास है कि अपने कार्य की सफल रिपोर्ट आप लोगों के सामने उपस्थित कर सकूंगा और आपके धन्यवाद का भाजन बनूंगा।

इसके बाद मन्त्रिमण्डल के निम्नलिखित पदाधिकारी क्रमशः निर्वाचित हुए।

श्री ठाकुर श्रीनाथ सिंह—प्रबन्ध मन्त्री।
श्री सत्यदेवशास्त्री—प्रचार मन्त्री।
श्री डा० रामकुमार वर्मा—परीक्षा मन्त्री।
श्री रामनाथ 'सुमन'—साहित्य मन्त्री।
श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन—अर्थ मन्त्री।

डा० सत्य प्रकाश—संग्रह मन्त्री।

श्री रामचरण अग्रवाल—आय व्यय परीक्षक।

सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि पिछले सभापति जो तथा पदाधिकारियों को उनकी सेवाओं के लिए धन्यवाद दिया जाय।

मौलिचन्द्र शर्मा,
एम० ए० एल-एल० बी०
प्रधान मन्त्री।

सम्पादक—श्री रामनाथ 'सुमन' रजिस्टर्ड नं० ए० ६२१

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्त

(१) सुलभ साहित्यमाला

१ भारत-गीत ≡)
२ राष्ट्रभाषा ॥)
३ शिवाबावनी ≡)
४ पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १।)
५ सूरदास की विनयपत्रिका ≡)
६ नवीन पद्यसंग्रह १।)
७ विहारी-संग्रह ≡)
८ सती कणकी ॥)
९ हिन्दी पर फारसी का प्रभाव ॥≈)
१० ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार १।)

(२) साधारण पुस्तकमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था १)

(३) वैज्ञानिक पुस्तकमाला

१ सरल शरीर-विज्ञान ॥), ।।।)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल-साहित्य माला

१ बाल नाटक-माला
२ बाल-कथा भाग २ ।
३ बाल विभूति
४ वीर पुत्रियाँ ।

(५) नवीन पुस्तकें

१ सरल नागरिक शास्त्र
२ कृषि प्रवेशिका
३ विकास (नाटक) ॥
४ हिंदू-राज्य शास्त्र ३
५ कौटिल्य की शासन-पद्धति १।
६ गावों की समस्यायें
७ मीराँबाई की पदावली २
८ भट्ट निबंधावली १
९ बंगला-साहित्य की कथा १
१० शिशुपाल वध
११ ऐतिहासिक कथायें ॥
१२ दमयन्ती स्वयंवर

नवीन पुस्तकें

१—मैथिली लोकगीत—रामइकबालसिंह 'राकेश', भूमिका लेखक—पण्डित अमरनाथ झा
२—गोरखबानी—स्व० डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ३
३—दीवाली और होली—(कहानी संग्रह) श्री इलाचन्द्र जोशी १।
४—महावंश—भदन्त आनन्द कौसल्यायन ३
५—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ३॥
६—स्त्री का हृदय—(एकांकी नाटक) श्री उदयशंकर भट्ट १॥
७—राजस्थानी लोकगीत—स्व० सूर्यकरण पारीक १
८—सामान्य भाषाविज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना १
९—काव्यप्रकाश—मम्मटाचार्य, अनुवादक स्व० हरिमंगल मिश्र ६
१०—समाचार-पत्र शब्दकोष—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी० १।

प्रकाशक—श्रीरमाप्रसाद घिल्डियाल, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।
मुद्रक : श्रीगिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की मुख-पत्रिका

मार्गशीर्ष-पौष-माघ २००१

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग

सम्पादक—श्री रामनाथ 'सुमन'

विषय-सूची

भाग ३२, संख्या ४-५-६ :: मार्गशीर्ष-पौष-माघ २००१

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी में पाठ्य पुस्तकों की कमी कैसे दूर हो ?

[लेखक—पंडित दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल० बी०]

सम्मेलन के जयपुर के अधिवेशन में यह निश्चय हुआ है कि विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम हिंदी किये जाने के लिये दत्तचित होकर प्रयत्न होना चाहिये। बी० ए०, बी० एस-सी, बी० काम, एम० ए०, एम० एस-सी० इत्यादि कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम हिंदी किये जाने में सब से बड़ी असुविधा हिंदी में प्रायः सभी विषयों में पाठ्यपुस्तकों का अभाव है। हम इस लेख में एक ऐसी योजना दे रहे हैं जिसके अनुसार कार्य करने पर पाँच वर्षों के अंदर हिंदी में इतनी पाठ्यपुस्तकें तैयार हो जांयगी कि किसी भी विषय में उच्च से उच्च परीक्षा के लिये शिक्षा हिंदी के माध्यम द्वारा सुलभ हो जायगी।

युक्तप्रांत में प्रयाग, काशी, लखनऊ, अलीगढ़ और आगरा में विश्वविद्यालय स्थापित हैं। इन विश्वविद्यालयों में प्रायः सभी विषयों को पढ़ाने के लिये उच्च-कोटि के विद्वान और विशेषज्ञ नियुक्त हैं। थोड़ा सा प्रयत्न करने पर इन पांच विश्व-विद्यालयों में से प्रत्येक विषय के ऐसे चार पांच शिक्षक अवश्य मिल सकते हैं जिनको हिंदी से प्रेम है और जो विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम के अनुसार हिंदी में पाठ्यग्रंथ लिखाने में सहायता पहुँचाने को राजी किये जा सकते हैं। सम्मेलन पाँच वर्षों के लिये ऐसे २० पुस्तक लेखकों की नियुक्ति करे जो अपने विषय में सर्वोच्च परीक्षा डाक्टर, एम० ए० या एम० एस-सी० और साथ ही साथ सम्मेलन की रत्नपरीक्षा उत्तीर्ण हों अथवा जिनको उच्च कक्षाओं के लिये हिंदी में पाठ्यपुस्तकें लिखने का अच्छा अनुभव हो। इन लेखकों को १५०) मासिक वेतन १५०-५-२०० की ग्रेड में दिया जाय, जिससे उच्चकोटि के लेखक इस कार्य के लिये आकर्षित हो सकें। प्रत्येक लेखक को निम्नलिखित २० विषयों में से एक विषय पर पाठ्य पुस्तक लिखने या अनुवाद करने का कार्य सौंपा जाय:—(१) अंग्रेजी (२) हिंदी (३) उर्दू (४) संस्कृत (५) प्राचीन इतिहास (६) आधुनिक इतिहास (७) राजनीति (८) दर्शन (९) धर्मशास्त्र (१०) व्यापार-व्यवसाय (११) कृषि (१२) भूगोल (१३) शिक्षा (१४) गणित (१५) सैन्य विज्ञान (१६) भौतिक विज्ञान (१७) रसायन (१८) वनस्पति शास्त्र (१९) जंतुशास्त्र (२०) व्या-पारिक कानून। प्रत्येक विषय पर पाठ्यपुस्तक लिखना या अनुवाद करना विश्वविद्या-लयों के उस विषय के पाठ्यक्रम के अनुसार किसी विश्वविद्यालय के अध्यापक की

देखरेख में किया जावे। पाठ्यपुस्तक पर लेखक के रूप में उस अध्यापक का भी नाम रहे और कार्य की देखरेख करने के लिये अध्यापक को ५०) मासिक खर्च दिया जाय। यह रकम उसकी रायल्टी से अंत में काट ली जाय। पुस्तक लेखक को वेतन मिलेगा इसलिये उसको रायल्टी नहीं मिलेगी, परंतु अध्यापक को देखरेख करने के लिये और लेखक की जिम्मेदारी लेने के लिये १० प्रतिशत रायल्टी दी जाय। यदि बीसों लेखकों ने कार्य तत्परता से किया तो मुझे विश्वास है कि प्रत्येक लेखक ६ महीने में ५०० पृष्ठों की एक सुंदर मौलिक पुस्तक तैयार कर सकेगा या उतनी ही बड़ी पुस्तक का अनुवाद कर सकेगा। इस प्रकार प्रत्येक लेखक पांच वर्षों में कम से कम १० ऐसी मौलिक पुस्तकें या आवश्यकतानुसार अनुवादित पुस्तकें तैयार कर लेगा जो बी० ए० या एम० ए० की श्रेणियों के लिये पाठ्यपुस्तकों के रूप में उपयोग की जा सकेंगी।

बीस पुस्तक लेखकों का कार्य सुसंगठित रूप से चलाने के लिये एक संचालक की आवश्यकता होगी। इस संचालक को सब पाठ्यपुस्तकों के संपादन का भार भी सौंपा जायगा। यह कार्य उच्चकोटि का अनुभवी विद्वान ही कर सकेगा और उसके लिये उसे ५००) मासिक वेतन देना आवश्यक होगा। इस संचालक की सहायता के लिये एक लेखक तथा चपरासी भी देना होगा। इस संचालक के तथा पुस्तक लेखकों के आवश्यक मार्गव्यय तथा पत्र-व्यवहार व्यय का भी प्रबंध करना होगा। इस संचालक को पुस्तकों के प्रकाशित करने की भी व्यवस्था करनी होगी।

मुझे विश्वास है कि इस योजना के अनुसार कार्य करने पर दो वर्ष के अंदर हिंदी में इतनी पुस्तकें तैयार की जा सकती हैं कि बी० ए०; बी० एस-सी० और बी० काम की पढ़ाई हिंदी माध्यम द्वारा आसानी से की जा सकेगी। यदि कार्य जुलाई १९४५ से आरंभ कर दिया जाय तो जुलाई सन् १९४७ से पढ़ाई का आरंभ हिंदी माध्यम द्वारा हो सकता है और सन् १९४९ की बी० ए०, बी० एस-सी और बी० काम परीक्षाओं का माध्यम हिंदी किया जा सकता है। १९४७ से आगामी तीन वर्षों में एम० ए०, एम० एस-सी और एम० काम की परीक्षाओं की पाठ्यपुस्तकें तैयार होने पर सन् १९५२ की सब परीक्षाओं का माध्यम हिंदी किया जा सकेगा।

इस योजना के अनुसार कार्य करने के लिये नीचे लिखे अनुसार कम से कम ५ लाख रुपयों की आवश्यकता होगी :—

बीस पुस्तक लेखकों का वेतन (प्रति मास औसत वेतन १६०) पाँच वर्षों के लिये)	१ लाख ९२ हजार रुपये
बीस अध्यापकों का खर्च (प्रतिमास औसत ५०) पाँच वर्षों के लिये)	६० ” ”

एक संचालक का वेतन (प्रतिमास ५००) पाँच वर्षों के लिये)	३० हजार रुपये
कार्यालय का खर्च [१०५) मासिक प्रधान लेखक, चपरासी, डाक खर्च इ०]	८ " "
आकस्मिक खर्च, मार्ग व्यय इत्यादि	१० " "
करीब ४०० पुस्तकों का प्रकाशन खर्च (प्रति पुस्तक करीब ५०० रुपये)	२ लाख रुपये
योग	५ लाख रुपये

यदि सम्मेलन के अधिकारी प्रयत्न करें तो पाँच लाख रुपये इस कार्य के लिये दान रूप में मिल सकते हैं। परंतु यह कार्य ऐसा है जिससे भविष्य में काफी आमदनी होने की आशा की जा सकती है। अभी पाँच वर्ष तो शायद कुछ भी आमदनी न हो परंतु उसके बाद पुस्तकें पाठ्यग्रंथों के रूप में स्वीकृत होने पर आमदनी होना आरंभ हो जायगा। इसलिये मेरा सुझाव तो यह है कि सम्मेलन के अधिकारी गण जनता से ६ लाख रुपये क़र्ज के रूपमें प्राप्त करने का प्रयत्न करें। उसमें से एक लाख रुपया तो पाँच वर्षों तक क़र्ज पर सूद चुकाने के लिये अलग रख दिया जाय और पाँच लाख रुपये उपर्युक्त योजना के अनुसार खर्च किये जांय। कर्ज ३) प्रति सैकड़ा वार्षिक सूद की दर पर लिया जाय। मुझे विश्वास है कि सम्मेलन को इस अत्यन्त आवश्यक कार्य के लिये ६ लाख रुपयों का कर्ज आसानी से मिल जायगा। यदि सम्मेलन के अधिकारीगण दत्तचित्त होकर प्रयत्न करें तो दो महीनों के अंदर बंबई, कलकता, कानपुर, नागपुर, आगरा, लखनऊ, काशी, प्रयाग, इंदौर, जयपुर, दिल्ली, लाहौर इत्यादि स्थानों से ६ लाख रुपये कर्ज पत्रों द्वारा आसानी से प्राप्त हो सकेंगे। आशा है। सम्मेलन के अधिकारीगण इस योजना पर गंभीरता पूर्वक विचार करने की कृपा करेंगे।

प्रेमचन्द और उपमा

[लेखक—श्री ओम्प्रकाश अग्रवाल एम्० ए०]

"सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है वह खा लेते हैं उसी तरह जैसे इंजिन कोयला खा लेता है—" गोदान

'उसी तरह जैसे इञ्जिन कोयला खा लेता है'—अभी तक मन में जमा हुआ है और शायद अमर हो गया है। गोदान को मैंने कई बार पढ़ा और हर समय भिन्न-

भिन्न दृष्टिकोणों को दृष्टि में रखकर अध्ययन किया। किन्तु अन्त होते न होते प्रत्येक भावना को उसी एक रंग में रँगा पाया। उसके अनेक पहलू मानों एक ही विशाल भवन के खम्भे हों जिनका निजी प्रभाव सामूहिक प्रभाव से किसी भी प्रकार कम नहीं किन्तु सामूहिक प्रभाव सतत और सत्य रहता है।

कथानकों की स्वाभाविकता, भावों की सरसता और मार्मिक सरलता के लिए भले ही प्रेमचंद हमारे मस्तिष्क में चक्कर लगाते रहते हों, पर उनकी भाषा को तो हम न जाने कितनी प्यासी आँखों से पिया करते हैं। जितना पीते हैं उतनी ही प्यास बढ़ती जाती है। इसी से बार-बार उनकी कहानियाँ, और उपन्यास पढ़ डालने पर भी होठ फड़फड़ाते ही रहते हैं।

गद्य में अलंकारों की मार्मिकता के प्रदर्शन के लिए हमारे प्रतीक स्वर्गीय प्रेमचंद हैं। तो उनके भाव स्वतः ही भाषा को सजीव बना देते हैं किन्तु उनके अलंकारों से उसमें गति आ जाती है। जिससे उसमें छिपा सौन्दर्य छिटक जाता है। जिस प्रकार प्रेमचंद्र के कथानक अपनी प्रकृति में ऊपर नीचे तथा समतल भूमि में लुक-छिपकर प्रकट होते चलते हैं उसी प्रकार उनकी भाषा में भाव भी। प्रेमचन्द अपनी भाषा ही में छिपे हैं—यह कहते मुझे तनिक भी संकोच नहीं होता। वे आधुनिक हिंदी गद्य के निर्माता हैं और सम्भवतः पूरक भी।

भाषा की गति, रोक-थाम, ऐंठ-मरोड़ और सौन्दर्य को नियन्त्रित करने के लिये प्रेमचंद ने अलंकारों का बड़ी ही विचित्रता से प्रयोग किया है। भाषा की गति तीव्र हो जाती है तो उसे अलंकार का ब्रेक लगाकर कम कर देते हैं, मन्द पड़ जाती है तो अलंकार का एक पैडल मार देते हैं। मानों अलंकार इनकी भाषा का रेगुलेटर हो। प्रेमचंद जी ने यों तो अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है किन्तु उनको उपमा और रूपक सबसे अधिकप्रिय हैं। उपमा का स्थान अनेक आचार्यों ने सर्वोपरि माना है। क्योंकि यह राहगीर अनपढ़ के हृदय की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, व्योगिनी के हृदय की मानों माध्यम है और काव्य-मर्मज्ञ भी इसमें अपनी सूझ छाँट-छाँट कर रखते हैं। अप्पयदीक्षित ने तो इसे अलंकारों का बीज मानकर इसकी व्यापकता रूपक, उपमेयोपमा, अनन्वयालंकार, प्रतीप, स्मरण, परिणाम, सन्देह, उल्लेख, अपह्नुति, निदर्शना आदि अनेक अलंकारों में दर्शायी है। हमारे अमर कलाकार प्रेमचन्द भी इसे हृदय से अपनाते हैं बल्कि अपनाते ही नहीं अपना सर्वस्व ही उसे सौंप देते हैं।

उनके साहित्य में उपमा सतत् व्यापक है। इसी से उसको अनेक रूपों में पाते हैं प्रेमचंद की उपमा में अपनी विशेषताएँ हैं जो नवीन हैं, मौलिक हैं, वर्तमान

समाज से ली गई हैं, जिनमें आत्मिकता, धार्मिकता, भौतिकता के होते हुए भी हमारे वातावरण का सुन्दर प्रदर्शन है। उदाहरण के लिए उपरोक्त उपमा को ही ले सकते हैं। 'सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है, वह खा लेते हैं उसी तरह जैसे इञ्जिन कोयला खा लेता है।' इञ्जिन हमारे वातावरण की मुख्य वस्तु है। उसका उदाहरण देकर प्रेमचंद जी ने अपनी बात को कितनी सफाई और गहराई के साथ हृदय में बैठा दिया। काम करने के लिए इञ्जिन और खाने के लिए कोयला—जिसका प्रभाव हुआ—मोटा-झोटा खाने वालों के प्रति सहानुभूति। उनका आदर्श और उद्देश्य दोनों पूरे होते जान पड़ते हैं।

उनकी उपमाओं को हम अनेक भागों में बांट सकते हैं। जिनमें मुख्य हैं—प्राकृतिक उपमाएँ, सामाजिक उपमाएँ, मानव-स्वभाव से सम्बन्ध रखनेवाली उपमाएँ भौतिक-संसार से ली हुई उपमाएँ, भावात्मक एवं आदर्शात्मक उपमाएँ। उनकी उपमाएँ मौलिक होते हुए भी बिलकुल घरेलू हैं इसीलिए उनकी मार्मिकता बहुत बढ़ जाती है।

उनकी प्राकृतिक उपमाएँ प्रायः सम्पूर्ण साहित्य में बिखरी पड़ी हैं किन्तु विशेष कर वे गोदान तथा कहानियों में मिलती हैं। उनमें सुधारवादी भावनाएँ और विस्मय पद-पद पर छलकते रहते हैं।

'बिरादरी उसके जीवन में वृक्ष की भाँति जड़ जमाए हुए थी और उसकी नसें उसके रोम रोम में बिंधी हुई थीं।'—गोदान

'झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भांति अपने छोटे से घोंसले में एकान्त जीवन काट रही थी। वहाँ नगर का मत्त आग्रह न था, न वह उद्दीप्त उल्लास, न गायकों की मीठी आवाजें; मगर बहेलिए का जाल और छल भी तो वहाँ न था'—गोदान

'उसने नियत भी बिगाड़ी, अधर्म भी कमाया, कोई ऐसी बुराई न थी जिसमें वह न पड़ा हो, पर जीवन की कोई अभिलाषा न पूरी हुई, और भले दिन मृग-तृष्णा की भाँति दूर ही होते चले गए, यहाँ तक कि अब उसे वह धोखा भी न रह गया था, झूठी आशा की हरियाली और चमक भी अब नज़र न आती थी'—गोदान

एक निराश युवक के जीवन का कितना सुन्दर विश्लेषण किया है। 'आशा ने आगे बढ़ाया किन्तु निराशा के थपेड़ों ने मृग की भाँति बेचैन बना दिया'।

'उत्तरीय गिरिमाला के बीच में एक छोटा सा हरा-भरा गाँव है, सामने गंगा तरुणी की भाँति हँसती, खेलती, नाचती-गाती चली जारही है। गाँव के पीछे एक बड़ा पहाड़ किसी वृद्ध जोगी की भाँति जटा बढ़ाये, काला और गम्भीर अपने विचारों में निमग्न खड़ा है'—कर्म भूमि।

इसमें प्राकृतिक अंगों की मानव से उपमा दी गई है। गंगा की उपमा ऐसी तरुणी से दी है जो गतिमय और रागमय है। पहाड़ की साधु से जो मौन और गम्भीर है।

'फागुन अपनी झोली में नव-जीवन की विभूति लेकर आ पहुँचा। आम के पेड़ दोनों हाथों से बौर की सुगंध बाँट रहे थे और कोयल आपकी डालियों में छिपी हुई संगीत का गुप्त-दान कर रही थी'—गोदान

ख़ज़ाने की कुंजी निकालकर फेंक दी, बही खाते पटक दिए, किवाड़ धड़ाके से बन्द किए और हवा की तरह सन्न से निकल गए।—ईश्वरी न्याय

'जैसे वर्षाकाल में बादलों की नई-नई सूरतें बनती, और फिर हवा के वेग से बिगड़ जाती हैं, वही दशा उस समय उनके मनसूबों की हो रही थी'— ईश्वरी न्याय

'शेर ने दिल पर चोट की। पत्थर में भी सूराख होते हैं; पहाड़ों में भी हरियाली होती है, पाषाण हृदय में भी रस होता है। इस शेर ने पत्थर को पिघला दिया— क़ातिलों के उठे हुए हाथ उठे ही रह गए। जो सिपाही जहां था, वहीं बुत बन गया।' —वज्रपात

'अरावली की हरी भरी, झूमती हुई पहाड़ियों के दामन में जसवन्त नगर यों शयन कर रहा है, जैसे माता की गोद में बालक'—रंग भूमि।

'आकाश पर श्यामल घन घटा छाई हुई थी, पर विनय के हृदयाकाश पर छाई हुई शोक घटा उससे कहीं घनघोर, अपार और असूझ थी'—रंगभूमि।

'इतने में स्टेशन नज़र आया। सोफ़िया ने गाड़ी का द्वार खोल दिया, और दोनों चुपके से उतर पड़े, जैसे चिड़ियों का जोड़ा घोंसले से दाने की खोज में उड़ जाए।'—रंगभूमि।

सामाजिक उपमाएँ अधिकतर सुधार और आदर्श से सम्बन्ध रखती हैं। पर उनकी मार्मिकता कहीं कहीं पर तो बड़ी ही प्रभावक हो गई है।

'हीरा क्रोध में उसे मारता था, लेकिन चलता था, उसी के इशारों पर, उस घोड़े की भाँति जो कभी कभी स्वामी के लात मारकर भी उसी के आसन के नीचे चलता है।'—गोदान

'होरी जब काम धंधे से छुट्टी पाकर चिलम पीने लगता था, तो यह चिन्ता एक काली दीवार की भाँति उसे चारों ओर से घेर लेती थी, जिसमें से निकलने की उसे कोई गली न सूझती थी'— गोदान

'पर बिरादरी का भय पिशाच की भांति सिर पर सवार अंकुश दिये जा रहा था।'—गोदान

'युवावस्था आवेशमय होती है, क्रोध से आग हो जाती है तो करुणा से पानी भी हो जाती है।'—वैर का अन्त

'विवाह को मैं एक सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है, न स्त्री को। समझौता करने से पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने पर आपके हाथ कट जाते हैं'—गोदान

इसी प्रकार उनकी मानव स्वभाव की ओर आदर्शात्मक उपमाएँ उत्तम से उत्तम रूप में मिलती हैं। प्रेमचंद जी यथार्थ की अभिव्यक्ति में आदर्श की खोज निकालते हैं जैसे सोनिया नदी के कीचड़ में से सोना। यही उनकी कला की विशेषता है। उसमें प्रगतिवाद की अश्लीलता भी शिष्टपोषाक पहन कर आती है।

'हाय रे, मनुष्य के मनोरथ, तेरी भित्ति कितनी अस्थिर है। बालू पर की दीवार तो वर्षा में गिरती है, पर तेरी दीवार बिना पानी-बूँद के ढह जाती है। आंधी में दीपक का कुछ भरोसा किया जा सकता है, पर तेरा नहीं। तेरी अस्थिरता के आगे बालकों का घरोंदा अचल पर्वत है, वेश्या का प्रेम सती की प्रतिज्ञा की भाँति अटल'। —वज्रपात।

'तुम तो झूठ-मूठ लाज ढो रहे हो, निकाल क्यों नहीं देते घर से'—रंगभूमि।

'उनकी धन-कामना विद्या-व्यसन की भांति तृप्त नहीं होती'—रंगभूमि।

'वह जैसे अपने नारीत्व के सम्पूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभयदान दे रही थी। उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह सा निकलकर होरी को अपने अन्दर छिपाए लेता था। विपत्ति के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी'—गोदान

'यह गृहस्थी जी का जंजाल है, सोने की हँसिया है, जिसे न उगलते बनता है न निगलते'—गोदान

'वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है'—गोदान

'मुन्शी जी दफ्तर में दाखिल हुए। भीतर चिराग़ जल रहा था। मुन्शी जी को देखकर उसने एक दफ़े सिर हिला दिया! मानों उन्हें भीतर आने से रोका हो'—ईश्वरी न्याय।

'मगर कमीशन एक मनोहर वाटिका है, जहाँ न मनुष्य का डर है, न परमात्मा का भय'—सज्जनता का दण्ड।

भावात्मक उपमाएँ ही विशेषकर आत्मिक भी हैं। मानस की स्वाभाविक अभिव्यक्ति होने के कारण उनमें भावों के साथ साथ भाषा बहुत ही सुन्दर है, और भावों के अनुरूप है। ऐसी उपमाओं का हृदय पर अमिट प्रभाव पड़ता है और वे सदा मन में गूंजती रहती हैं।

'धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे पाँव आते भी देखा था, आँधी की तरह आते भी देखा था।···प्राण में एक धक्का सा लगा।'

—गोदान

'मगर सब कुछ समझकर भी धनिया आशा की मिटती हुई छाया को पकड़े हुए थी। आँखों से आँसू गिर रहे थे पर यन्त्र की भाँति दौड़ कर कभी आम भून कर पन्ना बनाती, कभी होरी की देह में गेहूँ की भूसी की मालिश करती।'

—गोदान

'माता का हृदय दया का आगार है। उसे जलाओ तो उसमें से दया की ही सुगंध निकलती है। पीसो तो दया का ही रस निकलता है। वह देवी है। विपत्ति की क्रूर लीलाएँ भी उस स्वच्छ और निर्मल स्रोत को मलिन नहीं कर सकतीं।'

—माता का हृदय

भौतिक संसार एवं दैनिक जीवन से संबंध रखने वाली उपमाएँ विशेषकर आदर्शात्मक हैं।

'पहले का अनुभव यही बता रहा था कि क़र्ज़ वह मेहमान है, जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता'—

—गोदान

'जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दी से जल उठती है, उसी तरह क्षुधा से बावला मनुष्य भी जरा ज़रा सी बात पर तिनक उठता है'—बड़े घर की बेटी

'पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे, मानों दो खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों'— शतरंज के खिलाड़ी

'गाय मन मारे उदास बैठी थी, जैसे कोई वधू ससुराल गई हो,—गोदान

'शराब का नशा उनके ऊपर सिंह की भाँति झपटा और दबोच बैठा।···यह स्वप्न का रोमानी वैचित्र्य न था, जागृति का वह चक्कर था, जिसमें साकार निराकार हो जाता है।'—गोदान।

ज्ञान और आत्मा से संबंध रखने वाली निम्न उपमाएँ भी उल्लेखनीय हैं;—

'तंग अंधेरी दुर्गन्धिपूर्ण कीचड़ से भरी हुई गलियों में वे नंगे पाँव स्वार्थ, लोभ और कपट का बोझ लिए चले जाते थे। मानों पापमय आत्मा नरक की गलियों

में बही जाती थी'—गृहदाह

'जिस तरह कलुषित हृदय में कहीं कहीं धर्म का धुँधला प्रकाश रहता है, उसी तरह नदी की काली सतह पर तारे झिलमिला रहे थे।'

'ज्ञान की ज्वाला मन की जगह बाहर दहक रही थी'—

'आत्माभिमान आशा की भाँति चिरजीवी होता है'—गृहदाह

अतएव हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द जी की उपमाएँ दैनिक जीवन से ली गई हैं। छोटे छोटे, मुहाविरेदार वाक्यों में उनकी उपमाएं मानों गागर में सागर हैं। व्यंग्य और परिहास उड़ाने में प्रेमचन्द जी दक्ष हैं। जिनका उद्देश्य होता है सुधार ही। अतएव ऐसे स्थानों पर उनकी भाषा नावक के तीर की भाँति छोटी पर गहरे घाव करने वाली होती है।

जनताकी भाषाका प्रश्न[1]

[माननीय श्री पुरुषोत्तमदासजी टण्डन]

'मैं आप सभीका आभारी हूँ जो आपने इस गोरखपुर जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापतिका आसन देकर मेरा मान किया है। इस स्थान, इसकी प्राचीन पवित्रता और इसके साथ हमारे देश, धर्म तथा जनताकी सांस्कृतिक उत्थानकी जो स्मृतियां बंधी हैं, मेरे मनमें उठ रही हैं। मेरे आंखके सामने वह चित्र खड़ा हो रहा है जब भगवान बुद्धने एक युगकी जाती बेला में उत्पन्न होकर एक नये युगका प्रवेश कराया था।। भगवान बुद्धके पीछे एक नया इतिहास बना। यह वह समय था जब सहस्रों वर्षसे चली आ रही एक संस्कृति थी और उसकी प्रतीक एक वाणी थी। भगवान बुद्धने युग बदलने वाला यह काम किया कि उन्होंने युगोंसे चलती हुई वाणी से अलग होकर जनताकी वाणीमें काम करना आरम्भ किया। जो धर्म शताब्दियों से चला आ रहा था उसमें रूढ़ियां घुस गयीं थी। उच्च भावनाएं निकृष्ट हो गयी थीं। वैदिक धर्मका स्वरूप ऐसा हो गया था कि उसे तोड़ना ही उस समयकी आवश्यकता थी। वेदोंके नाम पर जो धर्ममें बुराइयां घुस गयी थीं उन्हें दूर करनेके लिये एक महान पुरुषकी आवश्यकता थी। ऐसी आवश्यकता समय-समयपर हर देशमें हुआ करती है। इसी आवश्यकतामें भगवान बुद्ध अवतरित हुए।

---

[1]जनपद-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन कुशीनगरमें माननीय टण्डन जी के भाषणके आधार पर।

हम लोग भाषाके प्रश्नपर विचार करनेके लिए एकत्र हुए हैं। हमारे सामने भाषाका दृष्टिकोण है। अस्तु—भगवान बुद्धने देखा कि उस समय की संस्कृतिकी जो वाणी थी, देशकी जो थाती थी वह संस्कृत वाणी ऊंचे स्तरकी वाणी थी। उन्होंने देखा कि इससे आवश्यकताकी पूर्ति नहीं हो सकती। हमें जनताकी भाषामें ही जनताके पास जाना होगा। हमेशा हर देशमें ऐसा होता रहा है। काम करने वालोंको जिन्हें वर्तमानसे असन्तोष रहता है, जो वर्तमानकी रूढ़ियोंको तोड़ कर समाजका नव निर्माण करना चाहते हैं उनके लिए आवश्यक होता है कि जनताकी भाषामें जनताके पास पहुँचकर पुरानी रूढ़ियोंको तोड़ें। जिस समाजमें ऐसे पुरुष नहीं होते जो रूढ़ियोंसे लड़ें, जो समाज ऐसे पुरुषके सृजनकी शक्ति छोड़ देता है उस समाजका नाश होता है। जिस समाजमें लोग रूढ़ियोंसे लड़नेके लिए सन्नद्ध होते हैं वह समाज समय-समयपर अपनेको ठीक करता रहता है। यह काम राजनीतिक और सामाजिक सभी क्षेत्रोंमें होता है। उस समय नया समाज—नया संसार बनाता है। इसी आशासे भगवान बुद्धने जनताकी भाषाका उपयोग किया। यही काम युरोपमें लूथरने किया। उससे पहले ईसाइयोंका स्वरूप बिलकुल भिन्न था।

भगवान बुद्धके समय हमारे यहां जनताकी भाषा पाली थी। वह पश्चिमी भाषा थी। संयुक्तप्रान्तके पश्चिमी भागमें पञ्जाबके निकट वह पली और ऊपजी है। बिहारमें मागधीका प्रचार था। महावीरने मागधीकी शरण ली। बौद्ध ग्रन्थ पाली और संस्कृतमें है। जैन ग्रन्थ मागधी और अर्धमागधीमें। इस प्रकार जनताकी भाषाकी शरण लेना समय-समयपर समाज-सुधारकों के लिए आवश्यक रहा है।

बाइबिल मूलरूपमें हिब्रू में थी। फिर उसका अनुवाद यूनानी और लैटिनमें हुआ। गिरजाघरमें लैटिन चला करती थी। हमारे घरोंमें कथाओं, विवाह संस्कारोंमें संस्कृत भाषाका प्रयोग होता है जिसे हम सब नहीं समझते। वहां मरने, विवाह आदि संस्कारके समय लैटिनका प्रयोग होता था। इस प्रकार समझमें न आनेवाली भाषाका प्रभाव हृदयपर नहीं होता। इसलिए लूथरने उसका अनुवाद जनताकी भाषा में किया। फिर अन्य भाषाओंमें उसका अनुवाद हुआ।

हिन्दीका महत्व

आज हमारे देशमें हिन्दीका मान है। आवश्यकताएँ जनताके सम्पर्क में आनेके लिए जनता की भाषा के निकट आना आवश्यक कर देती हैं। इस प्रकार भाषा एक दूसरेसे मिलती हुई आगेकी ओर बढ़ती है। संस्कृतका पालीसे मिलान है। उसका सम्बन्ध मागधीसे भी है। संस्कृत पहले थी कि पाली, इस विवादमें जानेकी जरूरत नहीं। पाली प्राकृत है। उसमें से अपभ्रंश निकली। उसका रूप हिन्दीसे

मिलता हुआ है ।

इस प्रकार प्राचीन समयसे भाषाका रूप बदलता आ रहा है और उसका बदला हुआ रूप हिन्दी है । हिन्दीको किसीने अप्राकृतिक रूपसे बना दिया हो ऐसी बात नहीं है । इसका श्रोत स्पष्ट दिखाई पड़ता है । हिन्दीके जो विरोधी हैं वह कह देते हैं कि यह फोर्ट विलियममें लल्लूलालजीके समयकी बनी भाषा है । पर यह गलत है । हां उर्दू का, जो हिन्दीका दूसरा स्वरूप है, जन्म १७ वीं शताब्दीमें हुआ, ऐसा कहा जा सकता है । पर उसका जन्म दिल्लीमें नहीं, दक्षिणमें हुआ । फिर वह दिल्लीमें अपनायी गयी । उसका असर दक्षिणपर पड़ा और उर्दू भाषा वहीं बनी ।

उर्दू का विकास

उस समय मुसलमानोंकी वही भाषा थी जो हिन्दुओंकी । मुसलमानों ने ही इसे हिन्दी, हिन्दवी नाम दिया । अरबी-फारसीसे भरे हिन्दीका नाम पीछेसे उर्दू दिया गया । इस प्रकार १७ वीं शताब्दीके लगभग यह दक्षिणमें पनपी और दिल्ली आयी फिर वहाँ से लखनऊ । तब 'नासिख' ने 'मतरुक' का सिद्धान्त निकाला । उन्होंने गँवारू लफ़्ज कहकर कुछ शब्दों की फिहरिस्त बनाई और उन्हें निकालकर अरबी-फारसी का प्रवेश कराया ' उन्होंने जो यह रङ्ग दिया वह चल गया और उर्दू का विकास हुआ । फिसाना आजाब के लेखक सरूर साहबने नासिक की तारीफ में लिखा—

बुलबुले शीराज को रश्क है
नासिक का सरूर ।
कूचये हाय लखनऊ को
असफा कर दिया ॥

अर्थात् लखनऊ को फारस बना दिया । इस तारीफ से ही अनुमान कर सकते हैं कि नासिख साहब की रंगत क्या थी । वह १८ वीं शताब्दी के आरम्भ की बात है । फारसी चल नहीं सकती थी इसलिए उन्होंने अरबी-फारसी मिश्रित उर्दू को चलाया । उनके इस स्वप्न से कि इस भाषा में फारसी के शब्दों का इतना बाहुल्य कर दें कि वह फारसी के निकट आ जाय, देश का कितना लाभ हुआ यह भाषा विज्ञान पर विचार रखने वाले सोच सकते हैं । यह जड़ थी हिन्दू और मुसलमानों को लड़ाने की । इसने हमारी भाषा को बड़ा नुकसान पहुँचाया । भाषा समाज की सेवा के लिए है । उसका महत्त्व जनता की सेवा में है ।

नासिक के समय का समाज गिरा हुआ था । वाजिदअली का दरबार सड़ाहुआ था, पतनोन्मुख था । ऐसे ही दरबार के लिए नासिख जैसे लोग लिखा करते थे । उन्होंने ही भाषा में हिंदू-मुसलमान भेद उत्पन्न किया ।

भाषा और धर्म

हमें देखना है कि जनता का लाभ किसमें है। हम ऐसी भाषा लेकर च
जिससे भारतवर्ष में एकता उत्पन्न कर सकें। १७ वीं शताब्दी में हिंदी और उर्दू
जो अन्तर आया वह आज भी है और पहले से बढ़ा हुआ है। मुसलमान भाइयों
उर्दू में धर्म का प्रश्न लगा दिया है। दूर देश के प्रेम की सूरत लाकर खड़ी कर दी
अरब फारस के सम्बन्ध को भाषा में जोड़ दिया। ऐसा करके वे इस्लामी संस्कृति क
मजबूत करते हैं ऐसी उनकी धारणा है। इसका नतीजा यह है कि वे समझते हैं
उर्दू सीखना चाहिए। उर्दू भाषा का धर्म से सम्बन्ध नहीं है। हाँ कुरान अरबी
है। चीन में मुसलमान हैं पर क्या वे अरबी मिश्रित चीनी बोलते हैं। इस्लाम क
केन्द्र तुर्की है। वहाँ कमाल अतातुर्क ने जो काम किया वह जनता की दृष्टि से तुर्क
को आगे ले जाने के लिए। उन्होंने अपनी भाषा से अरबी-फारसी लफ़्ज निका
फेंके ऐसा उन्हें जनता के हित में आवश्यक जान पड़ा। उन्होंने समझा कि अरब
भाषा और लिपि से हानि है। ईरानी भी अरबी लफ़्जों को निकाल रहे हैं। किन्
हमारे देश की हालत दूसरी है। मुसलमान भाई यह नहीं समझते कि हिंदी उस दे
की भाषा है जहाँ वे पैदा हुये हैं। वे भाषा में इस्लाम को लाना पसन्द करते हैं।
मुसलमान भाई कहते हैं कि हम लोग भी तो अपने भाषा में संस्कृत लाने का प्रय
करते हैं। पर वह यह नहीं अनुभव करते हैं कि जहाँ वह रहते हैं वह वहीं की भाष
है। बंगाल और गुजरात के मुसलमान बंगाली और गुजराती बोलते हैं। उसमें संस्कृ
भरी हुई है। धार्मिक प्रश्न से भाषा को अलग कर लिया जाय तो मुसलमान भ
संस्कृत भरने लगें। यह समझने का प्रश्न है।

रेडियो की भाषा

आज शिक्षा में, फिल्म में, रेडियो में भाषा का प्रश्न उपस्थित है। हर जग
सवाल है कि भाषा क्या हो? हिन्दी हो, उर्दू हो या मिली जुली। अभी हाल म
आन्दोलन आरम्भ हुआ है कि रेडियो की भाषा-नीति हिंदी विरोधी है। सरकार
एक कमेटी बैठायी। उसमें साहित्य सम्मेलन और अंजुमने-तरक्की ए-उर्दू के प्रतिनि
बुलाये और उसके साथ रेडियो कमेटी बैठी। उसने प्रश्न भेजा और साथ में तीन शब
लिख भेजे। अंगरेजी के 'इकनामिक' शब्द के लिए रेडियो की भाषा में क्या र
जाय 'इक्तसादी' या 'आर्थिक'? यदि किसी का स्वागत करना है तो उनके लि
'स्वागत' कहें या 'इस्तेकबाल'? इस सवाल का हल कैसे हो? कोई सिद्धान्त होन
चाहिए। कठहुज्जती की बात छोड़ें। अरबी-फारसी रखना चाहते हों तो रखें, बात भि
है। पर संस्कृत और प्राकृत से भागकर जाएँगे कहाँ? यह तो हमारी नसों में घुसी है

यह भाषा की जड़ है। संस्कृत छोड़ो, फारसी छोड़ो, यह कठहुज्जती है। शब्दों के प्रयोग में यह ध्यान रखना पड़ेगा कि अधिक से अधिक लोग उसे किस रूप में समझ सकेंगे हमें उन्हीं धातुओं और शब्दों को लेना होगा। 'स्वागत' और 'इस्तेकबाल' को लीजिए। अधिकांश लोग 'स्वागत' समझ सकेंगे, 'इस्तेकबाल' नहीं। मराठी, बङ्गाली उड़िया और गुजराती बोलनेवाले भी उसे ही समझ सकेंगे। निश्चय है कि प्राकृत से से बनी संस्कृत के समीप जो शब्द होगा वही अधिकाधिक समझा जा सकेगा।

राष्ट्रभाषा का स्वरूप

एक बार मुझे महाराष्ट्र जाने का अवसर मिला। पूना में राष्ट्रभाषा प्रचार परीक्षा में उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को प्रमाणपत्र देने के लिए सभा हुई। प्रमाणपत्र मेरे हाथ से बँटवाया गया। प्रमाणपत्र लेने वालों में बड़ी उम्रकी लड़कियाँ, माताएँ, बी० ए०, एम० ए० उत्तीर्ण लोग प्रमाणपत्र लेने आये। उस सभा के सभापति वैशम्पायन जी थे। मैं उस सभा में जब बोल चुका तो मेरी भाषा की टीका करते हुए वैशम्पायन जी ने कहा—"आपने टंडन जी का भाषण सुना है। इससे पहले आपने जब दो बड़े नेताओं के भाषण सुने थे तब प्रश्न किया था कि क्या यही राष्ट्रभाषा का स्वरूप है? यदि उसका यही स्वरूप है तो बाज आये ऐसी राष्ट्रभाषा से। इससे तो महाराष्ट्र ही भली। उनके भाषण में अरबी-फारसी मिश्रित थी। पर वह राष्ट्रभाषा का स्वरूप नहीं था। उसका स्वरूप यह है जो आपने टंडनजी से सुना है। आप सब इसे समझ सके या नहीं?" सबने कहा—'हाँ'। यदि आप 'स्वागत' लेकर जायँ तो उड़िया, बङ्गाली, महाराष्ट्री सभी आपका स्वागत करेंगे। 'इस्तेकबाल' लेकर जायँगे तो आपका कोई 'इस्तेकबाल' न करेगा। मेरे कहने का मतलब यह नहीं कि जो अरबी-फारसी के शब्द प्रचलित हैं उन्हें निकाल फेंकिए। मैं अपने वकील भाइयों से कहूँगा कि यदि वे 'मुद्दई' और 'मुद्दालेह' लिखना चाहते हैं तो लिखें पर 'जेवरात तिलई व नकरई' जैसी भाषा की जरूरत नहीं है। सरल भाषा लिखें। हम समाज के टुकड़े हैं। भाषा इसलिए सीखते हैं कि सबके पास जायँ। 'इक्तसादी' और 'आर्थिक' दोनों अप्रचलित शब्द हैं पर 'आर्थिक' के समझने वाले 'इक्तसादी' समझने वालों से लाखों ज्यादा हैं। प्रश्न यह है कि नया शब्द बनाना हो तो कहाँ जायँ? यदि ठेठ शब्द से काम नहीं चलता तो प्राकृत और संस्कृत के पास जायँ पर अरबी की शरण नहीं ली जा सकती।

हमें शब्दों का ऐसा मेल करना चाहिए जो भाषा को सूरत दे। मुसलमानों की भी भाषा को सूरत देने का प्रयत्न करना चाहिये। आज तो भाषा में भी पाकिस्तान है। हिंदी-उर्दू की माँग पाकिस्तानी माँग है। आज का हिंदी उर्दू का प्रश्न राजनीति के प्रश्न का एक टुकड़ा है।

भाषा का विकेन्द्रीकरण

देश में हो रहे भाषा-विकेन्द्रीकरण की चर्चा करते हुए माननीय टंडनजी ने कहा—"हिंदी राष्ट्रीयता का प्रतीक है। विकेन्द्रीकरण के समर्थकों को दूरदर्शिता से काम लेना चाहिये। हिंदी उर्दू के झगड़े से हमें सबक लेना चाहिये। ऐसे प्रश्न में समझ-बूझकर ही भाग लेना चाहिये। हिंदी प्रान्तों में एकता लानेवाली है। हिंदी के टुकड़े करना राष्ट्रीयता के टुकड़े करना है। यदि हम भोजपुरी, राजस्थानी, अवधी इन सब भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाएँ तो हिंदी कहाँ रहेगी और राष्ट्रीय एकता कहां रहेगी। अलग अलग जनपद की भाषा के अन्तर को लेकर, उसे अपनाकर हम हिंदी का अहित करेंगे। हिंदी सैकड़ों वर्षों के भाषा के विकास के परिणाम स्वरूप है। ब्रजभाषा, अवधी, राजस्थानी आदि सब हिंदी के स्तम्भ हैं। ये सब हमारी थातें हैं। 'सूरसागर', 'रामायण' और जायसी के ग्रंथ स्तुत्य हैं।

हमसे यह कहा जाता है कि मातृभाषा में बोलना-लिखना सीखने में सुगमता होती है। पर यहाँ के बालकों को मैं तो नहीं समझता कि 'जाता है, खाता है' सीखने में कोई कठिनाई पड़ती है। यह तो मातृभाषा के ही समान है। हमारे पूर्वजों ने जैसी भूल की वैसी ही भूल यदि हम करें और भिन्न भिन्न बोलियों को शिक्षा का माध्यम बनावें तो हमारी भूल का परिणाम हमारी भावी सन्तान को भुगतना पड़ेगा और एकता का सूत्र बिखर जायगा।

लिपि का प्रश्न

अब लिपि का प्रश्न लीजिये। लिपि यही रहे या भिन्न हो। मेरी दृष्टि में लिपि ऐसी होनी चाहिए जिसे राष्ट्रभाषा स्वीकार करे। स्वरों को देखिये। 'अ' और 'इ' को लीजिये—यदि 'अ' में 'इ' की मात्रा लगाकर 'अि' कर दें तो सुगमता हो जाय। 'अ' में 'ओ' की मात्रा लगाकर हम 'ओ' बनाते ही हैं। फिर इसमें क्या आपत्ति है। पर नहीं, हम रूढ़िवादी हैं। अगर पुरानी बात से खिसकने को कहते हैं तो लोग चौंकते हैं। संसार उन लोगों का है जो समय के भेद से समय का भेद करते हैं। हमारी लिपि सबसे अधिक वैज्ञानिक है। शार्टहैंड के आविष्कारक सर आइजक पिटमैन ईस्ट इंडिया कम्पनी का नौकर होकर यहां आया। उसने हिंदी का वर्गीकरण देखा। हमारा वर्गीकरण ध्वनि पर है। इसे देखकर उसने कहा था कि वे विश्व की पूर्णतम अक्षर हैं।' सैयद अली बिलग्रामी ने अपने जाति बन्धुओं से कहा था कि समय बचाना चाहते हो तो अपने बच्चों को नागरी सिखाओ। वी० कृष्णस्वामी अय्यरने भी कहा था कि "मैं तामिल, तेलगू वालों से अपील करता हूँ कि अपनी लिपि छोड़कर नागरी लिपि अपनाइये।" शारदाचरण मित्र ने भी यही सलाह दी थी। पर हम

रूढ़िवादी हैं। जहाँ रूढ़ि है वहाँ नाश है। ए, ई, उ को हटाइये कितना काम हल्का हो जायेगा। व्यञ्जन के द्वितीय और चतुर्वर्ण में 'ह' सम्मिलित है। यदि उसके लिए केवल एक चिन्ह बना ले तो क्या हानि हो जायगी। इससे तो १० अक्षरों की बचत हो जायगी। लिपि का स्वरूप बदलता रहता है भूलना न चाहिए।

लिङ्ग भेद का झगड़ा

शब्दों के लिङ्गभेद का भी एक प्रश्न है। बिहारी और बङ्गाली भाइयों के सामने यह समस्या विशेष रूप से आती है। राजेन्द्र बाबू ने एक बार कह दिया था। 'बाढ़ आया लाइन टूट गया।' इसमें क्या अशुद्ध है? क्या लिङ्ग का झगड़ा मिटाया जा सकता है। इस सम्बन्ध में मुझे कुछ नियम सूझे हैं। हमारे यहाँ लिंग भेद की भूल उच्चारण के कारण ही होती है। हम अकारान्त को प्रायः पुलिंग और ईकारान्त को स्त्रीलिङ्ग बोलते हैं। जहाँ अर्थ स्पष्ट है वहाँ छोड़कर अन्यत्र यह अपनाने में हानि क्या है? यह प्रश्न आप पर छोड़ता हूँ। आप विचार करें।

संस्कृत समय के अनुपयुक्त

एक बात संस्कृतवादियोंसे भी कहना चाहता हूँ। संस्कृत आदि और पूज्य भाषा है। किन्तु हम संस्कृतका बहुलतासे प्रयोग करें यह ठीक न होगा। शिक्षाके मार्गमें बाधा पड़ेगी। काशी के पंडितगण तो अपनी शिक्षा में हिंदी का प्रवेश होने देना नहीं चाहते। पर हिंदी ही राष्ट्रीयताका स्थान ले सकती है। भावना और ज्ञान जगाने वाली हिंदी ही हो सकती है, संस्कृत नहीं। संस्कृत को पढ़े लिखे लोग भी देश के कामों में स्थान नहीं दे सकते। धर्मके काममें भी हिंदीको स्थान दिया जाना चाहिए। धार्मिक संस्कारका सम्बन्ध भावना से है। भावना का स्पर्श जनता की भाषा में ही हो सकता है। इसी भावना से भगवान बुद्धने, लूथरने जनताकी भाषा अपनाया था। धर्म दिखाने या पैसेसे खरीदनेकी चीज नहीं है। आप शतशती संस्कृतमें पढ़िये ठीक है, किन्तु वह दूसरेसे पढ़वानेकी चीज नहीं है। यदि आप यह समझते हों कि पैसे खर्च कर दूसरे से पाठ, यज्ञ आदि कराकर ईश्वर के यहाँ पुण्य इन्द्राज कर दिया तो यह गहरी भूल है। अन्य धर्मों के समक्ष यह हिंदू धर्म के नाश का चिन्ह है। यह अधार्मिक प्रवृत्ति हमारी गुलामी की जड़ है। धर्म दिखावे की चीज नहीं है। उसका सम्बन्ध हृदय और मस्तिष्क से है। ज्ञान और भावना जगाने में आज संस्कृत कहाँ तक सहायक हो सकती है! भावना जगाने के लिए धार्मिक कृत्य भाषा में किया जाना चाहिए। विवाह पवित्र संस्कार है। उसका ९८ प्रतिशत अंश ऐसा है जिसे वर और कन्या को स्वयं कहना पड़ता है। एक प्रतिशत पिता को और दशमलव पाँच आचार्य के कहने के लिए है। पर आज उसका अशुद्ध नाटक कर इस पवित्र संस्कार की खिल्ली उड़ायी जाती है। इस बात पर शुद्ध हृदय से

विचार करें। धार्मिकता और राष्ट्रीयता के उत्थान का प्रतीक हिंदी है। यदि राष्ट्रीयता सुरक्षित है तो धर्म भी सुरक्षित है।

वकीलों द्वारा हिन्दी की उपेक्षा

अन्त में माननीय टंडन जी ने वकीलों द्वारा हिंदी की की जाने वाली उपेक्षा की चर्चा करते हुए कहा कि अकसर वकील लोग बहाना किया करते हैं कि उनका मुहर्रिर हिंदी नहीं जानता। जो ऐसा कहता है जनता को धोखा देता है, वह महापाप करता है। हिंदी पढ़नेवालों को वकील लोग थप्पड़ मारते हैं। शिक्षित बनने की प्रेरणा करने की अपेक्षा उन्हें पीछे घसीटते हैं। मुहर्रिर की बदौलत वकालत नहीं चलती। जो काम करना चाहते हैं वह कर सकते हैं। आज जो हिंदी पढ़ते हैं, वह उनके लिए अदालत में किसी काम की नहीं रहती। यह अन्याय है। जमींदारों और जनता को चाहिये कि वकीलों को इसके लिए मजबूर करें। आप कहें कि हिंदी में काम न करने वाले को वकील नहीं बनाता। आप वकीलों से दबे हैं। आप जितना दबते हैं उतना ही दबाए जाते हैं। आप दबें नहीं मनुष्यत्व रखकर बात करें।

साहित्यका यह युग[1]

[श्री शिवपूजन सहाय]

इस मंच से अब तक हिन्दीसाहित्य की गतिविधि के परखने का ही काम होता आया है। पर यह काम विचारकों और समीक्षकों का है। मैं न चिन्तक हूँ, न समालोचक। हिन्दी की पुस्तकों और पत्र पत्रिकाओं में जहाँ-कहीं कोई अनूठी पाँती पा जाता हूँ, मन-ही-मन गुनगुनाने लगता हूँ—मस्ती में झूमने लगता हूँ—उमंग और आह्लाद से थिरक उठता हूँ। ऐसे तरंगी हृदय का व्यक्ति साहित्य की अन्तर्गतियों का विवेचन या विश्लेषण कैसे कर सकता है ? जो समीक्षक बन कर कभी साहित्य का अध्ययन नहीं करता, केवल अपनी रसानुभूति को तृप्त करके ही स्वाध्याय को चरितार्थ मानता है, उसे आपने उदारतावश साहित्य की नाप जोख का बड़ा भारी दायित्व सौंप दिया ! 'साक-बनिक मनिगुन-गन जैसे' !

हमारा हिन्दी साहित्य यद्यपि इस जाग्रत युग में भी अनेक अभावों से युक्त है तथापि उसके विशाल गौरव का हमें प्रतिक्षण अनुभव होता है। उसके सेवकों, सहा

---

[1] सम्मेलन के जयपुर- अधिवेशन में साहित्य परिषद् के सभापति के भाषण का सारांश।

यकों और समर्थकों की टोली देखकर यह आशा भी बँधती है कि उसके अभावों का अन्त अनतिदूर भविष्य में ही होने वाला है। जब साहित्यमन्दिर को अपनी दिव्य ज्योति से जगमगाने वाले पुजारियों में हम शिरसावन्द्य महापुरुषों और श्रद्धेय वयोवृद्ध विद्वानों को देखते हैं, तब स्वभावतः हमारा हृदय हर्षोल्लास से उत्फुल्ल हो उठता है।

पत्रकारों की शक्ति

जब स्वदेश, समाज और साहित्य के कर्णधारस्वरूप अपने प्रथितयशा पत्रकारों की ओर हम दृष्टिपात करते हैं तब हमारा मस्तक और भी गर्वोन्नत हो उठता है। पत्रकारकला के विकास में उनकी सेवाएँ निस्सन्देह चिरस्मरणीय हैं।

किन्तु आश्चर्य है कि ऐसे यशस्वी एवं मनस्वी पत्रकारों के रहते हुए भी अनेक क्षेत्रों में हिन्दी का पक्ष अभी यथेष्ट सबल नहीं है। हम तो यही आशा रखते हैं कि देश की राजनीतिक समस्याओं के साथ-साथ ये हमारी साहित्यिक समस्याएँ सुलझाने में भी दत्तचित्त रहा करेंगे। पर खेद है कि हमारी यह आशा पर्याप्त रूप से पूरी नहीं हो पाती। भाषा की रूप-रेखा सँवारने-सुधारने में, शब्दों के शुद्ध रूप स्थिर करने में, शब्द-शुद्धि के लिए अक्षरों के उपयुक्त प्रयोग में हिन्दी-पत्रकारों का सामूहिक सहयोग बड़ा लाभदायक हो सकता है। भाषा और लिपि की समस्याएँ इनका मुँह जोह रही हैं। ये चाहें तो साहित्यसम्मेलन, नागरीप्रचारिणी सभा और लेखकों तथा जनता को सदा सजग रख सकते हैं। संगठन का अमोघ अस्त्र पाकर भी यदि ये बिखरी शक्तियों को समेट न सके तो दूसरा कौन है जो हिन्दी को सनाथ करेगा!

चित्रपट और रेडियो—

चित्रपट और रेडियो की समस्या भी हिन्दी पत्रकारों के लिए कुछ बीहड़ नहीं है। इनकी सत्ता जनता पर स्थापित हो चुकी है। इनकी सम्मिलित शक्ति जनता की मनोवृत्ति पलट सकती है। यद्यपि विज्ञापनों का मोह बड़ा भारी प्रलोभन है तथापि पत्र की लोकहितकर नीति या सिद्धान्त पर उसका प्रभाव पड़ना न्यायसंगत नहीं। युक्तप्रान्तीय हिन्दीसाहित्य-सम्मेलन ने रेडियो की भाषानीति पर जो माननीय श्रीरविशंकर शुक्लजी की अँगरेजी-पुस्तक प्रकाशित की है (जिसका हिन्दी-संस्करण भी निकलना जरूरी है), वह अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयत्न है और उसके आधार पर हमारे पत्रकार इस विषय को बहुत आगे बढ़ा सकते हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के गत स्वर्ण-जयन्ती-महोत्सव में इस विषय का एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था, जिसे पत्रकार यदि ले उड़ते तो अब तक 'सभा' की बहुत-कुछ अभीष्टसिद्धि हुई होती।

ऐसी ही अनेक समस्याएं हैं जिनका हल निकालने के लिए हिन्दी-पत्रकारों की संघशक्ति अपेक्षित है। साहित्य-संसार की इन गुत्थियों के सुलझाने में तभी तक

विलम्ब हो रहा है जब तक हमारे हिन्दी-पत्रकार इस दिशा में अपनी तत्परता नहीं दिखाते। आजकल बहुत से निरवलम्ब साहित्य-सेवियों और उनके असहाय परिवार की सहायता की समस्या बड़ी विषम होती जा रही है। इस पर हमारे पत्रकार यदि उचित ध्यान दें तो यह अधिक दिन जटिल नहीं रह पायेगी। सहानुभूति के छूंछे शब्दों से हिन्दीमाता की छाती का यह घाव भरने का नहीं। इस समय भी कई साहित्यसेवी बड़े संकट में हैं। हमारे कितने ही विपद्ग्रस्त बन्धु अपने अनाथ परिवार को अश्रु-गंगा में मँझधार छोड़ चुपचाप चले गए और बहुतेरे अब भी संघर्ष की चक्की में पिस रहे हैं। यदि हमारे पत्रकार उनकी सुध न लेंगे तो न कोई पूंजीपति पसीजेगा और न कोई संस्था ही द्रवेगी।

साहित्यकारों की स्मृतिरक्षा—

हमारे स्वर्गीय साहित्य सेवियों की स्मृति-रक्षा की समस्या तो अतिशय महत्व पूर्ण है। यहाँ प्रसंगवश बड़े क्लेश के साथ कहना पड़ता है कि हमारे कितने ही साहित्य सेवियों के स्वर्गीय होने पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में तो समवेदना के दो शब्द भी नहीं निकलते। यदि अतिशयोक्ति न समझी जाय तो यहाँ तक कहने का साहस कर सकता हूँ कि पत्र के किसी फालतू कोने में दो-चार पंक्तियों का संक्षिप्त समाचार प्रकाशित करके ही कर्त्तव्य की इतिश्री कर दी जाती है! शरच्चन्द्र और रवीन्द्र के निधन के दूसरे ही दिन भोर में हमने दैनिक 'आनन्द-बाजार पत्रिका' और 'वसुमती' के बीस-बीस सुदीर्घ पृष्ठों को नखशिख शोकनिमग्न देखा; पर अपने 'प्रेमचन्द' और 'प्रसाद' के लिए हमें अनेक पत्रों में अग्रलेख तक पढ़ने को न मिले! क्या हमारी छाती को छलनी कर जानेवाले ये महारथी केवल दस पंक्तियों के ही अधिकारी थे? आप भलीभाँति जानते हैं कि हमारे वर्चस्वी सम्पादक-प्रवर श्रद्धास्पद विद्यार्थी जी के लिए शुरू में तो बड़े जोरशोर से हूह उठी; पर जो सहसा पट पड़ी तो फिर कभी किसी के कानों पर जूं भी न रेंगी। पंडित बनारसीदास जी और पं० श्रीराम शर्मा ने कई बार हिन्दीजगत् के हृदय की भस्मराशि कुरेदने की कोशिश की, पर उसमें अग्नि का एक कण भी न जागा। हमारे गणेश जी की ओजस्विनी लेखनी ने 'प्रताप' के रूप में जो महाभारत तैयार किया उसमें देशसेवा के निमित्त जूझनेवाले असंख्य युवकों की कारुणिक कहानियाँ हैं; पर उन अभिमन्युओं के स्रष्टा और संरक्षक पार्थ का स्मृति-तीर्थ हम आज तक न बना सके। उस बलिदानी वीर ने अपने रक्त की एक-एक बूंद से सींच कर अपनी मातृभूमि में जो जागृति की फसल उगाई और लहलहाई, उसी की कटनी करके आज हमारे बड़े-बड़े धुरन्धर नेता कीर्त्ति के खलिहान लगा रहे हैं। पर हमारे पत्रकार यह सब जानबूझ कर भी उस हुतात्मा की स्मृतिरक्षा के लि

संगठित प्रयत्न करना कदाचित् असामयिक समझते हैं !

इसी प्रकार हम बहुत सी दिवंगत आत्माओं और जीवित विभूतियों को भी भूले बैठे हैं । श्रद्धेय पंडित कृष्णकान्त मालवीय के संग्रहणीय सम्पादकीय लेखों से हम दीमकों को दावत दे रहे हैं । बाबू महावीर प्रसाद गहमरी का स्वयं अखबार छापना और स्वयं बाजार में बेचना हमारे ध्यान से उतर गया है । 'स्वदेश'-सेवाव्रती पंडित दशरथ प्रसाद द्विवेदी के पत्र सम्पादन कौशल में हमारे लिए कोई आकर्षण नहीं । गर्दे जी की साधना हमारे लिए शायद नीरस हो गई है । आखिर और कहा क्या जाय हमारी उदासीनता की चिकित्सा सहज नहीं है । स्वर्गीय [illegible]चन्द्र मोदी की स्मृति-रक्षा के लिए श्रीयशपालजी ने जैसा श्लाघ्य प्रयत्न किया अथवा 'माधुरी'-सम्पादक ने 'पढ़ीस'-स्मृति अंक निकालकर जैसा आदर्श उपस्थित किया, वैसा ही कुछ अगर सब के लिए हुआ करता, तो स्वर्गस्थ साहित्यिकों के ऋणभार से हम बहुत कुछ मुक्त हो जाते ।

हमारे हिन्दीपत्रकारों की शक्ति अपरिमित है । यह युग उनका लोहा मान गया है । वे जुट जायं तो हिमालय हिला दें । मेरी यही प्रार्थना है कि वे अपनी शक्ति पहचानें और साहित्यिक विषयों में भी उतनी ही निष्ठा दिखावें जितनी राजनीतिक विषयों में दिखाते हैं । वे कृपया उदाराशयता के साथ यह इत्तला दर्ज कर लें कि उनके पत्रों में सम्मेलन के महाधिवेशनों की पूरी रिपोर्ट भी नहीं छपती !

लेखकों की आर्थिक दशा—

पत्रकारकला हिन्दी में अनुदिन उन्नतिशील दीख पड़ती है, यह बात बहुत रोचक प्रतीत होती है; परन्तु यह देख बड़ा विस्मय होता है कि अभी तक वह मुट्ठी भर लेखकों को भी सर्वथा स्वावलम्बी नहीं बना सकी है । शायद ऐसे लेखकों की गणना में अनामिका सार्थवती हो जाय तो कोई अचम्भा नहीं, जो केवल पत्र पत्रिकाओं का ही आश्रय—ग्रहण करके निश्चिन्तता पूर्वक अपने योगक्षेम का निर्वाह कर रहे हों ।

जब तक लेखकों को शान्तिपूर्वक जीवन-यापन का सुयोग न मिलेगा तब तक साहित्य का अभ्युदय असंभव है । पत्रकारों और प्रकाशकों से उन्हें जैसा सहारा मिलना चाहिए, नहीं मिल रहा है । यदि हमारे लेखक इस विषय के अपने सच्चे अनुभव लिपि-बद्ध कर दें तो बहुतों को न्यायालय अथवा हिमालय की शरण लेनी पड़ेगी । हमारे सुधी समालोचक उनके मस्तिष्क की उपज को तो कसौटी पर कसते हैं; पर उनकी वास्तविक स्थिति की कोई धुँधली रेखा भी अपनी अनुभूति की कसौटी पर नहीं पड़ने देते ।

किन्तु ऐसी दशा में अपने लेखक बन्धुओं से भी मैं कहूँगा कि वे हिन्दी-माता-

की आराधना के लिए सच्ची साधना का अभ्यास करें। संतोष का संबल लेकर मातृ-मन्दिर के मार्ग पर अग्रसर होते रहने के निमित्त कृतसंकल्प हो जायं। अपनी कामनाएं और अपने स्त्री-बच्चों की आवश्यकताएं मातृचरणों में अर्पित करके ही अपने को निहाल समझें। कंचन की माया की छाया वे अपनी आँखों में न पड़ने दें। प्रायः इस युग के लिए तो यह एक कल्पनातीत बात होगी कि वे लंगोटी बाँधकर नगर की हलचल से दूर कहीं 'अन्नपूर्णा के मन्दिर' में कुशासन पर आसीन हो साहित्यसाधना-लीन हों; पर इसकी आजमाइश की गुंजाइश इस युग में भी हो सकती है, यह कल्पना के परे नहीं है। हमारे जो लेखक-बन्धु नगर की माया-मरीचिका से मोहान्ध नहीं हुए हैं, उनके लिए हमारे असंख्य गाँव पलकों के पाँवड़े बिछाए हुए हैं। यदि उन्हें प्रकृति की गोद पसंद हो, रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वास हो, अपने चरित्र में पूरी प्रतीति हो, तो वे दस-बीस गाँवों का मंडल बनाकर किसी उपयुक्त केन्द्र-स्थल में साहित्य-कुटीर रच सकते हैं। वहाँ बस धूनी रमाने भर की देर है, 'सूर' और 'तुलसी' के प्रताप से जन-मन जीतने में देर न लगेगी। वहाँ समय की बचत और स्वास्थ्य की वृद्धि होगी, दुर्व्यसनों से पिण्ड छुटेगा और चिन्तन की धारा सदा स्वच्छ बनी रहेगी। स्वदेश के मौलिक रूप की बाँकी झाँकी वहीं मिल सकती है। वहाँ के विशुद्ध वायुमंडल में जो साहित्यसर्जन होगा, उससे यश-अर्जन भी कुछ कम न होगा। इसी प्रकार वे 'सम्मेलन' के सन्देश को भी देश के अन्तस्तल तक पहुँचा सकते हैं।

साहित्य और भाषा

इस युग में लेखकों और कवियों से यह कहना कि भाषा और भाव की शुद्धता, सुन्दरता और पवित्रता से ही साहित्य की मर्यादा बढ़ती है, बड़ी भारी धृष्टता है। तो भी कर्त्तव्य-विवश हो कहना ही पड़ता है; क्योंकि उनका ध्यान जैसा चाहिए वैसा इधर नहीं है। यदि उनके सामने महर्षि पतंजलि का यह वाक्य कह दिया जाय कि 'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठुप्रयुक्तः स्वर्गेलोके च कामधुग्भवति' तो वे हँसकर अप्रगतिशीलता का आरोप करने लगेंगे। किन्तु उन्हें स्मरण रखना होगा कि इसी एक वाक्य में उनकी सारी सफलता निहित है। शब्दों के सम्यक् ज्ञान और सुन्दर प्रयोग में ही उनकी कला की सिद्धि है। 'सम्यक् ज्ञान' और 'सुन्दर प्रयोग' का आशय जितना ही गम्भीर है उतना ही विस्तृत भी। 'लोकहिताय' अथवा 'लोकरंजनाय'—प्रायः इन्हीं उद्देश्यों से वे कुछ लिखते होंगे। इनमें किसी की पूर्ति मनमाने ढंग की रचना से नहीं हो सकती।

साहित्यसरिता में जो उद्बुद्ध युग की अनियंत्रित भावनाओं की बाढ़ दिन-दिन उमड़ती जा रही है, उसके दुर्द्धर्ष वेग को रोकना या बाँधना सहसा संभव नहीं

तथापि बाढ़ के पानी को स्वास्थ्योपयोगी बनाने के लिए 'निर्मली' के प्रयोग द्वारा उसका परिष्कार कर लेना दुस्साध्य नहीं है। तात्पर्य यह कि जो कुछ भी प्रकाशित होकर जनता के सामने आवे, विधिवत् परिमार्जित होकर ही आवे। स्वस्थ भाषा और स्वस्थ विचार से ही स्वस्थ साहित्य का निर्माण हो सकता है। स्वच्छता से परसा हुआ सत्तू भी रुचिकर होता है; किन्तु मलिनतापूर्ण छप्पन प्रकार नहीं। आजकल के नये शौकीन इस बात पर उचित ध्यान नहीं देते। पुस्तक की बाहरी सजावट में भी सुरुचि और सादगी का खयाल न रखकर प्रायः उद्दीपन सामग्री का ही उपयोग करते हैं। किंतु जब हम आकर्षक बहिरंग पर लट्टू होकर अन्तरङ्ग का निरीक्षण करने लगते हैं तब बड़ी ग्लानि और निराशा होती है।

मेरी यह निश्चित धारणा है—भले ही यह भ्रान्त एवं उपहासास्पद समझी जाय—कि सुसम्पादित ग्रन्थों और पत्रों से ही साहित्य की श्रीवृद्धि हो सकती है। आजकल अधिकांश पुस्तकें संशोधित-सम्पादित नहीं होतीं। लेखक की फटी झोली से प्रकाशक की रङ्गीन मेज पर—वह दो ही छलाँग में बाज़ार की हवा खाने लगती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आधुनिक हिंदीसाहित्य का वैभव और प्रभाव दिन-दिन बढ़ रहा है; परन्तु उसका भाण्डार जिन विपुल वस्तुओं के संचय से सजाया या सम्पन्न किया जा रहा है उनमें काँच के चमकीले टुकड़े कम नहीं हैं। निश्चय ही, 'लालों की नहिं बोरियाँ' यथार्थ उक्ति है, फिर भी, सजावट की सुन्दरता बढ़ाने के लिए काँच के टुकड़ों की भी आकृति सुडौल और सुहावनी होनी चाहिए।

आजकल की गद्य-पद्य रचनाओं में भावाभिव्यंजन का जो विलक्षण ढंग दीख पड़ता है उस पर कुछ कहने से कोई लाभ नहीं। हाँ, ऐसे अवसर पर पूज्य आचार्य द्विवेदीजी का स्मरण हो आता है, जो साहित्य की सर्वोपयोगिता के खयाल से निरंकुशों पर कशाघात करने में कभी कुण्ठित न होते थे। सचमुच उनके न रहने से हिंदी अनाथ हो गई ? उसकी पूजाविधि में कोई नियमितता अथवा सुव्यवस्था नहीं रह गई। आज ऐसा कोई प्रभुत्वशाली सम्पादक नहीं नजर आता जो भाषा की वेषभूषा और भाव की हृदयग्राहिता पर किसी प्रकार का नियंत्रण रख सके। यह काम तो 'सरस्वती' और 'सम्मेलनपत्रिका' के अपनाने योग्य है। 'माधुरी' और 'सुधा' में भाषा-भाव सम्बन्धी उच्छृङ्खलता पर कुछ अधिकारी विद्वानों के लेख छपे थे; पर उतने से ही काम न सरेगा, इस विषय में निरन्तर जागरूकता की जरूरत है।

आलोचना

मेरा यह व्यक्तिगत विचार है कि हिन्दी में समालोचना के आदर्श का निरूपण बहुत सोच समझ कर किया जाना चाहिए। हमारे समालोचक के लिए विदेशी-साहित्य

के समालोचन-सिद्धान्तों की जानकारी के साथ-साथ स्वदेशी साहित्य की आलोचना-पद्धति का भी परिज्ञान अत्यावश्यक है। आजकल यह बहुधा देखने में आता है कि हमारे साहित्य के इतिहास में, हमारी विचार-प्रणाली में, हमारी आलोचना शैली में विदेशी रंग का चटकीलापन बढ़ता जा रहा है। हम विदेशों के साहित्य की कसौटी पर ही अपने साहित्य को भी परखते हैं। विदेशी साहित्यिकों के बहुरूपिया सिद्धान्तों ने हमारे साहित्य को इस तरह ग्रस लिया है कि उसके सांस्कृतिक महत्त्व का लोप हो जाने की आशंका-सी होने लगी है। हमें विदेशी साहित्य की महत्ता का प्रशंसक अवश्य होना चाहिए; पर हमें अपने घर के साहित्य का निरीक्षण करने के लिए अपनी आँखों पर विदेशी साहित्यिकों का चश्मा नहीं चढ़ाना चाहिए। यदि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के प्रभाव से विदेशी साहित्य में ही हमारी विशेष गति-मति है, तो हम उसके गुणों से लाभ अवश्य उठावें; किन्तु उससे इतने प्रभावान्वित न हो जायँ कि उसके आगे अपने साहित्य की हीनता स्वीकृत कर लेने में हमें तनक भी झिझक न हो। हमें दुराग्रह से दूर तो रहना चाहिए; पर स्वाभिमान से सर्वथा वंचित होना समीचीन नहीं।

प्रगतिवाद

हमारे साहित्य में प्रगतिशीलता की जो धारा आई है, चारों ओर नवीन सुशिक्षित समाज में उसके स्वागत की धूम है, यह सन्तोष का विषय है। कालचक्र की अबाध गति और परिवर्त्तित परिस्थितियों के प्रभाव से सजीव साहित्य में नई-नई प्रवृत्तियों का पदार्पण स्वाभाविक है। परन्तु हमें इस बात पर ठण्डे दिल-दिमाग से विचार करना चाहिए कि वास्तव में यह धारा सर्वथा नवीन है, पाश्चात्य जगत का प्रसाद है अथवा हमारे साहित्य-हिमाद्रि में ही कहीं इसका उद्गमस्थल है। यदि हम इस धारा के लिए विदेश के ही विशेष उपकृत हैं और इसे अपने साहित्य के लिए बहुत गुणकारी भी मानते हैं, तो इसकी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए हमें हिंदीभाषी जनता को इसका वास्तविक तत्त्व-महत्त्व स्पष्ट शब्दों में समझाना चाहिए। अभी इसके संबंध में नाना प्रकार की भ्रान्तियाँ फैल रही हैं। कहीं-कहीं तो खंडन—मंडनात्मक संघर्ष भी चल रहा है। पारस्परिक मतभेद से कई स्थानों की संगठित साहित्यिक शक्तियाँ बिखर गई हैं। इसलिए हमें युक्तियुक्त ढंग से हिंदी-प्रेमी जनता को सुझाना चाहिए कि अमुक कारणों से 'कार्लमार्क्स' हमारे काम के हैं और 'कौटिल्य' निकम्मे हैं, तथा 'प्रेमचन्द' की अपेक्षा 'गोरकी' हमें अधिक अनुप्राणित करते हैं।

खेद है कि इस 'वाद' का हुलिया मैं नहीं जानता। जहाँ तक याद है, यह 'वाद' हिंदी पर 'सुन्दरवन' की ओर से लपका था। पहले के साहित्य में किसी 'वाद'

की कभी चर्चा तक नहीं सुन पड़ती थी। पर आज तो 'वाद' का दुन्दुभि-निनाद साहित्य-जगत् की हर एक दिशा में गूँज रहा है। शायद इस 'वाद' के पनपने योग्य पहले कोई उर्वर मस्तिष्क ही नहीं था! अब तो इस 'वाद' की गृहस्थी खूब आबाद है। देखते-देखते यह रक्तबीज बन गया। हमारी भारतीयता की भावना ही इसके लिए दुर्गाभवानी बन सकती है।

इस समय इसकी पैठ और पूछ हमारे यहाँ हर जगह है। इसने हमारे हृदय के प्रत्येक स्तर में घर कर लिया है। कविता, कहानी, उपन्यास, समालोचना, कोई इसके सर्वग्रासी चंगुल से बचा नहीं है। मेरा अपना विश्वास है कि विश्लेषण की प्रक्रिया से जानकारी भले ही बढ़ जाय, आनन्द नहीं उमड़ सकता। कविता या कहानी को आपने तो प्रगतिवाद का श्रेष्ठ नमूना कह दिया; पर हमने जब नमूने का नीबू निचोड़ा तो रस की एक बूँद भी न टपकी! क्षमा कीजिए, साहित्य की आत्मा तो रस ही है।

सम्मेलन की प्रचार योजना

[श्री सत्यदेव शास्त्री, प्रचार मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन]

हिंदी साहित्य सम्मेलन ने अपने ३२ वर्ष के जीवन में हिंदी भाषा और साहित्य के प्रचार, एवं साहित्य सृजन के द्वारा देश की जो सेवा की है उससे हिंदी जगत् भली भाँति परिचित है। सम्मेलन हिंदी का एक महान वृक्ष है, जिसकी शाखाएँ, प्रशाखायें समस्त भारत में फैली हुई हैं। हिंदी प्रचार सभा मद्रास का जन्म सम्मेलन ने १९१८ ई० के इन्दौर अधिवेशन में पूज्य महात्मा जी के सभापतित्व में दिया। आज वह संस्था स्वतंत्र रूप से दक्षिण भारत में अपने साहित्य, विद्यालय और परीक्षाओं के द्वारा हिंदी की सराहनीय सेवा कर रही है। उसके प्रयत्न से मद्रास में लाखों नर नारी हिंदी पढ़ना लिखना सीख गये हैं और प्रति वर्ष हिंदी सीखने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है। १९३६ ई० में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा का जन्म सम्मेलन की गोद से हुआ। ८ वर्ष की इस अल्पायु में इस समिति ने अहिंदी भाषा भाषी प्रान्तों, जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, उत्कल, बंगाल, आसाम, सिंध और बिलूचिस्तान में राष्ट्रभाषा हिंदी का जो प्रचार किया है वह कम संतोष का विषय नहीं है। हाँ, बङ्गाल में इसकी प्रगति बहुत ही मन्द है। अभी तक १ लाख से ऊपर परीक्षार्थी इसकी विभिन्न परीक्षाओं—कोविद, परिचय आदि में बैठ चुके हैं। नियमतः यह सम्मेलन के अधीन है, किन्तु स्वतन्त्र रूप से अपना काम करती जा रही है। श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन जैसे

सुयोग्य मन्त्री के प्राप्त होने से इसका विकास और प्रसार उत्तरोत्तर हो रहा है।

सम्मेलन के अधीन अबोहर साहित्य सदन पंजाब में हिंदी की एक मुख्य संस्था है, इसने पंजाब और काश्मीर में परिचय और कोविद की परीक्षाओं द्वारा हिंदी प्रचार का बीड़ा उठाया है। अबोहर की परीक्षाओं में प्रति वर्ष ४०० से लेकर ५०० तक विद्यार्थी बैठते हैं।

सम्मेलन अपने केन्द्र स्थान प्रयाग से ५८० परीक्षा केन्द्रों द्वारा प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा की परीक्षाओं की व्यवस्था करता है। इन परीक्षाओं में प्रतिवर्ष लगभग ३५०० परीक्षार्थी बैठते हैं और इनकी संख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है। सम्मेलन की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा का यह स्थल नहीं है।

सम्मेलन की प्रचार समिति ने साल भर के लिए एक ठोस योजना बना कर उसे हिंदी संसार के सामने प्रस्तुत किया है। इस योजना की सफलता से सम्मेलन की शक्ति बढ़ेगी। वह योजना इस प्रकार है।

किसी संस्था के आधार स्तम्भ उसके सदस्य होते हैं। सदस्य में गुण और संख्या दोनों सन्निहित हैं, अर्थात् अच्छे लोग सदस्य हों और वह काफी संख्या में हों। प्रचार समिति ने इस वर्ष अधिक से अधिक साधारण सदस्य, विशेष सदस्य और सम्मानित सदस्य बनाने का निश्चय किया है। सम्मेलन के सदस्य ४ प्रकार के होते हैं—(१) सम्मानित सदस्य (२) स्थायी सदस्य (३) विशेष सदस्य (४) साधारण सदस्य।

जिस हिंदी प्रेमी ने सम्मेलन को सहायतार्थ या किसी विशेष काम के लिये १०००) या इससे अधिक दिया हो वह वार्षिक अधिवेशन द्वारा सम्मानित सदस्य चुना जा सकेगा। ऐसे सदस्यों को वे कुल अधिकार प्राप्त होंगे जो स्थायी सदस्यों को हैं किंतु जिस सम्मानित सदस्य ने ५०००) या इससे अधिक की सहायता दी हो वह आजीवन स्थायी समिति का सदस्य रहेगा।

स्थायी सदस्यों से एक साथ २५०) और विशेष सदस्यों से १२) वार्षिक शुल्क लिया जायगा। साधारण सदस्यों से २) वार्षिक शुल्क लिया जायगा।

सम्मेलन के सदस्य बनने के साथ ही सदस्यों को कुछ अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। इन अधिकारों की जानकारी प्रत्येक वर्ग के सदस्य के लिए अत्यावश्यक है।

सम्मेलन के जो सम्मानित और स्थायी सदस्य बनेंगे उन्हें सम्मेलन के प्रकाशित ग्रन्थ बिना मूल्य भेंट किये जायँगे तथा विशेष सदस्यों को सम्मेलन द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों में से अधिक से अधिक पन्द्रह रुपया के कोई भी ग्रन्थ बिना मूल्य सम्मेलन से लेने का अधिकार होगा। चारों प्रकार के सदस्यों को सम्मेलन पत्रिका निःशुल्क

पाने का अधिकार होगा।

स्थायी समिति के प्रत्येक सदस्य को सम्मेलन अधिवेशन के कार्य विवरण एवं सम्मेलन की मुख पत्रिका निशुल्क पाने का अधिकार होगा।

विशेष सदस्यों के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार के सदस्यों को सम्मेलन द्वारा प्रकाशित सब ग्रन्थ पौने मूल्य में मिल सकेंगे।

कोई भी हिन्दी साहित्य सेवी या हिन्दी का प्रेमी उस समय सदस्य हो सकेगा, जब उसकी लिखी हुई इच्छा के आधार पर कार्य समिति के किसी अधिवेशन में किसी सदस्य द्वारा उसके निर्वाचन के लिए प्रस्ताव होगा और उसके अनुमोदन तथा समर्थन में उपस्थित सदस्यों का बहुमत होगा।

सम्मेलन के अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्तावों और उद्देश्यों के अनुसार अगले सम्मेलन तक बराबर कार्य करने के लिए सम्मेलन के प्रतिनिधि रूप एक समिति होती है, जो सम्मेलन की स्थायी समिति कहलाती है। इस समिति में सभी वर्ग के सदस्यों को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त है।

सम्मेलन को २०००) या इससे अधिक देने वाले सभी सम्मानित सदस्य स्थायी समिति के सदस्य हो जाते हैं और अन्य सम्मानित सदस्यों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि भी इसके सदस्य बनते हैं, किन्तु वे उनकी संख्या के पंचमांश होते हैं।

स्थायी सदस्यों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि, जो उनकी संख्या के पंचमांश होंगे, किन्तु १० से अधिक न होंगे।

विशेष सदस्यों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि, जो उनकी संख्या के पंचमांश होंगे किन्तु १० से अधिक न होंगे।

साधारण सदस्यों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि, जो उनकी संख्या के दशमांश होंगे, किन्तु १० से अधिक न होंगे।

जयपुर सम्मेलन में, सम्मेलन के अवसर पर प्रतिनिधियों द्वारा नयी स्थायी समिति के लिये ४० सदस्यों के चुनाव की प्रथा को समाप्त कर कुछ नये निर्वाचक मंडल बनाये गये और सम्मेलन नियमावली में एक नया नियम जोड़ा गया। इसके अनुसार हिन्दी पत्रकारों, लेखकों तथा कवियों में से वे सज्जन जो सम्मेलन को १) वार्षिक देकर (रजिस्टर्ड) हो जायंगे स्थायी समिति के लिए अपने में से अपनी संख्या का दशमांश चुनेंगे, किसी भी स्थिति में यह संख्या १५ से अधिक न होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्मेलन के सभी वर्ग के सदस्यों को काफी अधिकार प्राप्त हैं। सम्मेलन पत्रिका तो सभी को निःशुल्क मिलती है, इसके अतिरिक्त विशेष सदस्यों को छोड़ कर अन्य सदस्यों को सम्मेलन से प्रकाशित पुस्तकें पौने मूल्य

पर मिल जाती हैं। विशेष सदस्यों को १२) प्रति वर्ष शुल्क देने पर १५) की पुस्तकें प्रतिवर्ष सम्मेलन से दी जाती हैं। इस प्रकार कुछ सालों में उनके पास पुस्तकों का एक अच्छा संग्रह इकट्ठा हो सकता है। सम्मेलन की भी शक्ति बढ़ती है। हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों तथा अन्य प्रान्तों से भी हमने १० हजार साधारण सदस्य, ५०० विशेष सदस्य तथा सम्मानित सदस्य बनाने का निश्चय किया है।

हिन्दी से प्रेम रखने वाले धनी मानी सज्जन काफी संख्या में विशेष सदस्य बन सकते हैं।

दूसरे हमने यह निश्चय किया है कि प्रत्येक प्रान्त में प्रान्तीय सम्मेलन की स्थापना का आयोजन किया जाय। जहाँ प्रान्तीय सम्मेलन पहिले से ही मौजूद हों उन्हें अधिक सजीव, क्रियाशील और शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया जाय।

तीसरे, हिन्दी भाषा भाषी प्रान्तों में प्रत्येक जिले में जिले भर के प्रतिनिधि रूप जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना की जाय। जहां पर पहिले से ही जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन स्थापित है, उन्हें अपना वार्षिक अधिवेशन सुविधानुसार इस वर्ष कर लेना चाहिए और जिन जिलों में अभी तक जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन कायम न हों वहाँ के हिन्दी के विद्वान् तथा हिन्दी प्रेमी सज्जनों को अविलंब जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना कर उसे सम्मेलन से संबद्ध करा लेना चाहिए। सम्मेलन की नियमावली के आधार पर उसके उद्देश्य और नियमों के अनुसार अपनी स्थानीय आवश्यकताओं और विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए सब जनपद साहित्य सम्मेलन अपनी स्वतंत्र नियमावली बना सकते हैं। पदाधिकारियों के चुनाव तथा नियमावली बना कर सम्मेलन से अपने अपने जिले के स्थापित जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन को सम्मेलन से संबद्ध करा लेना चाहिये। यह कार्य यू० पी० बिहार, सी० पी सेन्ट्रल इन्डिया, दिल्ली पञ्जाब राजस्थान और काशमीर में ६ मास के भीतर संपादित हो जाय तो सम्मेलन के संगठन और उसकी शक्ति-वृद्धि में बड़ी सहायता मिले। यदि उपर्योक्त प्रान्तों के प्रत्येक जिले के हिन्दी विद्वान तथा हिन्दी प्रेमी सज्जन इस कार्य के महत्व को स्वीकार कर इसे पूर्ण करने में कटिबद्ध हो जायं तो प्रत्येक जिले में जनपद हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हो जाना कोई कठिन काम नहीं है। जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन के स्थान पर जनपद हिंन्दी साहित्य सम्मेलन नाम रखना अधिक समयोचित होगा।

चौथे जिले में जगह जगह हिन्दी के पुस्तकालय और वाचनालय खोले जायं और प्रत्येक अंग्रेजी स्कूल और कालेज में हिन्दी परिषद की स्थापना कर वहां हिन्दी का वातावरण उत्पन्न किया जाय तथा छात्रों में हिन्दी पढ़ने और हिन्दी साहित्य

अध्ययन की अभिरुचि उत्पन्न की जाय।

पाँचवें जहाँ आवश्यकता और सुविधा हो वहाँ हिन्दी साहित्य के अध्ययन और अध्यापन के लिए विद्यालय खोले जायं। अंग्रेजी स्कूल, कालेज तथा हिन्दी मिडिल स्कूल के अध्यापक हिन्दी की ओर थोड़ा ध्यान दें तो सम्मेलन के परीक्षा केन्द्र और भी अधिक संख्या में खोले जा सकते हैं। आखिरी और महत्वपूर्ण हिन्दी प्रचारकार्य तो कचहरियों में ही है। कचहरी एक ऐसा सुदृढ़ किला है जहाँ हिन्दी के घुसते ही व्यापक रूप से हिन्दी का प्रचार हो सकेगा। इस कार्य में वकीलों की सहायता अपेक्षित है। वकील वर्ग इस ओर से उदासीन रहा है, किन्तु हिन्दी की बढ़ती हुई लहर से वे भी अब प्रभावित हो चले हैं। यू० पी० के पूर्वी जिलों की कचहरियों में कुछ वकीलों ने हिन्दी में ही काम करने का व्रत ले लिया है। बहुतों ने सम्मेलन से प्रकाशित प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर भी किये हैं किन्तु कचहरी में हिन्दी प्रचार की गति बहुत ही मन्द है। वकीलों के सामने कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। अर्से से उर्दू में काम करने वाले वकीलों को हिन्दी अपनाने में कुछ असुविधा भी होती है। वकीलों की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए कचहरी में हिन्दी प्रचार के लिए श्रद्धेय पुरुषोत्तम दास जी टंडन ने टाइप राइटर योजना बनाई थी। वह योजना कतिपय जिलों में, जैसे प्रतापगढ़ हरदोई, लखीमपुर खीरी, इलाहाबाद आदि जिलों में चली किन्तु प्रचारक के अभाव में सफलतापूर्वक नहीं चल सकी। उस योजना को हम चाहते तो हैं कि फिर से यू० पी० के अन्य जिलों की कचहरियों में चालू करें, किन्तु टाइप राइटर के अभाव में हम उस योजना को फिलहाल स्थगित करते हैं। सम्मेलन कार्यालय में केवल ७ ही टाइप राइटर इस काम के लिए हैं जिनमें कुछ जिलों को दिए हुए हैं और शेष दूसरे जिलों के देने का वचन दिया जा चुका है। इस समय टाइप राइटर प्राप्त करना कठिन है, किन्तु कचहरी में हिन्दी प्रचार का काम हम शिथिल होने नहीं देना चाहते। इस कार्य में हिन्दी प्रेमी उत्साही वकीलों की सहायता हम चाहते हैं! हर जिले के वकील लोग कचहरी में एक हिन्दी प्रचार समिति कायम कर उसके द्वारा हिन्दी में सभी प्रकार के कागद पत्र लिखने की प्रतिज्ञा करें और उसका पूर्णतया वफ़ादारी से पालन करें तो यह कठिन कार्य भी सुकर हो सकता है। क्या हम आशा करें कि वकील वर्ग उत्साह पूर्वक कचहरी में हिन्दी प्रचार के इस पुनीत कार्य में हमें पूरा पूरा सहयोग प्रदान करेगा।

संयुक्त प्रान्त में हिन्दी प्रचार के उद्देश्य से सम्मेलन की ओर से एक सुयोग्य प्रचारक श्री पं० चन्द्रपाल जी बाजपेयी (शास्त्री काशी विद्यापीठ) नियुक्त हुये हैं, वे प्रान्त के प्रत्येक जिले में भ्रमण कर बहुमुखी हिन्दी प्रचार का कार्य करेंगे। प्रान्त

के हिन्दी विद्वानों तथा हिन्दी सज्जनों से निवेदन है कि वे उन्हें पूर्ण सहयो[g]
प्रदान करें।

हिन्दी जगत

हरजीमल डालमिया पुरस्कार

इस वर्ष हरजीमल डालमिया पुरस्कार हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ मौलि[क]
रचना पर दिया जायगा। जो सज्जन नियमावली चाहें पुरस्कार मंत्री, डालमिय[ा]
जैन निवास, नई देहली से प्राप्त कर सकते हैं। नियमावली की विशेष बातें निम्न हैं:-

श्रीमान् स्वर्गीय सेठ हरजीमल जी डालमिया की पुण्य जन्म तिथि भाद्रप[द]
शुक्ला ८ पर प्रतिवर्ष दो सहस्त्र एक सौ २१००) रुपये का पुरस्कार हिन्दी की कि[सी]
मौलिक रचना के सम्मानार्थ दिया जावेगा। यह पुरस्कार "हरजीमल डालमिय[ा]
पुरस्कार" कहलावेगा।

संकलित, संग्रहीत, और अनुवादित ग्रन्थ मौलिक रचना के अन्तर्गत न सम[झे]
जावेंगे परन्तु स्वतन्त्ररूप से सिद्धान्तों का विवेचन करने वाली व्याख्यायें मौलिक रच[ना]
की श्रेणी में रक्खी जावेंगी। पुरस्कार के निमित्त आया हुआ ग्रन्थ "ग्रन्थ" कहला[ने]
योग्य पृष्ठ संख्या वाला ही होना चाहिए।

(२) पुरस्कार साहित्य तथा दर्शन के ग्रन्थ पर क्रम से आंतरे वर्ष दिया जाय[ा]
करेगा। अर्थात् एक वर्ष साहित्य पर दूसरे वर्ष दर्शन पर। संवत् २००२ में साहित्य [पर]
पुरस्कार दिया जावेगा।

साहित्य के अन्तर्गत काव्य, नाटक, आलोचनात्मक निबन्ध, उपन्यास, रचना[एं]
समझी जावेंगी। दर्शन के अन्तर्गत प्राच्य प्रतीच्य विविध दर्शन, वेद, पुराण, ध[र्म]
ईश्वर, जीव और मन सम्बन्धी मीमांसा, अध्यात्म एवं आचार शास्त्र (ethics)
का बोध होगा।

(३) पूरा पुरस्कार साधारणतः किसी एक लेखक को मिलेगा परन्तु य[दि]
निर्णायक समिति के विचार से कोई भी ग्रन्थ पुरस्कार के योग्य विशिष्ट कोटि का [न]
हो तो पुरस्कार एक से अधिक लेखकों में निर्णायक समिति की सम्मति के अनुस[ार]
विभाजित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में प्रदत्त द्रव्य "पारितोषिक" कहलावेगा।

लेखक अथवा इसी अर्थ के बोधक अन्य पुल्लिंग शब्दों के अन्तर्गत लेखिका[एं]
भी मानी जावेंगी।

पुरस्का[र]
मंत्री के
होंगी।

पुरस्कार

जावेगा
प्राप्त हो
और य[दि]
कारी को

रचनाओं
सम्मिलि[त]

इस पते

समिति

कितने प
सम्बन्धि
मितता

के पत्रों
के पत्रों

नहीं जा[न]
उसके क

(४) पुरस्कार पाने वाले को पुरस्कार के साथ एक प्रमाण-पत्र भी दिया जावेगा।

(५) यदि किसी रचना के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति की इच्छा हो कि उस पर पुरस्कार के लिए विचार किया जाय तो उसका कर्तव्य होगा कि सात प्रतियां पुरस्कार मंत्री के पास निश्चित तिथि से पहिले भेजदें। यह पुस्तकें स्थायी परिषद् की सम्पत्ति होंगी।

पुस्तक पहुँचने की अन्तिम तिथि ज्येष्ठ शुक्ला ८ रक्खी गई है। प्रति वर्ष पुरस्कार मंत्री के पास इस तिथि तक पुस्तकें पहुँच जावें।

(६) पुरस्कार के लिये केवल जीवित लेखकों की रचनाओं पर विचार किया जावेगा। परन्तु यदि किसी लेखक की मृत्यु वर्षाभ्यन्तर में हुई हो किंवा उसकी कृति प्राप्त हो जाने पर उसका देहावसान हो जावे तो उसकी रचना पर विचार किया जावेगा और यदि पुरस्कार प्रदान करने का परिषद् निश्चय करे तो उक्त लेखक के उत्तराधिकारी को दिया जावेगा।

(७) ग्रन्थ प्रेषित करने की तिथि से एक वर्ष से अधिक पहिले की प्रकाशित रचनाओं पर विचार नहीं किया जावेगा। अप्रकाशित ग्रन्थ भी प्रतियोगिता में सम्मिलित हो सकेंगे।

सब पत्र व्यवहार "पुरस्कार-मन्त्री डालमिया जैन निवास, नई देहली", इस पते करना से चाहिए।

केन्द्रीय रक्षा समिति दिल्ली

डाइरेक्टर जनरल पोस्ट तथा डाक विभाग, नई देहली के सन्मुख हिन्दी रक्षा समिति की ओर से निम्नांकित माँगे रखी गई थीं :—

१. डी० एल० ओ० लाहौर में ऐसी सुची रखी जाये जिससे पता चल सके कि कितने पत्र हिन्दी के पतों के कारण डी० एल० ओ० आये और उनके विषय में सम्बन्धित अधिकारियों को दंड दिया जाये तथा भविष्य में इस प्रकार की अनियमितता को रोका जावे।

२. एक जनरल सरक्यूलर इस आशय का निकाला जावे कि कोई डाकघर हिन्दी के पत्रों को मृतपत्र कार्यालय में न भेजे। उनके साथ वही बर्ताव हो जो अन्य भाषाओं के पत्रों के साथ होता है।

३. चूँकि हिन्दी के पत्रों की इस दुर्दशा के उत्तरदायी वे कर्मचारी हैं जो हिन्दी नहीं जानते या नाममात्र को जानते हैं अतः प्रत्येक डाकघर को आदेश किया जाये कि उसके कर्मचारी जो हिन्दी नहीं जानते एक निश्चित समय में हिन्दी सीखलें तथा

भविष्य में नये कर्मचारियों की नियुक्ति के समय उनकी परीक्षा में हिन्दी की योग्यता का एक निश्चित माँप होना चाहिये जिससे हिन्दी के पत्रों के साथ होने वाला दुर्व्यवहार सदैव के लिये मिट सके। हर्ष की बात है कि असिस्टेंट डाइरेक्टर जनरल पोस्ट एण्ड टेलेग्राफ, नई देहली ने निम्नांकित रूप में हिन्दी रक्षा समिति की माँगों को स्वीकार किया है।

"इस कार्यालय के पत्र स० डी० ३८। ४३। ४४ ता० २७ मई १९४४ के आगे निवेदन है कि (डी० एल० ओ० लाहौर गये पत्रों से) सम्बन्धित मामले में जाँच करने से विदित हुआ है कि समय समय पर पोस्टमास्टर जनरल लाहौर द्वारा भारतीय भाषाओं के पत्रों के पतों को उलथा करने विषयक प्रसारित सूचनाओं के कारण इस (डी० एल० ओ० जाने वाले पत्रों की) दशा में बहुत बड़ा सुधार हुआ है। डी० एल० ओ० लाहौर में रखी गई सूची के आधार पर विदित होता है कि मृतपत्र कार्यालय आने वाले हिन्दी के पत्रों की संख्या पहिले की अपेक्षा बहुत घट गई है। इस संख्या को और भी घटाने की दृष्टि से डी० एल० एल० ओ० लाहौर में कड़ी दृष्टि रखी जाती है। इसी उद्देश्य से मैनेजर डी० एल० ओ० लाहौर को आदेश दिया गया है कि वे डी० एल० ओ० में आने वाले पत्रों की मूल सूची तैयार करके पोस्टमास्टर जनरल लाहौर के पास भेजें जिससे कि ऐसे प्रत्येक पत्र के सम्बन्ध में डिविजनल सुपरिंटेंडेंट अपने इलाके से सम्बन्धित उन पत्रों के साथ लापरवाही करने वाले अधिकारियों के साथ उचित कार्यवाही कर सकें। आशा की जाती है कि इस कार्यवाही से पंजाब और फ्रांटियर प्रान्त के पत्रों की संख्या जो डी० एल० ओ० लाहौर भेजे जाते हैं, घट जायेगी।

आपके अन्य सुझाओं पर भी विचार हो रहा है।

पोस्टमास्टर जनरल लाहौर ने भी ता० ४। १। ४५ को निम्नांकित सरकूलर अपने इलाके के डाकअधिकारियों के अतिरिक्त पोस्टमास्टर जनरल ग्वालियर और यू० पी० के पास भेजे हैं :—

"हिन्दी रक्षा समिति नया बाजार। श्रद्धानन्द बाजार। देहली ने शिकायत भेजी है कि सलग्न पत्रों को ठीक प्रकार उलथा करके यथा स्थान भेजने के स्थान पर आपके इलाके के अधिकारियों ने उन्हें डी० एल० ओ० लाहौर भेज दिया जिससे उनके पहुँचने में अनावश्यक विलम्ब हुआ। कृपया इस विषय में उचित कार्यवाही कीजिये जिससे कि यह अनियमितता बन्द हो जाये और हिन्दी के पत्रों को पोस्ट करने वाले पोस्ट आफिसों में ठीक प्रकार उलथा किया जाये और उन्हें डी० एल० ओ० लाहौर न भेजा जाय।

अन्तिम चार अधिकारी सुपरिंटेंडेंट आफ पोस्ट आफिसेस कांगड़ा तथा रोहतक और पोस्टमास्टर लाहौर तथा चीफ पोस्टमास्टर देहली, कृपया यह बताने का कष्ट करें कि इस विषय में इस कार्यालय से बार बार आदेशों के प्रसारित होने पर भी यह अनियमितता क्यों की गई है।

आशा है हिन्दी प्रेमी जनता इन आदेशों के होते हुये अपने हिन्दी में पते लिखने के प्रयास को और भी बढ़ायेगी। विशेषकर मनीआर्डर, रजिस्ट्री और वी० पी० पार्सलों पर हिन्दी में ही पता लिखना चाहिये जिससे डाकअधिकारियों के आश्वासनों से प्राप्त सुविधाओं का अधिक से अधिक रूप में लाभ उठाया जा सके।

मन्त्री,
हिन्दी रक्षा समिति, श्रद्धानन्द बाजार, देहली।

दिनेश पदक

बम्बई प्रान्त से सं० १९९९ वि० तथा सं० २००० वि० में प्रथमा तथा मध्यमा परीक्षाओं में सर्व प्रथम उत्तीर्ण होने के उपलक्ष में निम्नलिखित परीक्षार्थी श्री दिनेश पदक के अधिकारी हुए हैं—

सं० २००० वि०

मध्यमा परीक्षा क्रमसं० १४०२ श्री रामदत द्विवेदी बम्बई मारवाड़ी विद्यालय (४५०)
प्रथमा परीक्षा क्रमसं० १३५६ श्री दुर्गा प्रसाद बम्बई मारवाड़ी विद्यालय (१५२)

सं० १९९९ वि०

मध्यमा परीक्षा क्रमसं० १३२६ श्री आत्माराम जाजोदिया बम्बई मारवाड़ी कमर्शियल हाई स्कूल (४६४)
प्रथमा क्रमसं० ९२१ श्री मधुसूदन दतात्रय पानबलकर पूना (१६२)

—रजिष्ट्रार

स्थायी समिति का द्वितीय अधिवेशन

स्थायी समिति की बैठक रविवार कार्तिक सौर ५ संवत् २००१, तारीख २२ अक्टूबर १९४४ को ३ बजे दिन सम्मेलन-कार्यालय में हुई।

१. नियमानुसार माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन ने सभापति का आसन ग्रहण किया।

२—पिछले दो अधिवेशनों की कार्यवाही पढ़ी गई और स्वीकृत हुई।

३—सभापति जी ने आज्ञा दी कि पहले जयपुर अधिवेशन में स्वीकृत निश्चयों को कार्यरूप में परिणत करने का प्रश्न उपस्थित किया जाय—

१—दिवंगत आत्माओं के कुटुम्बियों के प्रति समवेदना सूचक प्रस्ताव के सम्बन्ध में प्रबन्ध मंत्री जी ने सूचना दी कि प्रस्ताव की प्रतिलिपि दिवंगत आत्माओं के कुटुम्बियों के पास भेजी जा चुकी है।

२—द्वितीय निश्चय में हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा, सभी विषयों की शिक्षा देने वाले विश्वविद्यालय की स्थापना की आवश्यकता का उल्लेख किया गया था और इन्दौर तथा ग्वालियर नरेश से तत्सम्बन्धी योजनाओं को शीघ्र कार्यान्वित करने के लिए अनुरोध किया गया था। निश्चय हुआ कि निश्चय की प्रतिलिपि दोनों नरेशों के पास भेज दी जाय।

३—तृतीय मंतव्य द्वारा आल इंडिया रेडियो की हिन्दी विरोधी नीति के प्रति असन्तोष प्रकट किया गया था और सर्वांगीण आन्दोलन करने के लिए पांच सज्जनों की एक समिति बनाई गई थी।

श्री रामधन शर्मा ने प्रश्न उपस्थित किया कि इन पांच नामों के अतिरिक्त श्री सत्यदेव विद्यालंकार का तथा मेरा भी नाम था।

निश्चय हुआ कि दोनों नाम जोड़ दिए जायँ।

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि मूल प्रस्ताव तथा उसके पहले अंश का अंगरेजी अनुवाद वायसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी, सर सुल्तान अहमद तथा कौंसिल के सदस्यों के पास भेजा जाय।

पूरा प्रस्ताव कमेटी के सदस्यों के पास भेजा जाय।

श्री ब्रजनन्दन 'आजाद' ने सुझाव उपस्थित किया कि सब प्रान्तों के लिए आज ही एक-एक उपसमिति बना दी जाय और वह अपने-अपने प्रान्त में प्रचार करे।

श्री उमानाथ ने सुझाव का समर्थन किया।

श्री रामनाथ 'सुमन' ने कहा कि प्रस्ताव के सम्बन्ध में कार्य करने का पूरा अधिकार नियुक्त उपसमिति को दिया गया है।

श्री सीताराम चतुर्वेदी ने कहा कि प्रस्ताव के अन्दर समिति को कार्य करने का अधिकार दिया जाय।

श्री रामचन्द्र शर्मा ने कहा कि यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाय।

श्री जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी ने' प्रस्ताव किया कि जहाँ प्रान्तीय सम्मेलन हैं उन्हें यह काम सौंपा जाय और संयोजकों को केन्द्रीय समिति के साथ मिलाकर काम किया जाय।

श्री वाचस्पति पाठक ने समर्थन किया।

श्री पूर्णचन्द्र जैन ने श्री हितैषी जी के प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि अधिवेशन के द्वारा निर्मित समिति में परिवर्तन करने का अधिकार स्थायी समिति को नहीं है। वह अपने सुझाव दे सकती है।

श्री हितैषी जी ने निश्चय संख्या आठ का हवाला दिया कि उसमें नीति सम्बन्धी बात स्पष्ट है।

श्री नीतीश्वर प्रसाद जी ने विचार प्रकट किया कि स्वतंत्र समिति न बनाई जाय।

श्री सभापति जी ने कहा कि निश्चय सं० ८ की बात अलग है। नीति केन्द्रीय समिति की होगी।

श्री किशोरीदास वाजपेयी ने श्री पूर्णचन्द्र जैन के विचार का समर्थन किया और कहा कि समिति को स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करना चाहिए।

श्री प्रधान मंत्री जी ने कहा कि स्थायी समिति को सब अधिकार है। जो कर्तव्य है उसके लिए सब अधिकार हैं। जो सहायता के लिए उत्सुक हैं उनका हम स्वागत करते हैं।

श्री सभापति जी ने निर्णय दिया कि स्थायी समिति को अधिकार है। इसमें कोई विरोध की बात नहीं उठती।

श्री आनन्द जी ने सुझाव उपस्थित किया कि जो प्रान्तीय सम्मेलन समिति की नीति मानने को तत्पर हों उन्हीं का सहयोग लेना चाहिए।

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि जहाँ प्रान्तीय सम्मेलन हैं वहाँ उनके द्वारा काम किया जाय और जहाँ प्रान्तीय सम्मेलन नहीं हैं वहाँ समिति प्रबन्ध करे।

श्री उदयनारायण तिवारी ने प्रस्ताव किया कि अहिंदी भाषा भाषी प्रान्तों में यह काम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति को सौंपा जाय।

श्री आनन्द जी ने समर्थन किया।

श्री म० तु० कुलकर्णी ने अनुमोदन किया।

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि अहिंदी भाषा भाषी प्रान्तों में इस विषय में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तथा उससे सम्बद्ध संस्थाएं कार्य करें।

४—चौथे निश्चय द्वारा उत्कल विश्वविद्यालय के अधिकारियों से अनुरोध

किया गया था कि हिंदी भाषा-भाषियों द्वारा संचालित विद्यालयों में हिंदी के माध्यम द्वारा शिक्षा देने तथा हिंदी भाषा और साहित्य अध्ययन करने की स्वतंत्रता दें।

निश्चय हुआ कि प्रस्ताव उत्कल विश्वविद्यालय के वाइस चैंसलर तथा रजिस्ट्रार के पास भेजा जाय। प्रतिलिपि के साथ अंगरेजी अनुवाद भी भेजा जाय।

५—पाँचवाँ निश्चय काश्मीर राज्य के माध्यम की भाषा 'सरल हिंदी' करने आदि के सम्बन्ध में था। निश्चय हुआ कि मंतव्य की प्रति काश्मीर राज्य के पास भेजी जाय।

६—छठवाँ निश्चय, जिन देशी रियासतों की राज्य-भाषा हिंदी या उर्दू है वहाँ हिंदी की स्थिति की जाँच करने के विषय में था। और इस विषय की जाँच के लिए पाँच व्यक्तियों की एक उप समिति बनाई गई थी।

निश्चय हुआ कि निश्चय की प्रति प्रत्येक सदस्य के पास भेजी जाय और प्रधान मंत्री जी से अनुरोध किया जाय कि कार्य आरम्भ करें।

७—सातवां निश्चय जयपुर राज्य के विभागों और कचहरियों की भाषा और लिपि के विषय में था।

निश्चय हुआ कि पूरा निश्चय जयपुर राज्य बार असोसियेशन, प्रजामंडल, सनातनधर्म सभा, आर्य समाज, राजपूत सभा, सरदार सभा, हिंदू सभा, हिंदी साहित्य परिषद्, राजस्थानी साहित्य परिषद्, संस्कृत साहित्य परिषद् आदि संस्थाओं को भेजा जाय।

८—आठवाँ निश्चय हिन्दी प्रेमियों तथा लेखकों आदि से रेडियो के कार्यक्रम में भाग न लेने के विषय में था।

श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ ने प्रस्ताव किया कि कोई ऐसा समुचित नियंत्रण होना चाहिए कि कोई भी साहित्यिक रेडियो पर न जाय। एक सज्जन ने अभी हाल ही में रेडियों पर भाषण दिया है। वे सम्मेलन के भूतपूर्व अधिकारी तथा विद्वान हैं। मैं नाम नहीं लेना चाहता। जो लोग जायँ उनका वहिष्कार किया जाय।

श्री आनन्द जी ने श्री गौड़ जी के विचार का समर्थन किया और प्रस्ताव किया कि जिन साहित्य सेवियों ने रेडियो पर जाने से इन्कार किया है उनकी सूची तैयार करके पत्रों में छपवाई जाय बोलने वालों पर व्यक्तिगत दबाव भी डाला जाय।

श्री सीताराम चतुर्वेदी ने कहा कि समाचार पत्रों में सम्मानित सूची छपाई जाय, दंड विधान से काम न लेना चाहिए।

श्री इन्दूरक जी ने कहा कि उपसमिति बनाई जाय और कार्यालय द्वारा

लेखकों तथा कवियों को लिखा जाय।

श्री वाचस्पति पाठक ने सुझाव उपस्थित किया कि जो रेडियो पर जाना इनकार करें वे उपसमिति को सूचित करें और वह सूची बनावे। जो रेडियो पर जाँय उनसे असहयोग करने के लिए अनुरोध किया जाय।

श्री परमेश्वरी लाल गुप्त ने सुझाव दिया कि 'सारंग' की फाइल देखी जाय और जो हिन्दी के वक्ता रेडियों पर बोलने जाँय उन्हें न जाने के लिए लिखा जाय।

श्री केदारनाथ गुप्त ने प्रश्न उपस्थित किया कि हिन्दी के लेखक अथवा कवि को अंगरेजी में बोलने के लिए बुलाया जाय तो उनके लिए क्या व्यवस्था होगी। मेरी राय में उनको इस प्रस्ताव के नियंत्रण में न सम्मिलित करना चाहिए।

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने सुझाव दिया कि जिनको अंगरेजी में बोलने के लिए बुलाया जाय वे भी न जायँ और पूरा असहयोग करना चाहिए।

श्री सभापति जी ने विचार व्यक्त किया कि मंतव्य के भाषा की ध्वनि पूर्ण असहयोग की है। इस लिए सम्मेलन के सदस्यों को किसी रूप में भी भाग न लेना चाहिए।

श्री सीताराम चतुर्वेदी ने प्रश्न उपस्थित किया कि यदि रेडियो वाले वाइस-चैंसलर से नाम मांगे और वह किसी व्यक्ति विशेष को जाने के लिए आदेश करें तब क्या वाइस चैंसलर की आज्ञा का उल्लंघन करना चाहिए?

श्री रामधन शर्मा ने कहा कि उस दशा में यदि वाइस चांसलर से सम्मेलन का आदेश बताकर स्थिति का स्पष्टी करण किया जायगा तो वे मान जायंगे।

बहुमत से निश्चय हुआ कि प्रस्ताव की भाषा के अर्थ में पूर्ण असहयोग की ध्वनि है और उसके अनुसार अंगरेजी भाषा में भी कोई न बोलने जाँय। इनकार करने वाले व्यक्तियों की सूची पत्रों में विशेष रूप से छापी जाय। 'सारँग' तथा 'लिसनर' की फाइलें देखी जांय और जिनका नाम उनमें निकले उनके पास मंतव्य की प्रतिलिपि भेजी जाय।

श्री हितैषी जी ने प्रस्ताव किया कि निम्नांकित तीन सज्जनों की एक कमेटी बनाई जाय और वह सूची बनावे।

१. सर्वश्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन; २. जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी'; ३. हरिहरनाथ टंडन;

श्री राजेन्द्र सिंह गौड़ ने पांच व्यक्तियों की कमेटी बनाने का प्रस्ताव किया।

श्री रामचन्द्र शर्मा (संयोजक) ने सभापति जी का ध्यान सम्मेलन के

प्रस्ताव की ओर आकृष्ट किया और कहा कि सर्वांगीण आन्दोलन आदि करने का काम उसी समिति का है। यह काम उसी समिति पर छोड़ दिया जाय। अलग समिति बनाने से खींच-तान होगी।

श्री सभापति जी ने कहा कि समिति के संयोजक की राय मान ली जाय और वही उपसमितियां बनावें तो ठीक होगा। उपसमिति को हम अधिक काम दे रहे हैं अतएव दो-तीन नाम बढ़ा दिए जायँ।

सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि आठवें प्रस्ताव को कार्यान्वित करने में सहयोग देने के लिए यह समिति निम्नलिखित तीन व्यक्ति देती है—

१. सर्वश्री जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी'; २. हरिहरनाथ टंडन; ३. जगदेव गुप्त;

९—नवां मंतव्य राष्ट्र भाषा प्रचार समिति के कार्य-काल के सम्बन्ध में था निश्चय हुआ कि सभा के मंत्री को निश्चय की सूचना दे दी जाय।

१०—दसवें निश्चय द्वारा निजाम-सरकार से अनुरोध किया गया था कि हैदराबाद में हिन्दी भाषी तथा हिन्दी-प्रेमियों के बालकों को हिन्दी भाषा द्वारा प्राथमिक शिक्षा देने की सुविधा प्रदान करे और उस्मानिया यूनिवर्सिटी में हिन्दी को भी एक स्वतंत्र तथा ऐच्छिक विषय स्वीकार करे।

निश्चय हुआ कि इस विषय में निजाम सरकार, उस्मानिया यूनिवर्सिटी के वाइस चैंसलर तथा रजिस्टार को पत्र लिखे जायँ।

११. ग्यारहवां मंतव्य बिहार-सरकार की कृत्रिम हिन्दुस्तानी के प्रति, नीति के विषय में था

श्री ब्रजनन्दन 'आजाद' ने सुझाव उपस्थित किया कि इस काम के लिए एक उपसमिति बनाई जाय जो जाँच करे। उसमें तीन बिहार के सदस्य रहें और शेष अन्य स्थानों के रहें। जाँच के लिए वहां काफी सामग्री मिलेगी। इससे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का बिहार की सरकार के प्रति विरोध प्रकट होगा। जाँच का विवरण अगली स्थायी समिति में पेश किया जाय।

सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि प्रस्ताव को कार्य रूप में परिणत करने के लिए निम्नलिखित सज्जनों की कमेटी बनाई जाय—

१. सर्वश्री ब्रजनन्दन 'आजाद'; (संयोजक) २. नीतीश्वर प्रसाद सिंह ३. गौरीशंकर मिश्र ४. रामप्रसाद त्रिपाठी; ५. रामकुमार वर्मा;

१२—बारहवाँ मंतव्य सभी पाठ्य विषयों में उच्चतम शिक्षा देशी भाषा के माध्यम से दी जाने के विषय में तथा हिन्दी भाषी प्रान्तों में स्थित विश्वविद्यालयों के

हिन्दी माध्यम की स्वीकृति के लिए विश्व विद्यालयों के संचालकों तथा उनके निर्वाचकों का बहुमत संग्रह करने के सम्बन्ध में था।

श्री गुलाब राय जी ने प्रस्ताव किया कि सब विषयों में हिन्दी की पुस्तकों का सुझाव सम्मेलन स्वयं करे।

श्री सीताराम चतुर्वेदी ने कहा कि पिछले वर्ष इस विषय का जो प्रस्ताव साहित्य समिति को सौंपा गया था उसके अनुसार, यदि कार्य न हुआ हो तो, कार्य किया जाय।

श्री रामकुमार वर्मा ने प्रस्ताव किया कि हाई स्कूल तक के विषयों की पुस्तकों की सूची बना दी जाय।

सर्व सम्मति से श्री रामकुमार वर्मा का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और निश्चय हुआ कि साहित्य समिति सूची सम्बन्धी काम करे।

१३—तेरहवाँ निश्चय आगामी अधिवेशन के लिए प्राप्त निमंत्रणों पर विचार करने के विषय का था। निश्चय हुआ कि कार्य समिति इस विषय में कार्यवाही करे।

१४—चौदहवाँ निश्चय कलकत्ते के श्री नेमीचन्द पांड्या द्वारा दिए गए पुरस्कार की व्यवस्था आदि के विषय में था।

निश्चय हुआ कि प्रबन्ध मंत्री जी नियमावली बनाकर स्थायीसमिति में उपस्थित करें।

१५—पन्द्रहवाँ निश्चय कलकत्ते के श्री वसन्तलाल मुरारका जी द्वारा प्रदत्त पारितोषिक के विषय में था।

निश्चय हुआ कि प्रबन्ध मंत्री जी नियमावली बनाकर स्थायी समिति के सामने उपस्थित करें।

१६—सोलहवाँ निश्चय प्रान्तीय भाषाओं में शब्द-कोषों के निर्माण के सम्बन्ध में था।

निश्चय हुआ कि यह कार्य प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनों को सौंपा जाय और निश्चय की प्रति राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के पास भेजी जाय। वे अपनी समितियों के पास भेजें।

१७—सत्तरहवाँ मंतव्य प्राचीन भाषाओं के मुख्य ग्रन्थों के हिन्दी में अनुवाद आदि कार्य के लिए सात लाख रुपए के धन की अपील के सम्बन्ध में था।

प्रबन्ध मंत्री जी ने बताया कि उक्त धन की अपील करने आदि के लिए पाँच व्यक्तियों की एक समिति बनाई गई थी। श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी भी उसके एक

सदस्य हैं। उन्होंने अपना त्यागपत्र भेजा है।

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि श्री चतुर्वेदी जी से निवेदन किया जाय कि वह बने रहें और समिति को अपना सहयोग प्रदान करें।

१८—अट्ठारहवें निश्चय द्वारा सिंध के श्री रामप्रसाद जी ने गौ सम्पत्ति संवर्द्धन विषयक साहित्य पर पारितोषिक देने की घोषणा की थी।

निश्चय हुआ कि श्री प्रबन्ध मंत्री जी नियमावली बनाकर स्थायी समिति में रखें।

१९—उन्नीसवें निश्चय द्वारा सम्मेलन की नियमावली में संशोधन किया गया था।

निश्चय हुआ कि छपने पर नई नियमावली सब के पास भेज दी जाय।

४—श्री प्रधान मंत्री जी ने नियमावली के नियम २२ के अनुसार नई कार्य समिति तथा अन्य समितियों के संगठन का विषय उपस्थित किया। उक्त नियम के अनुसार बहुमत से नीचे लिखे दस सज्जन कार्य समिति के लिए चुने गए—

१. सर्वश्री श्रीनारायण चतुर्वेदी; २. रामप्रसाद त्रिपाठी; ३. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'; ४. वाचस्पति पाठक; ५. उदय नारायण तिवारी; ६. गौरीशंकर मिश्र; ७. बाबूराम सक्सेना; ८. बलभद्र प्रसाद मिश्र; ९. नोतीश्वर प्रसाद सिंह; १०. मथुरा प्रसाद सिंह।

५—श्री प्रधान मन्त्री जी ने बताया कि उपनियम १८ (ङ) के अनुसार विश्वविद्यालय परिषद् के संगठन के लिए केन्द्र व्यवस्थापकों की ओर से निर्वाचित दस प्रतिनिधियों में श्री चांदकरण शारदा तथा डा० लक्ष्मीचन्द जैन को बराबर मत मिलें।

पर्ची द्वारा सर्वसम्मति से डा० लक्ष्मीचन्द जैन चुने गए।

उपनियम १८ (ख) के अनुसार विश्वविद्यालय परिषद् के लिए निम्नलिखित सदस्य बहुमत से चुने गए—

१. सर्वश्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल; २. राजेन्द्र सिंह गौड़; ३. भगवती प्रसाद वाजपेयी; ४. नीतीश्वर प्रसाद सिंह; ५. कृष्णदेव प्रसाद गौड़; ६. रामशंकर शुक्ल 'रसाल'; ७. बलभद्र प्रसाद मिश्र; ८. वाचस्पति पाठक; ९ दयाशङ्कर दुबे; १०. ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल'; ११. राय रामचरण अग्रवाल; १२ रामबालक शास्त्री; १३. भूपेन्द्रपति त्रिपाठी; १४. हरिहरनाथ टंडन; १५. जगदम्बा प्रसाद 'हितैषी'; १६. सीताराम चतुर्वेदी; १६. शुकदेव चौबे; १८. परमेश्वरीलाल गुप्त; १९. गौरीशंकर मिश्र; २०. धीरेन्द्र वर्मा।

६—उपनियम ३१ के अनुसार साहित्य समिति के लिए बहुमत से निम्न-लिखित सज्जन चुने गए—

१. सर्वश्री माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन; २. भगवती प्रसाद वाजपेयी; ३. गिरिजाशंकर शुक्ल 'गिरीश'; ४. धीरेन्द्र वर्मा; ५. उदय नारायण तिवारी; ६. वाचस्पति पाठक; ७. रामचन्द्र शर्मा।

७—उपनियम ३६ के अनुसार प्रचार समिति के लिए निम्नांकित सज्जन सर्व-सम्मति से चुने गए—

१. सर्वश्री माननीय पुरुषोत्तमदास टंडन; २. माधव जी; ३. अमरनाथ काक; ४. तेगराम, ५. पूर्णचन्द्र जैन; ६. नीतीश्वर प्रसाद सिंह; ७. माखनलाल चतुर्वेदी, ८. ब्यौहार राजेन्द्र सिंह; ९ रामनाथ शर्मा; १०. कन्हैयालाल मिश्र; ११. वाचस्पति पाठक; १२ सत्याचरण शास्त्री, १३. ब्रजनन्दन आजाद; १४. रामशंकर त्रिपाठी, नागपुर।

८—उपनियम ४३ के अनुसार सर्वसम्मति से निम्नलिखित सज्जन संग्रह समिति के लिए चुने गए—

१. सर्वश्री पुरुषोत्तमदास टंडन; २. जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल; ३. उदयनारायण तिवारी; ४. वासुदेव उपाध्याय; ५. रामचरण मेहरोत्रा; ६. रामचन्द्र टंडन; ७. ब्रज-मोहन व्यास; ८. वासुदेवशरण अग्रवाल; ९. पूर्णचन्द्र जैन; १०. दुर्गाशंकर सिंह; ११. मोतीलाल मेनारिया; १२. परमेश्वरी लाल गुप्त; १३. बनारसीदास चतुर्वेदी; १४. नीतीश्वर प्रसाद सिंह।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा

अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का चुनाव प्रतिवर्ष उसके वार्षिक अधिवेशन के बाद उसकी स्थायी समिति द्वारा होता है। सम्मेलन के अध्यक्ष, प्रधानमंत्री आदि छः सदस्य तो पदेन रहते हैं। शेष सदस्यों में दस का चुनाव स्थायी समिति करती है। फिर यह सोलह सदस्य मिलकर पाँच और सदस्यों का चुनाव करते हैं। इस वर्ष के पाँच सदस्यों का चुनाव परिपत्र द्वारा हुआ।

इस प्रकार निम्नलिखित २१ महानुभाव राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सदस्य चुने गये हैं:—

१. श्री महात्मागांधी, २. श्री पुरुषोत्तमदास टंडन, ३. श्री गो० गणेशदत्त (अध्यक्ष), ४. श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, ५. श्री मौलिचन्द्र शर्मा, ६ श्री श्रीनाथ सिंह, ७. श्री सत्यदेव शास्त्री, ८. श्री माखनलाल चतुर्वेदी, ९. श्री सुनीति कुमार चटर्जी (बंगाल), १०. श्री दयालभाई प्रताप (सिंध), ११. श्री गोपीनाथ वारडोले (असम),

१२. श्री रामनारायण पाठक (गुजरात) १३. श्री लिंगराज मिश्र (उत्कल), १४. श्री शब्दा चितले (महाराष्ट्र), १५ श्री मती पेरिनबेन केप्टेन, १६. श्री पद्मपत सिंहानिया १७ श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल, १८. श्री हृषीकेश शर्मा, १९. श्री शुकदेव तिवारी, २० श्री उदयनारायण तिवारी, २१ श्रीमन्त्री राष्ट्रभाषा प्रचार समिति।

१०—सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जो रुपया फिक्स डिपाजिट, सेविंग्स बैंक तथा करेंट अकाउण्ट के रूप में बैंकों में है वह प्रधान मन्त्री श्री मौलिचन्द्र शर्मा तथा अर्थ मन्त्री श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन, इन दोनों के हस्ताक्षर से निकाला जाय।

११—प्रधान मन्त्री जी ने बताया कि संवत् २००० का राधामोहन गोकुल जी पुरस्कार श्री व्यथित हृदय को 'पहली भेंट' नामक उनकी पुस्तक के लिए दिया जाना निश्चित हुआ था। विलम्ब से निर्णय होने के कारण वे अधिवेशन में उपस्थित न हो सके। अतः नियमानुसार यह पुरस्कार स्थायी समिति के अधिवेशन में दिया जा रहा है।

श्री सभापतिजी ने पुरस्कार के २५०) तथा प्रमाणपत्र श्री व्यथित हृदय जी को भेंट किये।

१२—यह प्रश्न उपस्थित किया गया कि आगामी स्थायी समिति के संगठन में किस तिथि तक के सदस्य तथा संस्थाएँ भाग लेंगी।

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि यह विषय कार्य समिति में निश्चय के लिए भेजा जाय।

१३—राष्ट्रभाषा प्रचार मन्त्री जी ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि वर्तमान विधान के अनुसार एक बार हमें केवल पांच सदस्यों के चुनाव के लिए बैठक बुलानी पड़ती है और दूसरी बार मन्त्री के चुनाव के लिए। इस तरह से बहुत पैसा व्यय करना पड़ता है।

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि पांच सदस्यों का चुनाव परिपत्र द्वारा कर लिया जाय।

१४—श्री किशोरीदास वाजपेयी ने विचार उपस्थित किया कि स्थायी समिति की बैठक तीन-चार दिनों की छुट्टियों में रखी जाया करे।

१५—एक अर्थ समिति बनाने का प्रश्न उपस्थित किया गया। निश्चय हुआ कि यह कार्य कार्य समिति को सौंपा जाय।

जातक

[प्रथम तथा द्वितीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं, मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुक़ाबला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या २४०—२२, डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)
द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ३६२—२४ डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अभूतपूर्व प्रकाशन

प्रेमघन-सर्वस्व

(प्रथम भाग)

'दो शब्द'-लेखक, माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन
परिचय-लेखक, स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल

आधुनिक हिन्दी के एक निर्माता, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, स्वर्गीय उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का विशाल संग्रह-ग्रंथ। हिन्दी में प्रथम और अपूर्व काव्य। लेखक के चित्रों से सुसज्जित और सजिल्द।

मूल्य ४॥)

साहित्य मंत्री—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

रजिस्टर्ड नं० ए० ६२१

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ साहित्यमाला

१ भारत-गीत ≡)
२ राष्ट्रभाषा ||)
३ शिवाबावनी ≡)
४ पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १|)
५ सूरदास की विनयपत्रिका ≡)
६ नवीन पद्यसंग्रह १|)
७ बिहारी-संग्रह ≡)
८ सती कथणकी ||)
९ हिन्दी पर फारसी का प्रभाव ||≡)
१० ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार १|)

(२) साधारण पुस्तकमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था १)

(३) वैज्ञानिक पुस्तकमाला

१ सरल शरीर-विज्ञान ||), |||)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल-साहित्य माला

१ बाल नाटक-माला |)
२ बाल-कथा भाग २ |≡)
३ बाल विभूति ≡)
४ वीर पुत्रियाँ |≡)

(५) नवीन पुस्तकें

१ सरल नागरिक शास्त्र १)
२ कृषि प्रवेशिका १)
३ विकास (नाटक) ||≡)
४ हिंदू-राज्य शास्त्र १|)
५ कौटिल्य की शासन-पद्धति १|≡)
६ गावों की समस्यायें १)
७ मीराँबाई की पदावली २||)
८ भट्ट निबंधावली १|)
९ बंगला-साहित्य की कथा १|)
१० शिशुपाल वध १)
११ ऐतिहासिक कथायें |||)
१२ दमयन्ती स्वयंबर १)

नवीन पुस्तकें

१—मैथिली लोकगीत—रामइकबालसिंह 'राकेश', भूमिका लेखक—पण्डित अमरनाथ झा ३)
२—गोरखबानी—स्व० डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ३)
३—दीवाली और होली—(कहानी संग्रह) श्री इलाचन्द्र जोशी २|||)
४—महावंश—भदन्त आनन्द कौसल्यायन २)
५—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ३||)
६—स्त्री का हृदय—(एकांकी नाटक) श्री उदयशंकर भट्ट १||)
७—राजस्थानी लोकगीत—स्व० सूर्यकरण पारीक १)
८—सामान्य भाषाविज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना १)
९—काव्यप्रकाश—मम्मटाचार्य, अनुवादक स्व० हरिमंगल मिश्र १)
१०—समाचार-पत्र शब्दकोष—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी० १)

प्रकाशक—श्रीरामप्रसाद भिडियाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की मुख-पत्रिका

ज्येष्ठ-आषाढ़ २००२

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग

सम्मेलन-पत्रिका : ज्येष्ठ-आषाढ़ २००२

सम्पादक—श्री रामनाथ 'सुमन'

विषय-सूची

भाग ३२, संख्या १० :: ज्येष्ठ २००२

सम्मेलन-पत्रिका

राजा भोज और अंगरेज बहादुर ।

शिक्षा के प्रचार में कौन श्रेष्ठ है ?

(डा० रामकुमार वर्मा, एम० ए०, पी०-एच० डी०)

४ मई सन् १८०० ई० में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना कलकत्ते में हुई । इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी जो छोटी आयु में ही इस देश में चले आते थे, न तो यहाँ की भाषा से परिचित रहते थे और न यहाँ के बौद्धिक और सामाजिक व्यवहारों को समझ सकते थे । अतः कम्पनी के कर्मचारियों के लिए आवश्यक समझा गया कि वे शासितों को समझ कर उन पर अधिकार और नियन्त्रण रखने की शक्ति अर्जित करें । इसलिए यहाँ की भाषा में गति प्राप्त करने के लिए फोर्ट विलियम कालेज में फारसी और हिन्दुस्तानी विभाग खोला गया जिसके अध्यक्ष प्रसिद्ध चिकित्सक जान गिलक्राइस्ट रखे गए । कम्पनी के संरक्षण में चिकित्सक होने के नाते जान गिलक्राइस्ट को यों तो डाक्टर होना चाहिए था किंतु इसलिए कि हिन्दुस्तानी भाषा-भाषी स्थानों में रहकर उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा की जानकारी प्राप्त की थी, वे हिन्दुस्तानी विभाग की अध्यक्षता के योग्य समझे गए । रोमन और फारसी लिपि में विश्वास रखने वाले, अरबी और फारसी से आक्रान्त खड़ी बोली को ही (जिसे वे हिन्दुस्तानी कहते हैं) देश की शिष्ट भाषा समझने वाले एवं संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों से मिश्रित खड़ी बोली को (जिसे वे हिन्दवी कहते हैं) गवाँरू समझने वाले जान गिलक्राइस्ट ने वास्तव में हिन्दुस्तानी नाम से उर्दू का प्रचार किया । हिन्दी गद्य तो अपनी स्वाभाविक सुबोधता और संस्कृत के तत्सम और ब्रजभाषा में आए हुए तद्भव शब्दों की मधुरता से आगे बढ़ा है । लल्लूलाल का 'प्रेम सागर' और सदलमिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' ये दोनों ग्रंथ केवल इसलिए फोर्ट विलियम कालेज द्वारा पाठ्यग्रंथ मान लिए गए कि उनसे शिष्ट भाषा हिन्दुस्तानी को बल प्राप्त हो सकता था और उनसे शासितों की मनोवृत्ति और धार्मिक विश्वासों की अच्छी जानकारी हो सकती थी । यों सदलमिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान' फोर्ट विलियम कालेज के द्वारा अधिक सम्मान की दृष्टि से कभी देखा भी न गया । परिणाम स्वरूप हिन्दी गद्य की सभी मान्यताओं को फोर्ट विलियम कालेज ने सहानु-

भूति की दृष्टि से नहीं देखा । उसने फारसी लिपि के प्रचार और फारसी अरबी म
खड़ी बोली के निर्माण को ही अपनी नीति का स्तम्भ समझा । सन् १८२४ में पाठ्य
क्रम में हिन्दी को अलग स्थान अवश्य दिया गया लेकिन हिन्दी-गद्य-निर्माण
ओर उदासीनता ही रही । इस प्रकार फोर्ट विलियम कालेज के द्वारा हिन्दी गद्य
हित होने के स्थान पर हानि ही हुई इसे निर्विवाद समझ लेना चाहिए ।

फोर्ट विलियम कालेज ने विद्यार्थियों के लिए पाठ्य पुस्तकें लिखाने की ए
परंपरा अवश्य चलाई । आगे चल कर शिक्षा-प्रचार की योजना में सन् १८१७
'कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी' और १८३३ में 'आगरा स्कूल बुक सोसाइटी' तथ
अन्य सोसाइटियाँ स्थापित हुईं, जिनसे पाठ्य पुस्तकों के निर्माण में विशेष सहायत
मिली । इन पाठ्य पुस्तकों में हिन्दी गद्य का रूप किसी अंश में अवश्य उपस्थित किय
गया किन्तु लेखकों की मनोवृत्ति सरकारी संरक्षण प्राप्त करने की अभिलाषा से दूषित
हो चली । इन लेखकों में अपने देश, अपनी संस्कृति और अपने आदर्शों के प्रति श्रद्धा
नहीं रही और वे अपने बड़े से बड़े प्राचीन पुरुषों के चरित्रों को उपेक्षा की दृष्टि से
देखने लगे । इस मनोवृत्ति का एक हास्यास्पद उदाहरण लीजिए । जुलाई सन् १८७१
ई० में मुं० नवलकिशोर के लखनऊ स्थित यंत्रालय से एक पुस्तक भोज-प्रबंध-सार
दूसरी बार छपी । इसके लेखक पंडित बंशीधर हैं । मुख पृष्ठ की भाषा इस प्रकार है:—

भोज प्रबंध-सार
श्री मन् महाराजाधिराज पश्चिमदेशाधिकारी
श्रीयुत् नव्वाब लेफ्टिनेण्ट गवर्नर बहादुर की
आज्ञानुसार
श्रीयुत् विज्ञातिविज्ञ श्री साहब डैरेक्टर आफ़
पब्लिक इन्स्ट्रक्शन के सरिश्तह में
पंडित बंशीधर ने
संस्कृत भोज प्रबंध और उसके
अनुयायी ग्रंथों से संग्रह करके बनाया ।

यह पुस्तक का पहला भाग है । इसमें ८१ पृष्ठ हैं । कथा भाग मुंज के छल
से प्रारंभ होता है । अंत में उसका पश्चात्ताप और राजा भोज का राज्याभिषेक, नीति
का उपदेश, शिक्षा प्रचार, राज्य की प्रबंध-पटुता और स्त्री शिक्षा आदि विषयों पर
घटना क्रम से प्रकाश डाला गया है । स्थान स्थान पर नीति के श्लोक और उनके
भावार्थ हिन्दी गद्य में दिए गए हैं । पुस्तक में राजा भोज और उनकी रानी लीलावती
की विद्यानुरागिता लेखक ने अनेक स्थानों पर वर्णन की है । लेखक के ही शब्दों में

ऐसे स्थल देखिए :—

(१) "राजा ने अधिकारियों को ये हुक्म दिए ....मेरे नगर में जो जो मूर्ख हों वर्ष की अवधि में सब काम छोड़ पढ़ कर कुछ कविता करने के योग्य हो जावें नहीं तो वर्ष के बाद निकाले जावेंगे और उनके मकान विदेशी पंडितों को जो यहाँ आवेंगे दिए जावेंगे।" (पृष्ठ २८)

(२) "राजा सवेरे ही उठकर शाला में जिसमें कि आप पढ़े थे गए। देखते ही सब सहपाठी बहुत प्रसन्न हुये। इन्होंने भी सभा का यथोचित सम्मान किया और वाचस्पति विद्यार्थी को जो सभों में मुख्य था उसे वहाँ की अध्यापकता का अधिकार देकर एक गाँव उसके भोजन-वस्त्र के लिए कर दिया और सदा दो सौ विद्यार्थी पढ़ने का हुक्म दिया। उन विद्यार्थियों के भोजन-वस्त्र भी सरकार से ही कर दिए। यह सुनकर मणि मिश्र ने राजा के पास आकर कहा महाराज! धन्य हैं आप को गद्दी पर बैठे हुए आज पाँचवाँ ही दिन है परन्तु आपके प्रताप से सारे नगर में सिवाय पढ़ने के दूसरी बात की चर्चा नहीं।" पृष्ठ (२९)

(३) "यह सुन भोज ने कहा मेरी इच्छा ऐसी है कि मेरे नगर में कोई मूर्ख न रहे। सब पढ़ पावैं।" (पृष्ठ २९)

(४) "राजा सब अपने सहपाठियों से बोले कि मुझे सारे नगर में तथा और जगह भी विद्या का प्रचार करना है इससे तुम सब को अच्छे अच्छे अधिकार पर नियत कर दूँगा। जीविका की कुछ शंका मत करना"। (पृष्ठ ३०)

(५) "यह बात सुन राजा भोज ने मणि मिश्र से कहा कि तुम अपनी शाला में दो सौ विद्यार्थी पढ़ाया करो। भोजन-वस्त्र के लिए एक गाँव सरकार से पाओगे और विद्याधरी का मन हो तो नगर में सौ लड़कियों के भी पढ़ाने के लिए एक पाठशाला नियत की जाय कि उसमें पढ़ाया करें। उसको भी एक गाँव मिलेगा तथा लड़कों की और भी दो शाला नगर में नियत होंगी और आज ही उनमें पढ़ाने के लिए अध्यापक नियत हो जावेंगे। इस प्रकार चार शाला तो नगर के चारों कोने में और आपकी शाला के पास लड़कियों की शाला नियत हो जावेगी। यह सुन विद्याधरी ने पढ़ाने का स्वीकार कर लिया। राजा ने मणि मिश्र की शाला के पास पुत्री-शाला नियत की और अपने महलों में आकर स्नान, पूजन, भोजन किया।"

(पृष्ठ ३१, ३२)

(६) "किसान के लड़के से इस श्लोक को सुन (राजा) बहुत प्रसन्न होकर मन में कहने लगे कि ईश्वर ने चाहा तो मेरे नगर में इसी तरह काछी, कुरमी, किसान सब लिखे पढ़े हो जावेंगे।" (पृष्ठ ४६)

(७) "यह सुनकर रानी लीलावती बहुत प्रसन्न हुई। आदर सत्कार करके विद्याधरी को सिंहासन में बैठाया और कहने लगी कि तुम विद्या लक्ष्मी के पढ़ाने में मेरी सहायक हो तो मैं थोड़े ही दिनों में हर एक स्त्री को विद्या में निपुण किया चाहती हूँ।......हर एक स्त्री इस तरह पढ़ानी चाहिए कि हर एक काम को जैसे मर्द करते हैं वे भी धीरज से कर लिया करें और घबराया न करें।" (पृष्ठ ६०)

(८) "विद्याधरी हरी भरी हो गई कहने लगी......ईश्वर की कृपा से आज मेरी शाला में दो सौ विद्यार्थी पढ़ते हैं। वहाँ राजा आप जाते परीक्षा लेते और यथा योग्य पारितोषिक देकर मान भी करते हैं।" (पृष्ठ ६०-६१)

(९) "ईश्वर ने चाहा तो ऐसा प्रबन्ध करूँ कि थोड़ी ही अवधि में आप की शाला की लड़कियाँ लड़कों से भी विद्या में अधिक हो जावें और इस नगर के घर घर की लड़कियाँ आप ही आप तुम्हारी शाला में आकर पढ़ें। इस बात को सुन विद्याधरी बहुत आनन्दित हुई और मदन मालिनी दासी को अपनी चेलियों से संस्कृत में बातें करती हुई देख कर रानी से पूछने लगी कि आप की दासी ने कौन कौन विद्या पढ़ी है? रानी ने कहा कि व्याकरण, न्याय, साहित्य इन विद्याओं में तो इसका अच्छा प्रवेश है पर और भी विद्याओं को थोड़ी जानती है। यह कल वा परसों तुम्हारी शाला में लड़कियों का पढ़ना देखने आवेगी और आज के आठवें दिन मैं भी आकर परीक्षा लूंगी।" (पृष्ठ ६१)

(१०) "इसके अनन्तर रानी लीलावती ने राजा को एक विनय पत्र लिखा.....मेरी राय में सारे नगर में इस बात का ढिंढोरा पिटवा दिया जावे कि......नगर में पंडित हों उनकी तो क्या बात है तथा कम से कम जो वर्णमाला के अक्षरों को भी अच्छी तरह लिख पढ़ लेते हों वे माथे पै चन्दन आदि से अपनी अपनी ज्ञाति के अनुसार टीका दिया करें पर जो कि मूर्ख हों सब खाली माथ रहें।

इसी तरह स्त्रियों को जो पढ़ी हों माथे में लीलावती आदि बिन्दी देवें और जो अनपढ़ी हों सूना माथा रक्खें तथा जो कोई मूर्ख होकर इन बातों को करे उससे बीस कौड़ी रोज़ दण्ड लिया जावे। उस दण्ड को गली का चौकीदार उगाहा करें और उस समय उनसे कह दिया करे कि तुमको दण्ड देना न हो किन्तु पंडित होना हो तो सरकारी शाला में जाकर पढ़ो। इस बात के जारी होने से लोग शर्मा कर आप ही आप पढ़ने लिखने लगेंगे। इति।" (पृष्ठ ६३-६४)

(११) "इसी प्रबन्ध के कारण लोग अपनी लड़कियों को आप ही आप ले आये और लाते जाते हैं यहाँ तक कि दो सौ लड़कियाँ तो इकट्ठी हो गई।" (पृष्ठ ६७)

(१२) "विद्याधरी ने कहा—मेरे पास सौ लड़कियाँ पढ़ती हैं उनकी पचीस पचीस की कक्षा है। दो कक्षाओं को दिन के पूर्व भाग में पढ़ाती हूँ दो को घर में तथा बीच में लिखना और काव्य रचना भी सिखाती हूँ।" (पृष्ठ ६८)

(१३) "इसको सुन रानी जी बहुत प्रसन्न हुईं रात दिन विद्या के प्रचार करने के बन्दोबस्त में रहने लगीं। शाला में जाने से एक दिन पहले उज्जैन नगरी में जो जो विद्या पात्र, कुल पात्र और धन पात्र थे उनकी स्त्रियों के नाम पुत्री शाला में आने के लिए चिट्ठियाँ भेजीं। इससे सारे नगर में लीलावती की पाठशाला में जाने का शुहरा पड़ गया।" (पृष्ठ ६९)

(१४) "इस तरह विद्याधरी को दिलासा देकर आप मणि मिश्र की शाला में गईं। वहाँ भी व्याकरण आदि विद्याओं में विद्यार्थियों से प्रश्न किये और दो सौ नये लड़कों का जो पढ़ने के लिए आए थे पुत्री शाला की तरह प्रबंध कर दिया। इसी प्रकार और शालाएँ भी हो गईं।" (पृष्ठ ६९)

(१५) "रानी ने यह दशा देखकर हर एक को जो कि कुछ भी अक्षर सीख गए थे पारितोषिक दिया और जिन्होंने धन के अभिमान से कुछ भी अक्षर नहीं सीखे थे उनके लिए यह दण्ड ठहराया कि हर एक चौकीदार अपनी अपनी गली के ऐसे धनवान् मूर्खों को लेकर निरन्तर दो घण्टे गति अर्थात् बराबर टहलाने में रखे और १२ दिन में हर रोज चार-चार अक्षर सिखावे। जो कोई चौकीदार के कहने से न आवेगा एक महीने सरकारी कैदखाने में रहेगा। इस दण्ड के सुनते ही सब के कान हो गए और थोड़े ही दिनों में बारह खड़ी पूरी की। इस प्रकार राजा भोज और रानी लीलावती ने क्रम क्रम से उज्जैन नगरी में विद्या का प्रचार किया और नाम पाया।" (पृष्ठ ८१)

केवल एक नगरी उज्जैन में राजा भोज और उनकी रानी लीलावती की ओर से शिक्षा के प्रचार और प्रसार में इतनी सतर्कता और प्रबंध-पटुता लिखने पर भी लेखक पंडित बंशीधर ने जो पुस्तक की भूमिका लिखी है वह ध्यान देने योग्य है:—

"इस भरत खण्ड में बहुतेरे राजा बड़े बड़े प्रतापी और बलवान हो गए प्रजा के पढ़ाने लिखाने की ओर कुछ दृष्टि न की। हाँ थोड़ा बहुत राजा भोज ऐसा हुआ कि जिसने प्रजा का पालन और विद्या की वृद्धि भी अच्छी की पर वह भी सब जगह अपने राज में एक सी विद्या न फैला सका...... इतना खर्च करने पर भी ऐसा प्रबंध न कर सका कि नगर नगर और गाँव गाँव में शाला अर्थात् मकतब बैठा देता जैसा कि अब अँगरेज बहादुर ने लाखों रुपए खर्च कर ठौर ठौर बैठा दीं और उनमें पाठक और अधि पाठक नियत कर दिए हैं। ऐसा प्रबंध तो भोज आदि राजाओं से होना बहुत

ही कठिन था........अब इस लिए कि राजा और बादशाहों के अच्छे अच्छे इति-
हासों का हिन्दी वा उर्दू में उलथा करवा कर प्रचार करने में जो साहिब डैरेक्टर आफ़
पब्लिक इन्स्ट्रक्शन बहादुर उद्यत हैं उनकी आज्ञानुसार पंडित बंशीधर भोज प्रबन्ध-
सार का और बीच बीच में सामयिक श्लोक लिखकर उनका भी उलथा हिन्दी में करके
नीचे लिखता है।"

पुस्तक के अंत में लिखा है :

"आगे साहिब डैरेक्टर आफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन बहादुर की आज्ञा होगी तो
दूसरा भाग भी बनेगा।"

भूमिका और अंतिम अवतरण से लेखक की मनोवृत्ति पर प्रकाश पड़ता है।
वास्तव में यह किसी भी साहित्य का दुर्भाग्य है कि उसका लेखक देश के ऐतिहासिक
सत्य को भूल कर अपने सांस्कृतिक और राष्ट्रीय आदर्शों के प्रतीक महापुरुषों के उज्ज्वल
चरित्र को विदेशी शासन-कर्त्ताओं के समक्ष हीन और नगण्य माने तथा उनके संरक्षण
की कामना करे।

हिन्दी के इतिहास में भी इस दुर्भाग्य की रेखा है।

औचित्य सिद्धान्त

(ले० कन्हैयालाल सहल, प्रो० विड़ला कालेज पिलानी)

जिस प्रकार रस, अलंकार, ध्वनि और वक्रोक्ति सिद्धान्तों के साथ क्रमशः
भरत, भामह, वामन, आनन्दवर्द्धनाचार्य और कुंतक का नाम लिया जाता है उसी
प्रकार सामान्यतः औचित्य सिद्धान्त का विवेचन करते समय क्षेमेन्द्र का नाम अनायास
हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि औचित्य
सिद्धान्त की उद्भावना करने वाले क्षेमेन्द्र थे। उन्होंने तो 'औचित्य विचार-चर्चा' द्वारा
इस सिद्धान्त को परिवर्धित करके व्यवस्थित रूप दिया और विशेषतः इसीलिए संस्कृत
आलोचना-शास्त्र में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

औचित्य-सिद्धान्त के बीज भरत के नाट्य-शास्त्र में ही मिल जाते हैं।

अदेशजो हि वेषस्तु न शोभां जनयिष्यते।
मेखलोरसि बन्धे च हास्यायैवोपजायते॥

(अ० २३, श्लो० ६९)

नाट्य शास्त्र का यह प्रसिद्ध श्लोक है। प्रत्येक वस्तु यथा स्थान ही शोभित

होती है। मेखला को यदि हार के स्थान पर धारण कर लिया जाए अथवा (मस्तक पर तिलक न करके यदि पैर में तिलक किये जायँ तो किसे हँसी न आयेगी ?) भरत के उक्त श्लोक के साथ यदि क्षेमेन्द्र के निम्नलिखित श्लोक को मिला कर पढ़िये तो कितनी आश्चर्यजनक समानता मिलेगी !

कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा
पाणौ नूपुरबन्धनेन चरणे केयूरपाशेन वा।
शौर्येण प्रणते रिपौ करुणया नायान्ति के हास्यताम्
औचित्येन विना रुचिं प्रतनुते नालंकृतिर्नो गुणाः ॥

'कण्ठे मेखलया' 'नायान्ति के हास्यताम्', आदि पद-विन्यास से स्पष्ट ज्ञात होता है कि क्षेमेन्द्र ठीक वही बात कह रहे हैं जो भरत मुनि ने सैकड़ों वर्ष पहले कही थी। क्षेमेन्द्र ने कुछ उदाहरण और जोड़ दिये हैं तथा औचित्य का शब्दतः प्रयोग करके उसके महत्त्व का स्पष्ट प्रतिपादन किया है।

भामह ने दोषों का विवेचन करते हुए कहा है कि दोष भी कभी कभी दोष नहीं रह जाते, वे काव्य-सौन्दर्य की अभिवृद्धि करते हैं। आश्रय के सौन्दर्य से असाधु भी शोभाशाली बन जाता है जैसे कामिनी के सुन्दर नेत्रों में लगा हुआ मलीमस अंजन[1]। रीति के विषय में भी ठीक यही बात कही जा सकती है। शृंगार रस के लिए गौडी रीति चाहे अनुपयुक्त हो किन्तु वीर, अद्भुत और रौद्र रस के लिए गौडी रीति के औचित्य को सभी ने स्वीकार किया है। वैदर्भी रीति जो शृंगार के उपयुक्त है रौद्र आदि रसों के लिए अनुचित ही कही जायगी। दैनिक जीवन में भी हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि भाव-विशेष के अनुसार मुखाकृति में परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार साहित्य में भी, जो मुख्यतः भावों का ही क्रीड़ास्थल है, भाव-विशेष के अनुरूप विभिन्न रीतियों अथवा शैलियों का अवलम्बन करना सर्वथा उचित ही है। शैली का औचित्य वास्तव में सर्वत्र गरिमा की रक्षा करना नहीं है, शैली की गरिमा ही भावों के अनुसार शैली के परिवर्तित हो जाने में है।[2] इससे स्पष्ट है कि दोष या गुणों को औचित्य की अपेक्षा में ही देखना चाहिए। धर्मबिन्दु की टीका में ठीक ही कहा गया है—

---

[1]किंचिदाश्रयसौन्दर्याद् धत्ते शोभामसाध्वपि।
कान्ताविलोचनन्यस्तं मलीमसमिवाञ्जनम् ॥
(भामह)

[2]Grand style arises in poetry when a noble nature, poetically gifted treats with Simplicity or with severity a serious subject.

औचित्यमेकमेकत्र गुणानां राशिरेकतः
विषायते गुणग्रामः औचित्यपरिवर्जितः ॥

औचित्य से वर्जित होने पर गुण भी विषवत् हो जाते हैं। भामह ने लो[क]विरुद्ध नामक दोष का भी उल्लेख किया है। वस्तुतः प्रकृति संबन्धी अनौचित्य [का] नाम ही लोकविरुद्ध है। शृङ्गारप्रकाश के रचयिता भोज और व्यक्तिविवेक के प्रणे[ता] महिम भट्ट ने तो सब प्रकार के काव्य-दोषों की गणना अनौचित्य में ही की है। साधा[र]णतः पुनरुक्ति दोष समझा जाता है किन्तु भय, दुःख, ईर्ष्या, आनंद और आश्चर्य [के] भावों की अभिव्यक्ति के लिए पुनरुक्ति की उपादेयता को कौन अस्वीकृत कर सकेगा[?] 'प्रिये नास्ति पुनरुक्तम्' यह प्रवाद तो प्रसिद्ध ही है। दण्डी ने भी काव्यादर्श के चतु[र्थ] अध्याय में दोषों की विवेचना करते समय प्रायः इसी प्रकार का अभिमत प्रकट कि[या] है। किन्तु इन आलंकारिकों के ग्रन्थों में औचित्य शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। ८[वीं] शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कन्नौज के राजा यशोवर्मन ने अपने रामाभ्युदय नामक नाटक [में] सर्वप्रथम औचित्य का शब्दतः प्रयोग किया है—

औचित्यं वचसां प्रकृत्यनुगतं सर्वत्र पात्रोचिता
पुष्टिः स्वावसरे रसस्य च कथामार्गे न चातिक्रमः
शुद्धिः प्रस्तुतसंविधानकविधौ, प्रौढिश्च शब्दार्थयोः
विद्वद्भिः परिभाव्यतामवहितैः एतावदेवास्तु नः ॥

किन्तु औचित्य शब्द का सैद्धान्तिक विश्लेषण करने वालों में रुद्रट का ना[म] सब से पहले लिया जाता है। शृङ्गार और करुण रस में यमक और श्लेष का य[दि] आवश्यकता से अधिक प्रयोग किया जाय तो उस से रस में व्याघात ही उपस्थि[त] होगा। इससे कवि की शक्ति का ही पता लगता है, रसवत्ता का नहीं। यदि नाटक [में] किसी पागल का चित्रण करना हो तो उसके अर्थहीन प्रलापों में भी काव्य की दृष्टि [से] औचित्य का समावेश समझा जायगा। औचित्य का सम्यक् विवेचन आनंदवर्द्धनाचार्य [के] ध्वन्यालोक में मिलता है। ध्यान देने की बात यह है कि औचित्य पर एक पुस्त[क] लिख देने पर भी क्षेमेन्द्र के किसी श्लोक को इतनी ख्याति न मिल सकी जित[नी] आनन्दवर्द्धन के निम्नलिखित श्लोक को मिली है—

अनौचित्यादृते नान्यद् रसभंगस्य कारणम्
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा ॥

(ध्वन्या० ३, १५)

पंडितराज जगन्नाथ जैसे परवर्ती आलंकारिकों ने भी औचित्य का विवेचन कर[ते] हुए इसी महत्त्वपूर्ण उक्ति को उद्धृत किया है। जान पड़ता है कि आनंदवर्द्धन के बा[द]

ही औचित्य शब्द का विशेष प्रयोग होने लगा और स्वयं क्षेमेन्द्र को भी 'औचित्य-विचारचर्चा' लिखने के लिए आनन्दवर्द्धन से ही प्रेरणा मिली।[1] काव्य की आत्मा का विवेचन करते हुए आलोचक रस को छोड़कर भी कभी कभी औचित्य का प्रयोग करने लगे थे। अभिनवगुप्त ने ऐसे आलोचकों को आड़े हाथों लिया है[2]। उचित शब्द से रसविषयक औचित्य की ही प्रतीति होती है, इससे रसध्वनि ही काव्य का प्राण है यह सूचित होता है। रस को छोड़ कर किसकी अपेक्षा में आखिर यह औचित्य का उद्घोष किया जाता है? अभिनवगुप्त ने रस, ध्वनि और औचित्य के तारतम्य का भलीभाँति स्पष्टीकरण किया। रस काव्य की आत्मा है किन्तु केवल शृङ्गार शब्द के प्रयोग कर देने मात्र से शृङ्गार रस का आस्वादन नहीं किया जा सकता, वह तो विभाव, अनुभाव, व्यभिचारि संयोग से अभिव्यक्त या ध्वनित होता है अर्थात् रसास्वादन ध्वनि-प्रक्रिया द्वारा होता है और औचित्य के अभाव में रसभंग हो जाता है। महाकवि कालिदास ने भी जहाँ देवविषयक रति का वर्णन किया है वहाँ आलोचकों ने रस-भंग की शिकायत की है।

अब क्षेमेन्द्र की औचित्यविचारचर्चा के संबन्ध में दो शब्द कह देना आवश्यक है। जैसा ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हुआ होगा, क्षेमेन्द्र औचित्य सिद्धान्त का जन्म दाता नहीं, उसने भेद-प्रभेदों द्वारा इसे परिवर्धित कर व्यवस्थित रूप दिया।

अभिनवगुप्त ने आत्मा और जीवित इन दो शब्दों का पर्याय-शब्दों की भाँति प्रयोग किया है किन्तु क्षेमेन्द्र ने इन दोनों शब्दों में सूक्ष्म अंतर माना है। उसने रस को काव्य की आत्मा और औचित्य को काव्य का जीवित कहा है। 'औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्।' किन्तु आनन्दवर्द्धन और अभिनवगुप्त के मतानुसार औचित्ययुक्त रसध्वनि ही काव्य की आत्मा है।

रसध्वनिर्न यत्राऽस्ति तत्र वन्ध्यं विभूषणम्।
मृताया मृगशावाक्ष्याः किं फलं हारसम्पदैः ॥

ध्वनि की प्रमुखता का स्पष्ट उल्लेख 'औचित्यविचारचर्चा' में नहीं मिलता

---

[1] उचितशब्देन रसविषयमौचित्यं भवतीति दर्शयन् रसध्वनेः जीवितत्वं सूचयति। तदभावे हि किमपेक्ष्येदमौचित्यं नाम सर्वत्र उद्घोष्यत इति भावः।

लोचन पृ० १३।

[2] यदाहुः केचित् 'औचित्यघटितसुन्दरशब्दार्थमये काव्ये किमन्येन ध्वनिना आत्मभूतेन कल्पितेन' इति स्ववचनमेव ध्वनिसद्भावाभ्युपगमसाक्षिभूतम् अमन्यमानाः प्रयुक्ताः।

लोचन० पृ० २०८।

यद्यपि क्षेमेन्द्र ने औचित्य के स्पष्टीकरण में ध्वनि का उपयोग अवश्य किया है।[1] ध्वन्यालोक के तृतीय उद्योत से क्षेमेन्द्र को 'औचित्यविचारचर्चा' में बहुत सहायता मिली है। औचित्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावः तदौचित्यं प्रचक्षते॥

इस औचित्य का संबन्ध क्षेमेन्द्र ने पद, वाक्य, वाक्यार्थ, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, काल, देश आदि के साथ माना है और अपने तथा अन्य कवियों के ग्रन्थों से उदाहरण लेकर अपने सिद्धान्त की पुष्टि की है। वृत्तों के के औचित्य पर क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्ततिलक' में विस्तारपूर्वक विचार प्रकट किये हैं। क्षेमेन्द्र के मतानुसार उचित स्थान विन्यास से ही अलंकार का अलंकारत्व है नहीं तो अलंकार की संज्ञा ही नहीं दी जा सकती। औचित्य समन्वित होने पर ही गुणों को गुणों के नाम से अभिहित किया जा सकता है, नहीं तो गुण भी दोष बन जाते हैं।

काव्यस्यालमलंकारैः किं मिथ्यागणितैर्गुणैः।
यस्य जीवितमौचित्यं विचिन्त्यापि न दृश्यते॥
अलंकारास्त्वलंकाराः गुणा एव गुणास्सदा।
औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम्॥
उचितस्थानविन्यासादलंकृतिरलंकृतिः।
औचित्यादच्युता नित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः॥

(औचित्यविचारचर्चा, पृ० १)

वाग्देवतावतार ध्वनिप्रस्थापनाचार्य मम्मट ने भी काव्यप्रकाश के सप्तम उल्लास में औचित्य के महत्त्व को स्वीकार किया है। पंडितराज जगन्नाथ ने भी औचित्य पर विचार करते हुए लिखा है—रसभंग हेतु होने से अनौचित्य का परिहार करना चाहिए। मधुर पेय पदार्थ में जिस प्रकार किरकर पड़ जाने से मजा किरकरा हो जाता है उसी प्रकार अनौचित्य के कारण रसभंग को समझिये। अनौचित्य अनेक प्रकार का हो सकता है—

जातिगत—गाय आदि के तेज, बल के कार्य तथा पराक्रम का वर्णन तथा

---

[1] अत्र सागरिकाया विरहावस्थासूचकम् 'कृशाङ्ग्याः' इति पदं परममौचित्यं पुष्णाति।

[2] औचित्यविचारचर्चा (चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस बनारस) पृ० २

सिंह के साधु भावों का चित्रण।

देशगत—स्वर्ग में जरा-व्याधि तथा मर्त्यलोक में सुधा सेवनादि का वर्णन।

कालगत—शिशिर में जलविहार तथा ग्रीष्म ऋतु में वह्नि-सेवन।

वर्णगत—ब्राह्मण द्वारा शिकार, क्षत्रिय द्वारा दानग्रहण, शूद्र का वेदाध्ययन।

आश्रमगत—ब्रह्मचारी तथा संन्यासी द्वारा तांबूल चबाना और स्त्री-परिग्रह।

वयोवस्थागत—बालक और वृद्ध का स्त्री सेवन, युवा का वैराग्य, दरिद्रों का धनियों का सा आचरण, धनियों का दरिद्राचार।

इसी प्रकार दिव्य, अदिव्य अथवा दिव्यादिव्य प्रकृतियों के संबन्ध में अनौचित्य से बचना चाहिए। जयदेवादि ने गीतगोविन्दादि काव्यों में मदोन्मत्त मातंग की तरह औचित्य की श्रृंखला को जो छिन्न भिन्न कर डाला है उसको उदाहरण मान कर अनुकरण करना अनुचित होगा। बड़े जब छोटों को संबोधित करें तो सम्मान सूचक शब्दों से बात चीत करना अस्वाभाविक होगा। छोटे जब बड़ों के सामने वार्तालाप करें तब सम्मान सूचक शब्दों का प्रयोग करना उचित होगा।[1]

औचित्य और हास्य रस के संबन्ध में एक शब्द कह देना अप्रासंगिक न होगा। अनौचित्य ही हास्य का मूल कारण है जैसा कि पहले कहा गया है। इसलिए जहाँ हास्य रस का विवेचन प्रस्तुत हो वहाँ अनौचित्य ही औचित्य का रूप धारण कर लेता है। सुगंधित काष्ठ का धूम भी मधुर होता है, सुन्दरियों का अविनय भी आनंद का कारण बन जाता है। साधारणतः लज्जा स्त्रियों का आभूषण समझा जाता है किन्तु सुरत काल में जिस तरह धृष्टता आनंददायी है उसी प्रकार हास्य में अनौचित्य ही औचित्य का रूप धारण कर आनंदप्रद हो जाता है।

"सामान्यसुन्दरीणां विभ्रममावहत्यविनय एव।
धूम एव प्रज्वलितानां मधुरो भवति सुरभिदारूणाम्॥

(प्राकृतगाथा की छाया)

अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषिताम्
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव॥

(माघ)

रस, ध्वनि और औचित्य—ये तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त समालोचना के क्षेत्र

---

[1]मूल पाठ के लिये देखिये पृ० ५१-५२ रसगंगाधर।

अनौचित्यंतु रसभंगहेतुत्वात्परिहरणीयम्। भंगश्च पानकादिरसादौ सिकतादि निपातजनितेवारुन्तुदा...... ......इत्यादि।

में भारतीय संस्कृत साहित्य की अमर देन हैं। औचित्य एक बहुत व्यापक सिद्धान्त है जिसकी परिधि में प्रायः सब कुछ आजाता है। रस को भी औचित्य का अवलम्बन करना पड़ता है, ध्वनि की सत्ता होते हुए भी औचित्य के अभाव में रसभंग की संभावना बनी रहती है।

औचित्य के इस सैद्धान्तिक विवेचन के पश्चात् हिन्दी साहित्य के कुछ चुने हुए उदाहरण देना अनुचित न होगा।

अलंकार-औचित्य

उपमा

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई। छविगृह दीपशिखा जनु बरई॥ (तुलसी)

उधो! सीपी सदृश न कभी भाग फूटे किसी का
मोती ऐसा रतन अपना आह! कोई न खोवे॥ (हरिऔधजी)

उपमा-संबन्धी औचित्य के ये सुन्दर उदाहरण हैं।

विरोध

प्रसिद्ध लोकसेवी देवसुमन की मृत्यु पर लिखी गई 'विशदजी' की इन दो चमत्कारपूर्ण पंक्तियों को लीजिये—

और सुमन देवों पर चढ़ते
देवसुमन चढ़ गये धरा पर!

विरोध-गर्भित औचित्य का यह उत्कृष्ट निदर्शन है।

स्वभावोक्ति

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिल कर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता।

यह बिंबग्रहण अथवा दृश्य वर्णन का औचित्य भी कहा जा सकता है। कवि के शब्द-शिल्प का यह श्रेष्ठ नमूना है। अंतिम पंक्ति में 'मुंह फैलाता' का प्रयोग तो बहुत ही समीचीन है।

क्रियागत औचित्य

नंद! ब्रज लीजै ठोंकि बजाय।

'स्वर्गीय आचार्य शुक्लजी 'ठोंकि बजाय' की व्यंजना पर मुग्ध थे, इस प्रकार के

शब्द को ही अंग्रेजी समीक्षकों ने Inevitable word का नाम दिया है।

क्रियागत अनौचित्य

(१) सखि, नीलनभस्सर में उतरा
यह हंस अहा ! तरता तरता,
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं,
निकला जिनको चरता चरता।
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी,
चलता उनको धरता धरता,
गड़ जायँ न कण्टक भूतल के
कर डाल रहा डरता डरता। (साकेत)

यह पद्य बड़ा आकर्षक है किन्तु हंस के लिए जहां 'चरता चरता' का प्रयोग किया गया है वहाँ औचित्य की रक्षा नहीं हो पाई। श्लेष लाघव से इस पद्य में रूपक तो सिद्ध हो गया पर बेचारे हंस की दुर्गति हो गई। चरना शब्द बैलों के लिए प्रयुक्त होता है, हंस का मोती चरना कहाँ तक उपयुक्त है सहृदय पाठक ही देखें।

(२) विनती करिए जन जो जिय लेखो।
दुख देख्यो ज्यों काल्हि त्यों आजहु देखो। (रामचंद्रिका)

कल जैसे कष्ट किया वैसे आज भी कष्ट कीजिये इस अर्थ में दूसरी पंक्ति का प्रयोग हुआ है किन्तु अमंगलसूचक शब्दों के कारण यह प्रयोग समीचीन नहीं। केशव उचित अनुचित का विचार नहीं करते थे। उनको इस बात की चिन्ता न थी कि कौन-सा वर्णन अवसरोचित है। बन जाते समय राम का अपनी माता कौशल्या को पतिव्रत धर्म का उपदेश देना तो बहुत असंगत हो गया है। देशगत विशेषताओं का निरीक्षण किये विना ही 'तरुतालीस तमालताल हिंताल मनोहर' आदि का वर्णन उन्होंने कर दिया है। भरत की चित्रकूट यात्रा के प्रसंग में सेना की तैयारी और तड़क भड़क का वर्णन अवसरोचित नहीं है। भरत राम से युद्ध करने थोड़े ही जा रहे थे? केशवने ज्यादातर अलंकारों के लिए अलंकार और छन्दों के लिए छन्दों की रचना की है। कहीं कहीं तो अलंकारों के प्रयोग में भी अनौचित्य दिखलाई पड़ता है। 'वासर की संपति उलूक ज्यों न चितवत' में राम की उलूक से तुलना कितनी अनुचित हुई है।

प्रसंगगत अनौचित्य का उदाहरण भी केशव के निम्नलिखित छन्द में मिल जायगा--

अरुणगात अति प्रात पद्मिनी प्राणनाथ भय।
मानहुँ केशवदास कोकनद कोक प्रेममय॥

परिपूरण सिंदूरपूर कैधौं मंगलघट।
किधौं शक्र को छत्र मढ्यो मानिक मयूषपट॥

यहाँ तक तो ठीक है किन्तु इसके बाद जब केशव सूर्य वर्णन में वीभत्स रस सामने लाते हैं तो वह अनौचित्य का रूप धारण कर लेता है—

'कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कपालिका काल को'

किन्तु केशव ने भी जहाँ उचित शब्द का प्रयोग किया है वहाँ काव्य-सौंदर्य वृद्धिहुई है।

शब्दगत औचित्य का एक उदाहरण लीजिए—

शोक की आगि लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम बिहाने। (रामचंद्रिका)

'औचित्यविचारचर्चा' में क्षेमेन्द्र ने जैसे 'अच्युताय नमस्तस्मै' कह कर अच्युत शब्द का अत्यन्त समीचीन प्रयोग किया है उसी प्रकार घनश्याम शब्द का प्रयोग इस स्थल पर बहुत सुन्दर हुआ है। परिकरांकुर का यह प्रयोग श्रेष्ठ उदाहरण है।

शब्दगत अनौचित्य

जब ऋषिराज विनय करिलीनों
सुनि सबके करुणा रस भीनों। (रामचंद्रिका)

यहाँ करुणा की कोई बात नहीं, इसलिए 'करुणा' शब्द का प्रयोग अनुचित है।

पात्रगत अनौचित्य

(१) जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे। (तुलसी)

कौशल्या के मुख से यह कहलवाना अनुचित हुआ है किन्तु क्योंकि राम को तुलसी ने परम प्रभु के रूप में देखा है इसलिए तुलसी जैसे मर्यादित कवि को भी अनौचित्य नहीं जान पड़ा।

(२) रहो रहो, पुरुषार्थ यही है, पत्नी तक न साथ लाये। (पंचवटी)

क्रमगत अनौचित्य

मारुतनंदन मारुत को मन को खगराज को वेग लजायो। (तुलसी)

मानवीकरण द्वारा औचित्य

प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पलपल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति।
विमल-अंबु-सर मुकुरन महँ मुख-बिंब निहारति।
अपनी छबि पै मोहि आपही तन मन वारति।

मानवीकरण का अनौचित्य—

अभिलाषाओं की करवट फिर सुप्तव्यथा का जगना।

आचार्य शुक्ल जी ने इस प्रकार के प्रयोगों में अनौचित्य का अनुसंधान किया है।

शब्दार्थगत औचित्य अथवा अनुकृतिगत औचित्य—

(१) सखि, निरख नदी की धारा,
ढलमल ढलमल चंचल अंचल, झलमल झलमल तारा!
निर्मल जल अन्तस्तल भर के,
उछल उछल कर, छल छल करके,
थल थल तरके, कल कल धरके,
बिखराता है पारा! सखि० (साकेत)

(२) मृदु मंद मंद मंथर मंथर मृदु तरणि हंसिनी सी सुंदर (गुंजन)

(३) गरज, गगन के गान! गरज गंभीर स्वरों में
भर अपना संदेश उरोंमें, औ अधरों में;
बरस धरा में, बरस सरित, गिरि, सर, सागर में
हर मेरा संताप. पाप जग का क्षण भर में!

उक्त उदाहरणों में शब्द ध्वनि से ही अर्थ की प्रतीति हो रही है। अनुकृतिगत औचित्य के उदाहरण स्वरूप ये पद्य रखे जा सकते हैं।

पृष्ठभूमि का औचित्य—

हिमगिरि के उत्तुङ्ग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय-प्रवाह (कामायनी)

भावावेश का औचित्य—

क्षेमेन्द्र ने जितने औचित्यों का उल्लेख किया है उनमें भावावेश के औचित्य का और समावेश किया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ—

(१) हे खग मृग हे मधुर श्रेनी! तुम देखी सीता मृग नैनी। (तुलसी)

(२) मधुवन! तुम कत रहत हरे! (सूर)

(३) हे कदम्ब! तुम्हारे फूलों से अधिक प्रीति रखने वाली मेरी प्रियां को यदि जानते हो तो बताओ। हे बिल्व वृक्ष! यदि तुमने उस पीत-वस्त्र-धारिणी को देखा हो तो बताओ। हे मृग! उस मृगनयनी को तुम जानते हो?

(वाल्मीकि-अनुवाद शुक्ल जी कृत)

रसकिन ने इसे भावावेश का हेत्वाभास कहा है किन्तु पाठक देखेंगे कि इस प्रकार
वर्णन ही सहृदयों को रस से आप्लावित कर देते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि पशु-प
यदि राम के प्रश्न का कहीं उत्तर भी देने लग जाते तो यह अनुचित होता। जाय
में जहाँ नागमती के प्रश्न का उत्तर पत्ती द्वारा दिलवाया जाता है वहाँ अस्वाभाविकता
सी जान पड़ती है किन्तु जायसी की पद्मावत तो एक रूपक है, इसलिए संभवतः इ
अनौचित्य का परिहार किया जा सके।

ध्वनिगत औचित्य—

(१) माता पिता और पत्नी की धन की धाम धरा की भी
मुझे न कुछ भी ममता व्यापी जीवन-परंपरा की भी
एक— किंतु उन बातों से क्या अब भी हूँ मैं परम सुखी
ममता तो महिलाओं में ही होती है हे मंजुमुखी !

(पंचवटी)

(२) करुणे ! क्यों रोती है 'उत्तर' में और अधिक तू रोई।
मेरी जो विभूति है उसको भव-भूति क्यों कहे कोई।

विस्तार-भय से बहुत उदाहरण नहीं दिये जा सकते। विश्व के जिन कवि
ने ख्याति प्राप्त की है उनकी रचनाओं में औचित्य का अतिक्रमण बहुत कम मिलेगा
माघ, हर्ष, भारवि आदि संस्कृत के जिन कवियों ने अनुपात का ध्यान न रख
केवल वर्णन के लिए वर्णन कर डाले हैं वहाँ रस को क्षति पहुँची है। किन्तु नैषध
जहाँ हंस का करुण क्रंदन है वह वर्णन कितना सरस हुआ है! अँग्रेज़ी समीक्षकों
भी औचित्य की महत्ता को स्वीकार किया है[1] वस्तुतः देखा जाय तो यथास्थान
सब वस्तुएँ शोभित होती हैं। 'गंगा की गैल में मदार के गीत' अच्छे नहीं लगते
देवताओं के चार, पाँच और छ मुख तक सुने गये हैं किन्तु किसी मनुष्य के दो मु
भी कभी देखने में आ जायँ तो उससे सौन्दर्य में वृद्धि न होकर भयंकर कुरूपता
दृष्टिगोचर होगी। देवताओं की देवता जानें, कोई कलाकार यदि मनुष्य को देवता ब
दे तो यह भी अनुचित जान पड़ेगा। इस पृथ्वी पर आकर तो स्वयं भगवान्
मनुष्य के रूप में ही प्रकट हुए। शिवजी के सिर में तीसरा नेत्र होने से उनकी शो

*1. But in Aesthetics no property is absurd if it is in keeping.
—Robert Bridger.

2. It is inconcievable that a modern thinker should adhere to t
abstract tests of good expression, when it is obvious that we can only t
whether it is good or bad when we see it in its natural content —Spinga

भले ही हो, भगवान् के विराट् रूप ने तो अर्जुन को भी भयभीत कर दिया था। हमारे सिर में एक नेत्र और बढ़ जाने से हमारा रूप विकृत हो उठेगा। परमौचित्यकारी होने के कारण ही भगवान् का एक नाम अच्युत भी है। मुझे तो डर इस बात का है कि इस निबंध के लिखने में कहीं अनौचित्य हो गये होंगे तो उनके लिए क्षमायाचना करना भी क्या अनौचित्य न होगा?

हिन्दी में समाज शास्त्र-साहित्य के अभाव

[ले०—श्री भगवानदास केला, भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग।]

संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद को छोड़ कर, इस समय हिन्दी में समाज शास्त्र साहित्य जो कुछ है, वह, अधिकांश बीसवीं शताब्दी में ही हुआ है। गत वर्षों में उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, यह तो हमें स्वीकार करना ही होगा। परन्तु वास्तव में इस कथन में कोई ऐसी बात नहीं है, जिससे हिन्दी गर्व का अनुभव करे। समाज शास्त्र साहित्य की वृद्धि की हम साक्षरता की वृद्धि की उपमा दे सकते हैं। अधिकारी नवीन (सन् १९४१ की) मनुष्य गणना के सम्बध में लिखते हैं कि गत दस वर्षों में भारतवर्ष में साक्षरों की संख्या ड्योढ़ी से अधिक हो गयी है, उनमें साठ सत्तर फी सदी की वृद्धि हो गयी है। साधारण पाठक को यह सुन कर बड़ा आनन्द होता है। परन्तु यह आनन्द वस्तु स्थिति का सम्यक् ज्ञान न होने तक ही है। जब हम यह जान लेते हैं कि पिछली मनुष्य गणना में शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्ति आठ फी सदी से कम थे, और अब वे बारह फी सदी से कुछ ही अधिक हो गये हैं, तो इसमें विशेष प्रसन्न होने का अवसर कहाँ रहता है! क्योंकि इसका दूसरा पहलू तो यह हुआ कि अभी लगभग ८८ प्रति शत जनता अशिक्षित है, जिसके निवारण के लिए हमें सम्भव है आठ-दस मनुष्य गणनाओं तक अर्थात् लगभग सौ वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। समाज शास्त्र साहित्य की वृद्धि भी इसी दृष्टिकोण से देखी जा सकती है।

यदि गत वर्षों में इनी गिनी संस्थाओं या व्यक्तियों ने साहस करके कुछ पुस्तकें प्रकाशित करदीं, और हिन्दी साहित्य समेलन आदि की परीक्षाओं में स्थान मिल जाने से, या शिक्षा-प्रसार विभाग आदि की मेहरबानी से उनमें से कुछ पुस्तकों की कुछ विशेष प्रतियाँ खप गयीं तो क्या हिन्दी जनता को इससे संतुष्ट हो जाना चाहिए? परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में कितनी पुस्तकों को स्थान मिल सकता है, और शिक्षा प्रसार विभाग के अधिकारियों की कृपा कितनी पुस्तकें प्राप्त कर सकती हैं। तथापि हमारा अभागा साहित्य ऐसे ही दुर्बल आधारों पर आगे बढ़ने का दम भरता है। महान्

हिन्दी संसार का आश्रय उसे प्राप्त नहीं हैं, अनाथ की भाँति वह अपने संरक्षकों की खोज में है। और, जब तक उसे यह खोज की चिन्ता लगी हुई है, उसके यथेष्ट विकास की आशा करना अपने आपको धोखा देना है।

हम उस भाषा का प्रतिनिधित्व करते हैं जो उनतालीस करोड़ जनता की राष्ट्र-भाषा है, जिसे समझने वाले तीस करोड़ और जिसे बोलने वाले पंद्रह-सोलह करोड़ से अधिक हैं। पर कोई हम से पूछे कि आप की भाषा में समाज शास्त्र साहित्य की वृद्धि या विकास के लिए कौनसी योजना के अनुसार काम हो रहा है, कहां-कहां संगठित प्रयत्न किया जा रहा है, तो हम इसका क्या उत्तर देंगे। लज्जा से हमारा मस्तक नीचा हो जाता है। हमारी बड़ी से बड़ी संस्थाओं के सामने भी कोई सुनिश्चित योजना नहीं कि आगामी पांच या दस वर्षों में समाज शास्त्र सम्बन्धी अमुक-अमुक विषयों की इतनी पुस्तकें अवश्य लिखानी हैं या प्रकाशित करनी हैं। इनका कार्य केवल यह है कि जब कोई लेखक सब विघ्न बाधाओं को पार करके अपनी रचना पूरी करके इनके द्वार पर पहुँचेगा तो ये यह सोच लेंगी कि इस पुस्तक की कितनी खपत होने की आशा है। बहुत सम्भव है कि ऐसी पुस्तक का छपाना एक 'घाटे का काम' प्रतीत हो बस, उसकी हस्तलिखित प्रति सखेद, हाँ धन्यवाद पूर्वक लेखक को लौटा दी जायगी, और वह अपने भाग्य की परीक्षा अन्यत्र करता फिरेगा। क्या हिन्दी की उन्नति और सुधार का दम भरने वाली कोई संस्था समाजशास्त्र साहित्य की वृद्धि के लिए एक पंच वर्षीय योजना बना कर उसे कार्यान्वित करने के लिए तन मन से योग देगी। समय आ गया है कि अब ऐसी पुस्तकों के आकस्मिक प्रकाशन से संतुष्ट न रहा जाय जो कोई लेखक स्वयं ही लिखकर ले आये; समाजशास्त्र सम्बन्धी पुस्तकें खास-खास सुयोग्य लेखकों को निर्धारित वृत्ति या पारिश्रमिक देकर लिखायी जानी चाहिएँ। हाँ इसके लिए पहले इस बात की छान-बीन की जानी आवश्यक है कि इस समय हिन्दी में इस विषय का कितना साहित्य है और किस-किस दिशा में इसकी न्यूनताएँ हैं, जो विशेष रूप से खटकती हैं; जिनकी पूर्ति होने से बालक, प्रौढ़, वृद्ध, पुरुष और स्त्री सब की आवश्यकता पूरी हो सके, ऊँची से ऊँची परीक्षा तक के लिए पाठ्य पुस्तकें विद्यमान हों और हिन्दी भाषा से परावलम्बन का कलंक दूर हो।

समाजशास्त्र के कई अंग हैं—अर्थशास्त्र, राजनीति, नागरिकशास्त्र, कानून, व्यावसायिक और आर्थिक भूगोल, इतिहास आदि। इन पंक्तियों के लेखक का विशेष सम्बन्ध अर्थशास्त्र, राजनीति और नागरिकता के साहित्य से रहा है। मैंने यहाँ अनुभव किया है कि इन विषयों की कई पुस्तकों का एक एक संस्करण समाप्त होने में दस

बारह और चौदह वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ी है यद्यपि वे कई-कई परीक्षाओं के लिए पाठ्य पुस्तकें भी निर्धारित रही हैं। विद्यानुरागी पाठकों की आवश्यकता का विचार करके उक्त पुस्तकों का दूसरा संस्करण प्रकाशित करने का साहस किया गया है तथापि यह वस्तुस्थिति कितनी चिन्तनीय है, इसका सहृदय पाठक स्वयं विचार कर लें। सन् १६३५ में हमने 'हिन्दी में अर्थशास्त्र और राजनीति साहित्य' नामक पुस्तक में इन विषयों के प्रस्तुत साहित्य का परिचय देते हुए इसके अभाव भी सूचित किये थे। उस पुस्तक की थोड़ी सी प्रतियों का प्रथम संस्करण अभी समाप्त नहीं हुआ। इसकी यहाँ कुछ शिकायत नहीं करनी है। मुझे विशेष ध्यान इस ओर दिलाना है कि आठ वर्ष व्यतीत हो गये और अब भी उसमें सूचित अभाव सम्बन्धी प्रसंग का खासा अंश सत्य है, और वह अपनी सचाई से हिन्दी भाषा भाषियों का मस्तक नीचा कर रहा है। उसका राजनीति सम्बन्धी उल्लेखनीय अंश निम्नलिखित है :—

'यह सोचने पर हमारी वेदना का कुछ अन्त नहीं रहता कि जिस सेना पर दरिद्र भारत अपनी गाढ़ी कमाई के पचास-पचपन करोड़ रुपये (अब युद्ध के अवसर पर तो दो सौ करोड़ रुपये) प्रति वर्ष खर्च करता है, उसके सम्बन्ध में हिन्दी में एक भी पुस्तक नहीं है। 'स्थानीय स्वराज्य' को आरम्भ हुए पचास वर्ष हो गये (अब तो लगभग साठ वर्ष हो गये) और अब देश उस समय से कहीं आगे बढ़ा हुआ है, पर म्युनिसपैलटियों और जिला बोर्डों के सम्बन्ध में हमारे पास नाम लेने को भी एक-एक अच्छी पुस्तक नहीं है। जागृति की लहर अब देश के भीतरी भागों में—ग्रामों में—पहुँच रही है। कितने ही राष्ट्रीय कार्यकर्ता अब ग्रामोद्धार के विविध क्षेत्र में सेवा करने के लिए देहाती जनता से हिलमिल कर रहने और उनके मध्य में ही आश्रय बनाने लगे हैं। परन्तु उन अल्पशिक्षित ग्रामवासियों को देने के लिए हमारे पास क्या आर्थिक और राजनैतिक साहित्य है जो हमारी पुस्तकों की 'पंडिताऊ' भाषा समझने में असमर्थ है, जिन्हें हमारे अर्थशास्त्र या राजनीति शास्त्र को सैद्धान्तिक बातों या गूढ़ वाद-विवादों में पड़ने की न क्षमता ही है, और न अवकाश ही। सरल सीधी भाषा में कुछ मोटी मोटी बातों का ज्ञान देने वाली अनेक अल्प मूल्य छोटी छोटी पुस्तकों की अविलम्ब आवश्यकता है।"

यह समाजशास्त्र के एक अंग के अभावों की बात है, और वह भी केवल उड़ती सी नजर से। विचार करने पर अन्य कितनी ही बातें मिल सकती हैं। हिन्दी भाषा का गर्व करने वाले सज्जन गम्भीरता पूर्वक अपना कर्तव्य पालन करने में लगें। शुभम् !

साधुवृत्ति का समाज-शास्त्रीय विश्लेषण

ले०—श्री मदनमोहन अग्रवाल, एम० ए०, साहित्यरत्न

भारतीय समाज का एक प्रमुख और आवश्यक अंश होते हुये भी खेद का विषय है कि साधु समाज का अभी तक समाज शास्त्र की दृष्टि से कोई भी वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हो सका है। आशा है यह समाज भविष्य में स्वयं ज्ञान की इस शाखा की वृद्धि करने में सहयोग देगा।

साधारण तौर पर 'साधु' कहने से उन सभी लोगों का बोध होता है जो सांसारिक बन्धनों को तोड़कर अपने जीवन को किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति में लगाने हेतु, समाज के आवश्यक उत्पादन और भोग में सहयोग न देकर किसी विशेष रीति से जीवन यापन करने का प्रयत्न करते हैं।

व्यक्ति सामाजिक शरीर का एक अंग है और सामूहिक भलाई में अपने भरसक योग देकर बदले में आवश्यकतानुसार अपने पोषण की आशा करता है। यही समाज और अर्थशास्त्र का शाश्वत नियम है। हमें यह देखना है कि साधुजीवन से कहाँ तक इस लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है।

इसके पहले साधुजीवन या मनोवृत्ति की कोई भी व्याख्या की जाय मैं कुछ बातें स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। यहाँ साधु से मेरा तात्पर्य साधुओं की उस विशाल संख्या से है जो समाज से अपने को अलग रखते हुये भी समाज के ही अन्न-वस्त्र से पालित होकर इसके गोरखधंधे में एक प्रमुख भाग लेते रहते हैं। उन थोड़े से महर्षियों को भी जो अपने को ब्रह्मानन्द में लीन कर अदृश्य स्थानों में जाकर पर्वतीय अनुसंधान कर्ताओं की सामग्री बन गये हैं या जो सचमुच समाज की सच्ची सेवा के लिये अपने जीवन की आहुति दे रहे हैं यहाँ छोड़ देता हूँ। ये इनेगिने थोड़े से लोग हैं।

दूसरी बात यह है कि मेरे ऐसे विद्यार्थी के लिये जो समाज शास्त्र की कसौटी पर साधु ऐसी डरानेवाली समुदाय को भी परखने की धृष्टता कर सकता है, इनका वर्ग जनता के और दूसरे अंगों की अपेक्षा ऊँचा मानकर हम नहीं चलते। शास्त्रीय दृष्टि से वेष-भूषा, रहन-सहन, तड़क-भड़क और विचित्र क्रियायें जब तक कि उनका कोई खास मतलब न निकले सामाजिक मनोवृत्ति पर केवल आकर्षण की लकीर भर बनाती है। उनकी कोई गहरी पैठ नहीं। इसलिये मेरी यह प्रार्थना है कि इस विशाल समुदाय से घबड़ाइये नहीं, किसी कौशेयधारी मुण्डित केश महात्मा की ओर केवल श्रद्धा की भावना से मस्तक ही मत झुकाइये वरन् जरा और पास से, उनको भी हाड़-मांस का पुतला समझकर, मानव गुण और स्वभाव को जानकर, उनके हृदय

टटोलिये, उनके आर्थिक और सामाजिक वातावरण की परीक्षा कीजिये। श्रद्धा और विश्वास तो सभी अच्छे कार्यों की ओर होना चाहिये चाहे वह किसी के द्वारा भी किये जाँय। मुझे भी कोई आपत्ति नहीं यदि साधु समुदाय समाज के पथ-प्रदर्शक रूप में आगे बढ़े। यहाँ मुझे उनके सामाजिक और आर्थिक दशा का अध्ययन करना है और इन्हीं दृष्टियों तक मैं अपने को सीमित रखता हूँ।

साधुओं के विषय पर बातचीत करते हुये किसी की पहली जिज्ञासा होती है कि आखिर आदमी साधु क्यों हो जाता है। संक्षेप में 'ईश्वर की खोज' 'निराश प्रेम की प्रतिक्रिया', 'दुखी जीवन से ऊब जाना', सांसारिक झंझटों से पलायन और गरीबी की मार, यही सब कारण हमें बतलाये जाते हैं। इनमें ईश्वर साधना को ही सबसे प्रधान माना जाता है। पर मेरे विचार से जिसे भी साधु जीवन को घनिष्टता से देखने का अवसर प्राप्त हुआ है उसे इसके रहस्य का अवश्य पता चल जायगा। यह ईश्वर-प्रेम, साधना की आवश्यकता या जीवन से अन्यमनस्कता किस बिन्दु पर टिकी है और घर से किसी व्यक्ति को कर्तव्य और माया डोर तोड़कर भाग खड़े होने पर विवश करती है क्या यह ईश्वर प्रेम और ब्रह्मानन्द की प्राप्ति के ही लक्ष्य से प्रेरित भावना है ? क्या और मार्गों को छोड़कर यही एक मार्ग है जिससे ईश्वर और ब्रह्मानन्द प्राप्त हो सकते हैं। इस पर विचार करने के लिये एक और दृष्टिकोण है। यहाँ इतना समय नहीं है कि अलग अलग उदाहरणों को लेकर जिन पर मैंने विशेष अध्ययन किया है आपको बतलाऊँ कि किस प्रकार वे साधु-जीवन में अग्रसर हुये, पर यह स्पष्ट है कि सबसे बड़ी भावना किसी को भी साधु-वृत्ति में प्रवृत्त करने के लिये उसके सामाजिक विचारों में परिवर्तन है जिन पर आर्थिक स्थितियों का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। साधारण मनुष्य जिसे कमाने लायक हाथ पैर होते हुये भी काम नहीं मिलता, गृहस्थी के बोझ से थका जीवन आर्थिक कठिनाइयों में पड़कर हेय बना जाता है। समाज में उसकी प्रतिष्ठा का नाश हो जाता है, समाज की निगाहों में साधारण मनुष्य के लिये, गरीब परिवार और व्यक्ति के लिये कोई स्थान नहीं, किस बल अपने जीवन की गाड़ी चलाने यदि वह कुछ भी विचारशील व्यक्ति है, चाहे अशिक्षित ही क्यों न हो —क्या उसे यह कष्टदायक न होगा कि वह केवल दो टुकड़े रोटी के लिये ही दिन रात मर कर, झंझट सहन करता है और सब प्रकार के अपमानों और आपदाओं का सामना करता है। आखिर यह सब क्यों ! क्या उसके दिमाग में यह उपाय नहीं सूझता है कि यह सब झंझट है, माया है, परेशानी है। तो फिर निकलने का रास्ता कौन-सा—आत्म-हत्या—हाँ आत्म-छिपाव ही एक रास्ता दीखता है। चलो भागो, किसी प्रकार निकलो दमघोटनेवाली कोठरी से और बस साधु हो जाओ। हाँ, यह भी व्यक्ति की

सामाजिक हत्या है, उससे संसार से कोई मतलब नहीं, दो टुकड़ा दे दो खा लेगा नहीं तो भगवत् भजन किया करेगा, जरा विचार कीजिये इन शब्दों के पीछे क्या विवशता छिपी है, कितनी वेदना है, कितना असंतोष है।

क्या यह जीवन से अवकाश ग्रहण करने की मनोवृत्ति है। क्या यह जीवन-संग्राम से बच निकलने की पृष्ठभूमि है? यदि आँकड़ों पर जरा ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि साधु अधिकतर वृद्धावस्था में नहीं होते वरन् भरी जवानी में जब जीवन की दीवार के सामने बौने की तरह अपने को अशक्त पाते हैं केवल आत्म सन्तोष की भावना से प्रेरित होकर विराग की ओर मुड़ते हैं। देखने में बड़ा सीधा सा मार्ग जान पड़ता है, अकेला आदमी, दो टुकड़ा खाने को मिल जायगा, किसी प्रकार की परेशानी न रहेगी, वह समाज, जो मजदूर के रूप में उसे ठुकराता था, घृणा की दृष्टि से देखता था जरा रहन-सहन बदल लेने से महाराज और महात्मा समझने लगेगा। इस परिवर्तन में उन्हें न तो साधु जीवन के उत्तरदायित्व का ध्यान रहता है और न इसकी समझ रहती है कि क्या वे वास्तव में जैसा आत्म-संतोषी, आत्म-निर्भर और स्वतन्त्र अपने को रखने की योजना करते हैं उसे कार्यान्वित कर सकेंगे।

साधु जीवन के प्रथम परिच्छेद, चार साल समाप्त होते होते उनके जीवन को देखिये उनके सामने भी वही प्रश्न, आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति, सामाजिक सम्मान की उत्कट इच्छा। उनके जीवन में भी वही सब विशेषतायें चाहे कमजोरियां कहिये चाहे मजबूरियां, दिखाई देती हैं। उनका एक अलग समाज स्थापित हो जाता है और पूर्ण रूप से सांसारिक हो फिर उसी गोरख धंधे में फंसना पड़ता है चाहे वह कुछ भिन्न रूप में हो, दूसरे कपड़ों में हो, फैशन कुछ बदला हुआ हो।

बात तो यह कठोर और अरुचिकर लगती है, पर सत्य, समाज शास्त्रीय दृष्टि से पूर्ण वैज्ञानिक सत्य यही है कि यह जीवन भी जिस प्रकार, दल्लाली, मजदूरी और डिप्टी कलक्टरी एक पेशा है उसी प्रकार एक पेशा है। यह आध्यात्मिक प्रश्न नहीं वरन् आर्थिक और सामाजिक प्रश्न है और इसे भी सामाजिक मापदण्ड से नापना होगा।

आधुनिक समाज विज्ञान में रति शास्त्रीय सिद्धान्तों का बड़ा जोर है। सभी वस्तुओं में हम काम वृत्ति का विवेचन करते हैं। साधु जीवन में सांसारिक सुखों के त्याग में सबसे बड़ा त्याग काम निरोध होता है। जीवन से असंतोष की भावना को ढोता हुआ प्राणी भला कब तक अपने को भोग से निवृत्त रख सकता है। उसमें प्रतिक्रियां होनी स्वाभाविक है चाहे बाद में फिर वह इसी आँधी के झकोरे में पड़ कर नष्ट क्यों न हो जाय।

इन कारणों को देखते हुए, सामाजिक और आर्थिक वातावरण का विश्लेषण

करते हुये मुझे तो थोड़ा भी आश्चर्य नहीं होता जब हमारे यहाँ के तीन वर्ष के बालक से लेकर सत्तर वर्ष के बुड्ढे तक सभी जीवन को छोड़ कर आत्मानंद की तुष्टि के लिये मधुकरी पर जीना चाहते हैं ! यह किसी विशेष कार्य के लिये जीना नहीं है वरन् जीने के लिये ही कार्य करना है जैसा कि सभी करते हैं । अपने सामाजिक यन्त्र में, मशीन में वे ठीक से नहीं बैठ सकते, फिर नहीं कर पाते तो क्या करें यदि भाग न जायें । वे भी जीवन से दूर, कहीं आकाश में ब्रह्मलीनता की योजना तैयार करते हैं और शायद कुछ संतोष ग्रहण करते हैं । हमारे यहाँ के नवयुवक कवि लेखक, सभी तो जीवन से भाग कर इह लोक के मिलन की कामना में मस्त हो जाते हैं या कहीं अनंत में दुःख का अंत देखते हैं फिर ये बेचारे यदि अपने को चौखट में गोला पा कर, समझ कर जीवन को सुविधा से मोड़ देते हैं तो क्या बुरा है ।

सामाजिक अव्यवस्थता या असामंजस्य ही सभी अयोग्यता पैदा करता है। आज दिन पूंजीवादी समाज में यदि एक गणित का अच्छा विद्यार्थी पुलिस का कप्तान हो हो सकता है, निःस्वार्थ साहित्य सेवी रोटी के लिये अपनी रचनाओं को दूसरे के नाम से छपवाने के लिये बेंच सकता है सत्य की खोज करने वाला दर्शनशास्त्र का पंडित वकील बन कर झूठ का प्रचार कर सकता है, तो क्यों नहीं जीवन की कठिनाइयों से हार मान कर कोई भी साधु जीवन में प्रवृत्त हो जाय ?

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे खराबियों में हजारों सामाजिक और आर्थिक स्थितियाँ कहाँ तक जकड़े रहती हैं । प्रयत्न करने पर और इच्छा रहते हुये भी वह इसे नहीं जीत पाता मिल कर मर जाता है । जब तक समाज नहीं बदलेगा तब तक कदाचित यही दशा रहेगी ।

उत्तरोत्तर बढ़ती हुई साधु संख्या को देख कर हृदय में क्षोभ होता है । इनमें वही विभूतियां हैं जो हमारे समाज के शासन कर्ता रहे और आदर्श जीवन से रास्ता दिखलाते थे—हम कामना करते हैं कि वह दिन जल्दी ही आये कि काषाय वस्त्र धारण करने वाले केवल आत्म चिंतन में ही लीन न हो जायँ, वरन् समाज, साहित्य और राष्ट्र की बड़ी से बड़ी सेवायें कर सबका भला करें । मेरा नम्र निवेदन है कि साधु समुदाय स्वयं अपना अध्ययन करे और सर्वजनता के इस हौआ को मिटाने का प्रयत्न करे । भारतीय बहुत सी वस्तुओं की भांति इन्हें भी कुछ तो श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और कुछ बिलकुल ही महत्व नहीं देते। ऐसा न होकर इनकी ठीक सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ना चाहिए ।

हिन्दी और उर्दू के प्रश्न पर श्री टण्डनजी[१]

"हमारे सन्मुख कुछ प्रश्न ऐसे हैं जिनमें हिन्दू और मुसलमानों का सम्ब आ जाता है। यह मानी हुई बात है कि देश के अन्य भाषा-भाषी लोग सबसे अधि हिन्दी ही समझते हैं। हमारे सामने सबसे प्रधान कार्य यह है कि हमें हिन्दी को स्थान दिलाना है जो अप्राकृतिक रूप से अँग्रेजी को प्राप्त हो गया है।"

"राष्ट्रीयता और हिन्दी दो चीज़ें नहीं, एक ही हैं। हम कहीं भी उर्दू बुराई नहीं करते। सम्मेलन की रिपोर्टों में तथा सम्मेलन के किसी भी उत्तरदायित्व पूर्ण व्यक्ति के द्वारा उर्दू की बुराई नहीं की गई है। हिन्दी का काम करनेवाले लोग उर्दू के पक्षपातियों पर आक्रमण नहीं करते। जनता की ही माँग हिन्दी की है हिन्दी पर चारों ओर से अनेक प्रकार के आक्रमण हुए हैं, किन्तु देखा यह जा रहा कि जनता हिन्दी की ओर दिनो दिन झुकती जा रही है।"

"हिन्दी की शक्ति दिनोदिन बढ़ने का क्या कारण है! जनता की शक्ति जैसे विकसित होती है—राजनीतिक दृष्टि से भी वैसे ही जनता की भाषा, जो हिन्दी उसकी भी शक्ति बढ़ती जाती है। जनता की शक्ति के साथ हिन्दी का विकास देखकर लोग घबराते हैं और हमें उर्दू का विरोध करनेवाला कहते हैं। हम स्पष्ट कह देते हैं कि हम उर्दू का विरोध नहीं करते।

"हम लोग जो हिन्दी का काम करने के लिए इकट्ठा होते हैं वे उर्दू का विरोध करने के लिए नहीं बल्कि जनता को शक्तिशाली बनाने के लिए। जनता के हृदय में शक्ति उत्पन्न करने वाली भाषा को हम लोगों ने लिया है।"

"दिल्ली में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति ने रेडियो के सम्बन्ध में अपना निश्चय किया है। उसने भारतीय सरकार के रेडियो सबन्धी वक्तव्य की समालोचना की है। हमारे प्रतिनिधियों ने भारतीय सरकार के सामने सम्मेलन का दृष्टिकोण रखा था। हम लोग किसी का प्रसार बन्द करना नहीं चाहते। वैज्ञानिकों द्वारा मानी हुई बात है कि हिन्दी सबसे अधिक समझी जानेवाली भाषा है। हिन्दी वह भाषा है, जिससे हमारा राष्ट्रीय काम चल सकता है। हिन्दुस्तानी के नाम पर उसे स्थान न मिले यह बड़े अन्याय की बात है। और वह हिन्दुस्तानी ऐसी हो जिसमें उर्दू के नाम पर फारसी और अरबी भरी हों। हिन्दी को उचित स्थान मिले, यही हमारी निश्चित माँग है।

---

[१]प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के अवसर पर माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन के भाषण के कुछ अंश।

पुराणों में पाठान्तर की कठिनाइयां

(ले० रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ)

पाठों की भिन्नता से यद्यपि सभी प्राचीन ग्रन्थ भरे पड़े हैं; पर पुराणों में तो यह सब से अधिक है। एक एक पद वा शब्द के दस दस पाठान्तर पाये जाते हैं। पाठों की इस अनेकता के कारण समय, देश एवं व्यक्ति रहे हैं। जिस ग्रन्थ का जितने अधिक देशों कालों एवं व्यक्तियों में स्थान रहेगा, उसमें उतना ही अधिक पाठान्तर पाया जायगा। प्रश्न यह होगा कि क्या वेद, उपनिषद् अथवा अन्यान्य संस्कृत के धार्मिक ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय ग्रन्थों का पुराणों की अपेक्षा कम देश, समय वा व्यक्तियों में प्रचार था। नहीं। इन ग्रन्थों का भी इस दिशा में उनसे कम महत्व नहीं था; पर वेदों की तरह पुराणादि के पाठों में कोई बन्धन नहीं रहता। स्वर के चिन्हों एवं उच्चारणों में समानता रखने के कारण उनमें पाठ भेद की सम्भावना ही कैसे की जा सकती है। उनके उच्चारण एवं प्रयोग के लिए शिक्षाओं में नियम बतलाए गये हैं, अशुद्ध उच्चारण के घोर प्रत्यवाय एवं अनिष्ट होने की सम्भावना दिखाई गई है। 'मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थं माह सस वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोऽपराधात्।' स्वर अथवा वर्ण से हीन उच्चारित मंत्र अपने वास्तविक अर्थ को नहीं प्रकट करता वह मिथ्या हो जाता है। यही नहीं, वह वचन रूपी वज्र बेचारे यजमान का वृत्रासुर की तरह विनाश भी कर देता है। कहा जाता है कि प्राचीनकाल में मंत्र प्रयोक्ता ऋषियों द्वारा स्वर की गड़बड़ी हो जाने के कारण यज्ञ का यजमान वृत्रासुर तो पराजित हो गया और इन्द्र विजयी हुए। जो हो, वेदों के उच्चारणादि के प्रति जैसी सावधानी रखी गई, वैसी समस्त विश्व में किसी भी धार्मिक ग्रन्थ की नहीं रखी गई। सुदूर दक्षिण प्रान्तके भट्ट,बंगाल के भट्टाचार्य कश्मीर एवं काशी के शास्त्रियों के वैदिक मंत्रों के उच्चारणों में अनेक भौगोलिक विषमताओं के रहने पर भी आज अद्भुत समानता पाई जाती है। यह सब उसी सावधानी का परिणाम है। वेदों के बाद उपनिषद एवं अन्यान्य धार्मिक ग्रन्थों में भी पर्याप्त सावधानी रखी गई। न्याय, सांख्य, वेदान्तादि शास्त्रीय ग्रन्थों में भी समय समय पर होने वाले उनके विस्तृत भाष्यों एवं टिप्पणों से पाठान्तर की सम्भावना नहीं रही। आचार्यों एवं शिष्यों की परम्परा ने अनन्तकाल से लेकर आज तक उनको कण्ठस्थ करने की अपनी प्राचीन पद्धति नहीं छोड़ी उसी का परिणाम है कि इस विपरीत परिस्थिति में भी एक एक शास्त्र के सैकड़ों ऐसे विद्वान् मिलेंगे, जिन्हें सम्पूर्ण विषय यदि कण्ठस्थ नहीं हैं तो

स्पष्ट अवश्य हैं। ऐसी अवस्था में उनमें पाठान्तरों की कल्पना कैसे की जा सकती
यही दशा आयुर्वेदादि अन्य संस्कृत ग्रन्थों की भी है। पुराणों का पण्डित समाज
उपयुक्त सम्मान नहीं किया। पुराणों की पवित्रता में आस्था रखते हुए भी वे
से प्रायः उदासीन ही रहे। कृष्ण द्वैपायन व्यास देव ने जिस प्रकार वेदों का वि
कर उसके अध्ययनादि का अधिकार उच्च वर्गीय ऋषियों को सौंपा उसी प्र
पौराणिक सामग्रियों का सङ्कलन कर उसके उपदेशादिका अधिकार सूत वंशीय
हर्षण को सौंपा। लोमहर्षण के छः शिष्यों ने उसका अनेक भागों में विभाग
भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशों में प्रचार किया। पुराणों का उपदेश करना सूतों का
परम्परा गत अधिकार है। वायु पुराण में सूतों के इस अधिकार की चर्चा की गई
सारांश यह कि बहुत प्राचीन काल से पुराणों के उपदेशादि का अधिकार निम्नव
सूतों में रहने के कारण उच्च वर्गीय ऋषियों ने उसकी ओर पर्याप्त ध्यान
दिया। पीछे चलकर जब द्वैत, अद्वैत विशिष्टाद्वैत, आदि सम्प्रदायों के आच
को जनता तक अपने सिद्धान्तों के फैलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई
उन्होंने एकाधिक पुराणों की विस्तृत टीकाएँ लिखीं। अपने मत को पुष्ट करने वा
युक्तियों का उनमें अधिकता से प्रयोग किया। पाठ की एक रूपता को स्थिर रखने
लिए पद कृत्य की शैली अपनाई। उसका परिणाम यह हुआ कि कुछ साम्प्रदा
पुराण यथा श्री मद्भागवत, विष्णु पुराण, शिव पुराण, अधिक पाठान्तरों से बचाये
सके। उत्तर भारत से लेकर दक्षिण भारत तक उनके एक रूप रखने की चेष्टा की गई
पर वे पुराण, जिनमें स्मार्त धर्म का, प्रतिपादन किया गया है, अनेक उपयोगी वि
की जिनमें चर्चा की गई है, उन साम्प्रदायिक आचार्यों के कृपा भाजन नहीं हु
एक ही साथ शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति गणेशादि का माहात्म्य जिसमें वर्णन कि
गया है उसके द्वारा एक ही सम्प्रदाय की पुष्टि किस प्रकार हो सकती है। ऐसे पुरा
के ऊपर न तो साम्प्रदायिक आचार्यों ने कभी कृपा दृष्टि फेरी और न अपने
स्मार्त कहने वाले पण्डितों ने। परिणाम यह हुआ कि वह सूतों की ही सम्पत्ति र
उन लोगों ने जिस प्रकार चाहा उनका प्रचार किया। जिस देश में वे गये वहाँ
प्रमुख वस्तुओं की चर्चा की। जनता के मनोरंजन एवं कल्याण के लिए जिस
एवं जिस प्रकार के वर्णन उन्हें उपयोगी लगे सब को उसमें मिलाया आज कल
तरह मुद्रण की सुविधा तो थी नहीं, लिपिकारों की तनिक सी असावधानी ने
पुराणों के इन पाठान्तरों में योग दान किया है। उदाहरणार्थ किसी पुराण की प्र
लिपि करने के लिए मद्रास प्रान्त का कोई लिपिकर्त्ता पण्डित आया। मानव सु
असावधानता से उसने 'शतम्' के स्थान पर 'मतम्' लिख लिया, और अपनी प्र

लेकर मद्रास गया। 'काशी की प्रति से यह पाठ आया है, अतएव अशुद्ध न होगा—ऐसा मान कर उस प्रति से प्रतिलिपि करने वाले सभी 'शतम' के स्थान पर 'मतम्' आसानी से बना लेंगे। इसी प्रकार वर्णों की आकृतिगत समानता के कारण हस्तलिखित प्रतियों के पाठकों को भी कई स्थान पर भ्रम हो जाता है। वे भ्रान्त पाठक यदि प्रतिलिपि करेंगे तो उसी अपने भाव के अनुकूल उसका पाठ कर देंगे। इस प्रकार भी एक अशुद्ध पाठ फैलेगा। इसी प्रकार भिन्न भिन्न प्रदेश वाले अपनी लिपि में प्रतिलिपि करते समय मूल शुद्ध पाठ से प्रायः दूर चले जाते हैं। इन सब कारणों से पुराणों के पाठान्तरों की इतनी अधिक संख्या हो गई है कि ठीक ठीक अर्थ लगाना कठिन हो जाता है। कहीं कहीं पर ऐसे भ्रामक पाठान्तर आ जाते हैं जो प्रसंग, विषय एवं अवसर की कोई चिन्ता नहीं करते। यह तो साधारण सी बात है। इससे भी बढ़ बढ़कर पुराणों में परिवर्तन हुए हैं। अध्याय के अध्याय नये जुड़ जाते हैं। कथा के बीच में कोई नवीन प्रसंग आ जाता है, जिसके कारण कथा की अन्विति तो बिगड़ती ही है, उनकी संगति लगाना भी कठिन हो जाता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित होने वाले दो महापुराणों, मत्स्य एवं वायु, के अनुवाद में इन पाठान्तरों के कारण मुझे बड़ी ही कठिनाई उठानी पड़ी है। कई स्थलों पर तो किसी प्रकार भी अर्थ नहीं निकल सका। उस विषय के विशेषज्ञ भी निर्विशेष रह गये।

संस्कृत के पण्डितों का इस ओर ध्यान जाना आवश्यक है। पुराण उनकी प्रतिष्ठा के ही एक अंग नहीं है, भारतीय संस्कृति के साथ उनका बहुत काल से संबंध है। उनका उद्धार एक जातीय कार्य है। कम से कम काशी में तो जो संस्कृत विद्या का संसार में प्रमुख केन्द्र है उसके यथार्थ स्वरूप निश्चय का कार्य होना ही चाहिये। पर मैंने देखा है कि पुराणों की ओर ध्यान देने का अवसर काशीस्थ पण्डितों को नहीं मिलता। व्याकरण, न्याय, वेदान्त आदि की एक ही पंक्ति में वे दस दस दिन भले लगा दें, पर पुराणों की ओर एक घड़ी भी देना उन्हें पसन्द नहीं है। काशी की राजकीय परीक्षा में पुराणेतिहास विषय रखा गया है। उसमें आचार्य तक केवल वायुपुराण के कुछ अंश, जो बहुत स्पष्ट है, पाठ्य क्रम में निर्धारित हैं। कम से कम ३, ४ पुराणों को पाठ्य क्रम में रखना आवश्यक था। पाठ्य क्रम में न होने के कारण उन पुराणों का प्रकाशन भी प्रकाशक गण नहीं करते, जिनका जनता में प्रचार नहीं है। अठारह पुराण तो सभी जानते हैं; पर अच्छे-अच्छे पण्डित भी, जो अपनी व्युत्पत्ति एवं स्मरण-शक्ति के कारण ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, यह नहीं जानते कि वे अठारह पुराण कौन कौन हैं, उनमें क्या क्या विषय है। पण्डितों में यह प्रसिद्ध है कि विद्यावतां भागवते

परीक्षा, अर्थात् विद्वानों की परीक्षा भागवत में है, सारांश यह कि भागवत बहुत ही जटिल पुराण है। बात सत्य है; पर भागवत के ऊपर आवश्यकता से अधिक ध्यान दिया जा चुका है। अन्य पुराणों में भी उन्हें अपनी शक्ति का सदुपयोग करना चाहिये। मत्स्य, अग्नि एवं विष्णु पुराण को तो उसमें रखना ही चाहिये, साथ ही पौराणिक विषयों के अन्वेषण का भी कार्य होना चाहिये। पर यह कार्य यहीं नहीं समाप्त होता है। पुराणों के संगत पाठ को निश्चित करने का कार्य एक दो व्यक्तियों का नहीं है। उसमें अखिल भारतीय पण्डितों के सहयोग एवं सहानुभूति की आवश्यकता है। पर सारे कार्य का पूर्ण उत्तरदायित्व लेने के लिए दो तीन पण्डितों की आवश्यकता है, जो सच्चे मन से योग दान करें। काशी के गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के पुराणाचार्य पं० अनन्त शास्त्री फड़के ने एक योजना सुझाव रूप में मेरे सम्मुख रखी थी, उसकी सफलता में सन्देह नहीं किया जा सकता। पर कार्य व्यय साध्य है जिसकी ओर भारतीय संस्कृति के पुजारी धनिक वर्ग अथवा किसी सार्वजनिक संस्था को ध्यान देना चाहिये। फड़के जी ने सोचा था कि भारतवर्ष में जम्मू, लाहौर, दिल्ली, लखनऊ, प्रयाग, काशी, पटना, कलकत्ता, मद्रास, नागपुर, बम्बई, पूना, इन्दौर आदि ऐसे नगरों में जहाँ पुराणों की हस्तलिखित प्रतियाँ मिल सकें, वहाँ किसी प्रतिष्ठित संस्कृत विद्वान् की देख रेख में दो लेखक, जिन्हें संस्कृत का ज्ञान हो, पारिश्रमिक पर रख लिये जायँ और एक छपी प्रति को लेकर वहाँ की हस्तलिखित प्रति से मिलाते जायँ, जहाँ जहाँ पाठभेद हों, वहाँ लिख लें। और इस तरह एक पुराण जो आसानी से १०, १२ दिन में समाप्त हो सकता है, प्रस्तुत करने के बाद दूसरा पुराण लें। उपर्युक्त सभी स्थानों में यह कार्य हो और इस प्रकार सभी पुराणों की जितनी भी प्रतियाँ हों, उन सब के पाठान्तरों को नोट करा के मुख्य कार्यालय में मँगवा लिया जाय। सोचा यह गया है कि यदि सभी स्थानों में पुराणों का यह कार्य हो तो ६, ७ महीने में भारत के कोने कोने से पुराणों के पाठान्तर एकत्र किये जा सकते हैं। और व्यय भी यदि एक लेखक को ३०) रु० माहवार दिये जायँ तो ७००) ७५०) रु० होंगे। जहाँ तक विद्वानों का प्रश्न है उनसे अनुरोध किया जाय कि वे अपने अमूल्य समय को इस पुण्य कार्य में निःशुल्क दें। उपर्युक्त स्थानों में ऐसे उदार चेता विद्वान् हैं, जिन्हें यह पुण्य कार्य करने में प्रसन्नता होगी। समस्त पाठान्तरों के एकत्र हो जाने के बाद उनके सम्पादन का भार दो तीन पण्डितों को दिया जाय, जिन्हें पौराणिक विशेषताओं का ज्ञान हो। उन्हें यह भी अधिकार हो कि जिन विषयों को नितान्त आधुनिक, प्रक्षिप्त अथवा अनर्गल समझें उन्हें फुटनोट या परिशिष्ट में रख दें। मूल पाठ से उनका कोई सम्बन्ध न रखा जाय। पूना

आनन्दाश्रम ने पुराणों के संपादित संस्करण निकालने की ओर ध्यान दिया था और इस कार्य में कुछ पण्डितों को रखा भी था; पर बहुत कम कार्य हुआ. जो हुआ भी है, वह नितान्त शुद्ध नहीं है। मेरा अनुमान है कि इस कार्य में उन्होंने जिन ५, ६ प्रतियों की सहायता ली है, वे सब दक्षिण भारत की थीं। बंगाल, काश्मीर एवं काशी आदि में पाई जाने वाली हस्तलिखित प्रतियों से मिलाने पर यह स्पष्ट हो जाता है। निर्णय सागर प्रेस, वेंकटेश्वर प्रेस तथा नवल किशोर प्रेस ने भी पुराणों का प्रकाशन दो एक प्रतियों के पाठान्तरों के साथ किया है, पर उनमें बहुत अशुद्धियाँ शेष रह गयी हैं। एशियाटिक सोसाइटी ने भी नागरी लिपि में कुछ पुराणों का प्रकाशन किया है; जिनमें कुछ प्रतियों के पाठान्तरों का उपयोग किया है। पर इन सब प्रकाशनों के होने पर भी अनेक पुराण हीन दशा में पड़े हुए हैं।

यह स्थल ऐसा नहीं है कि हम पुराणों की यशोगाथा सुनाने लगें; पर इतना तो निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि पुराणों ने हिन्दू जाति एवं सनातन धर्म की समय समय पर जो रक्षा की है, वह कई नेताओं के कार्य से भी अधिक है। भक्ति के जिस प्रवाह में रामानुज, रामानन्द, वल्लभ आदि सम्प्रदायाचार्यों ने हिन्दू जाति को डुबो कर आपत्ति काल में भी स्थिर रहने का मंत्र दिया था, वह इन पुराणों से ही सम्भूत हुआ। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य का क्या कर्तव्य है—इसके लिए आप अब भी इन पुराणों से प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। यह दूसरी बात है कि हमारी असावधानी से अथवा काल क्रम से उनमें बहुतेरे विकार आ गये हैं; पर उनकी उपयोगिता एवं महत्ता में इससे बट्टा नहीं लगता। प्रत्येक जाति अपने धार्मिक ग्रन्थों के जीवनोद्धार में इतनी उदासीन नहीं रहती; भले ही उनमें कुछ न हो; पर वे इतिहास की वस्तु मानी जाती हैं। बौद्धों के जातक, जिनकी अतिशयोक्तियाँ पुराणों से भी नम्बर मार लेती हैं, लंका से मंगा कर प्रकाशित किये जाते हैं और अनेक भाषाओं में उनके अनुवाद उपलब्ध किये जाते हैं, पर इतनी बड़ी हिन्दू जाति अपने पुराणों के प्रति क्यों इतनी उपेक्षा रखती है ? कुछ कहा नहीं जाता। और जैन मतावलम्बियों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों के प्रकाशन में जो प्रेम और निष्ठा दिखाई है, वह भी स्पृहणीय है। पर पुराणों की ओर हमारी जाति की इस उपेक्षा का भाव आज भी दूर नहीं हुआ। धर्म के नाम पर लाखों रुपये दान करने वाले धनिकों एवं कई लाख एकत्र करने वाले धार्मिक नेताओं को इधर कृपा दृष्टि करनी चाहिये। यह भी एक सांस्कृतिक कार्य है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने पुराणों के हिन्दी अनुवाद का कार्य अपनाया है। इससे हिन्दी भाषी जनता का कितना लाभ होगा—यह कहने की आवश्यकता नहीं है; पर वह तभी वास्तविक उद्देश पूर्ण करने वाला होगा, जब मूल निर्दुष्ट हो। मूल

के भ्रामक रहने पर अनुवाद निर्दोष कैसे रह सकता है। अतः पुराणों के शुद्ध संस्करण प्रकाशित करने का दायित्व हिन्दू संस्कृति के ठोस कार्यों में हैं। यज्ञों एवं मन्दिरों के निर्माण से इनकी कम महत्ता नहीं है। गीता प्रेस, हिन्दू संघ, भारत धर्म महामण्डल, धर्म संघ आदि धार्मिक संस्थाएँ, जिनका यह मुख्य कार्य है, यदि इस ओर ध्यान दें तो कोई बहुत बड़ी कठिनाई नहीं है; पर क्या उनके कर्ण धारों तक मेरी यह प्रार्थना पहुँच सकेगी।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन : जन्म और विकास

[२]

ले० श्री सत्यदेव शास्त्री

काशी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन आशातीत सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन की अनेक विशेषताएं थीं। इनमें दो एक विशेषता की ओर पाठक का ध्यान खींचना चाहता हूँ। सब से बड़ी विशेषता सम्मेलन के आर्थिक प्रश्न को हल करने के लिए 'पैसा फंड समिति' की स्थापना थी जिसकी चर्चा मैंने पहले लेख में की है। दूसरी विशेषता यह थी कि इस सम्मेलन में पढ़े जाने के लिए हिन्दी के विभिन्न विषयों पर अधिकारी विद्वानों के २४ सुन्दर और उच्च कोटि के लेख आए थे। यद्यपि समयाभाव के कारण सब लेखों के पढ़े जाने का अवसर अधिवेशन में नहीं मिला, किन्तु वे सभी लेख प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन काशी के कार्य विवरण पहिले भाग में प्रकाशित हो गए हैं। उनमें प्रत्येक लेख पठनीय और मननीय है। इस लेख माला में बंगाल के श्री बाबू शारदा चरण मित्र द्वारा लिखित 'राष्ट्रभाषा और राष्ट्र लिपि' शीर्षक लेख की ओर मेरा ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। मित्र महोदय राष्ट्र भाषा हिन्दी और एक राष्ट्र लिपि नागरी के बड़े ही पुष्ट पोषक थे। बंगाली होते हुए भी उन्होंने 'एक लिपि विस्तार परिषद, की स्थापना १६०५ ई० में कलकत्ता में की थी। उस समिति के द्वारा नागरी लिपि को ही राष्ट्र लिपि घोषित किया गया। उन्होंने अपने इस लेख में स्पष्ट रूप से लिखा है, कि हिन्दी समस्त आर्यावर्त की भाषा है। कलकत्ते का एक लिपि विस्तार परिषद समस्त भारतवर्ष में एक नागरी लिपि के प्रचार करने में तन मन से लगा हुआ है। यद्यपि मैं बंगाली हूँ तथापि मेरे दफ्तर की भाषा हिन्दी है। इस वृद्धावस्था में मेरे लिए वह गौरव का दिन होगा जिस दिन मैं हिन्दी स्वच्छन्दता के साथ बोलने लगूंगा और प्लैट फ़ार्म के ऊपर खड़ा होकर हिन्दी में वक्तृता दूंगा। उसी दिन मेरा जीवन

सफल होगा जिस दिन मैं सारे भारतवासियों के साथ साधु हिन्दी में वार्तालाप करूँगा।" यह है, एक वृद्ध मनीषी बंगाली का अगाध हिन्दी प्रेम।

प्रथम अधिवेशन में ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन नागरी प्रचारिणी सभा काशी से अलग एक स्वतन्त्र संस्था के रूप में खड़ा हुआ। आवश्यकता इस बात की थी कि इसके संचालन के लिए इसे नियमों में बाँधा जाय। और प्रथम सम्मेलन के मन्तव्य के अनुसार स्थायी समिति के प्रधान मन्त्री श्री बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने एक नियमावली बनाकर द्वितीय अधिवेशन में जो प्रयाग में श्री पंडित गोविन्द नारायण मिश्र के सभापतित्व में हुआ, उपस्थित की और सूचित किया कि प्रथम सम्मेलन के मन्तव्य के अनुसार यह नियमावली सम्मेलन के लिए बनाई गई थी और स्थायी समिति ने इसे स्वीकार किया था। नियमावली एक वर्ष के लिए स्वीकृत हुई और यह निश्चय हुआ कि आगामी अधिवेशन में फिर इस पर विचार हो और एक साल के लिए सम्मेलन का कार्यालय भी प्रयाग में रखने का निश्चय हुआ।

इस नियमावली के अनुसार सम्मेलन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(क) हिन्दी साहित्य के सब अंगों की उन्नति का प्रयत्न करना।

(ख) देव नागरी लिपि का देश भर में प्रचार करना और देश व्यापी व्यवहारों और कार्यों को सुलभ करने के लिए हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा बनाने का प्रयत्न करना।

(ग) हिन्दी को सुगम, प्रिय और मनोरम बनाने के लिए समय समय पर उसकी शैली के संशोधन और उसकी त्रुटियों के दूर करने का प्रयत्न करना। इत्यादि। सम्मेलन के अधिवेशन, सम्मेलन की स्थायी समिति, प्रतिनिधियों के निर्वाचन, सभापति के चुनाव सम्बन्धी नियमों का नियमावली में समावेश किया गया। सम्मेलन की स्थायी समिति में एक सभापति, दो उपसभापति, एक मंत्री, दो उपमंत्री, और एक आयव्यय निरीक्षक और इनके अतिरिक्त ४० सभासद रखे गए।

पैसा फंड समिति से जो आय हुई उसका व्यय मुख्यतया यू० पी० की कचहरियो में नागरी प्रचार के काम में ही हुआ। प्रयाग, हाथरस और फतेहपुर की कचहरियों में सम्मेलन की ओर से विशेष काम हुआ और २१३२ हिन्दी के काग़ज़ात कचहरी में दाखिल हुए।

सम्मेलन ने धीरे धीरे हिन्दी प्रचार तथा हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि की ओर क़दम बढ़ाया। सम्मेलन की नियमावली में 'क' के अनुसार सम्मेलन का एक उद्देश यह भी था कि हिन्दी साहित्य के विद्वानों को तैय्यार करने के लिए हिन्दी की उच्च परीक्षाएं लेने का प्रबन्ध करना।

परीक्षा समिति का संगठन इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हिन्दी परीक्षा नियमावली मार्ग शीर्ष शुक्ल ६ और ७ सं० १९६९ के स्थायी समिति के अधिवेशन स्वीकृत हुई थी, किन्तु समयाभाव के कारण तृतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में इ पर विचार नहीं हो सका और भागलपुर के चौथे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधि वेशन में यह नियमावली विचारार्थ उपस्थित हुई। और १९ वें प्रस्ताव के अनुस नियमावली पर विचार करने के लिए सात सज्जनों की एक उपसमिति बनाई ग जिनके नाम ये थे—(१) पं० शुकदेव बिहारी मिश्र संयोजक (२) लाला राधा मो गोकुल जी (३) बाबू श्याम सुन्दर दास (४) श्री हरिचन्द्र वेदालंकार (५) पं० राम तार शर्मा (६) युगुल किशोर मिश्र (७) पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी।

श्री पं० शुकदेव बिहारी मिश्र ने हिन्दी परीक्षा की प्रस्तावित नियमावली उपस्थि की। इसके अनुसार तीन परीक्षायें निश्चित हुईं (१) प्रथमा परीक्षा (२) द्वितीय परी (३) तृतीय परीक्षा। इन परीक्षाओं के प्रबन्ध के लिए एक परीक्षा समिति निर्धारित हु जिसके ५ सभासद माने गये जिनका प्रतिवर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधि वेशन में निर्वाचित होना तै रहा। परीक्षा समिति का मुख्य स्थान सम्मेलन कार्याल बना। सभी देश जाति और अवस्थाओं के परीक्षार्थियों को उक्त परीक्षाओं में सम्मि लित होने का अधिकार मिला। हिन्दी परीक्षाओं में केवल हिन्दी भाषा एवं देव नाग लिपि का व्यवहार माना गया। प्रथमा परीक्षा के लिए १), द्वितीया के लिए २) तृतीया के लिए ३) शुल्क निश्चित किया गया। तीनों परीक्षाओं के लिए पाठ्य पुस्त भी निश्चित कर दी गईं।

मिति आषाढ़ बदी १३ (सं० १९७१) को स्थायी समिति ने एक विशे मन्तव्य द्वारा एक परीक्षा समिति बनाकर उसे नियमानुसार उसे परीक्षा का का सौंप दिया और १३ वें नियम के अनुसार पांच मास के भीतर ही उपनियमों की रच पुस्तकों का चुनाव, विविध स्थानों में परीक्षा का प्रबन्ध, परीक्षा का फल प्रकाशि करना एवं आगामी वर्ष के परीक्षाओं के लिए समय और पाठ्य ग्रन्थों का नियुक्त कि जाना आदि सारे काम इतने ही काल के भीतर करने पड़े। इतने थोड़े समय सूचना में समिति को २८ परीक्षार्थी मिले। २२ परीक्षा में बैठे और १५ उत्त हुए। इस प्रकार परीक्षा का कार्य सम्मेलन ने अपने हाथ में लेकर हिन्दी साहित्य अध्ययन की रुचि लोगों में उत्पन्न करने का सुन्दर प्रयास किया और तब से आज परीक्षाओं की शृंखला बराबर चली आ रही है।

सम्मेलन पत्रिका—किसी भी संस्था द्वारा उसके उद्देश्यों एवं उसकी विवि प्रवृत्तियों के प्रचार के लिए उस संस्था का कोई न कोई मुख पत्र होना आवश्यक है। इसी उद्देश्य से सम्मेलन ने प्रारंभ से सम्मेलन पत्रिका निकालने का निर

किया। आश्विन शुक्ला दसमी संवत् १९७० को सम्मेलन पत्रिका का प्रथम अंक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की कार्य समिति की ओर से निकला। इसके सुयोग्य संपादक श्री गिरिजा कुमार घोष थे। इसका वार्षिक मूल्य १) रखा गया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उद्देश्यों में सहायता देना और साहित्य सेवियों से इसी के लिए उपदेश लेना यह सम्मेलन पत्रिका का उद्देश्य रखा गया।

प्रचार कार्य—प्रचार कार्य के लिए समर्थ, धुनवाले और त्याग भावना के उत्साही प्रचारकों की आवश्यकता होती है। सम्मेलन का काम तो बहुत ही कम पैसों से शुरू किया गया। वैतनिक प्रचारक रखना कठिन था। श्रीमान् सत्यदेव जी आज के स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने प्रचार कार्य से सम्मेलन को काफी सहायता दी। यू० पी० की कचहरियों में हिन्दी को फैलाने का कार्य सम्मेलन ने प्रारंभ से ही अपने हाथ में लिया था किंतु इस दिशा में तो आज तक संतोष जनक प्रगति नहीं हो पाई है। इसमें अनेक कठिनाइयां सामने आकर खड़ी हो जाती हैं।

हिन्दी प्रदर्शिनी—सम्मेलन के साथ पहली प्रदर्शिनी सम्मेलन के चौथे अधिवेशन में भागलपुर में हुई थी।

हिन्दी जगत

हिन्दी हितैषी पं० रामनाथ शर्मा का आकस्मिक स्वर्गवास

ले०—पं० रामकिशोर शर्मा बी० ए० सह० संपादक "जयाजी प्रताप"

हिन्दी के एक उत्कट प्रेमी तथा परम हितैषी पं० रामनाथ शर्मा का गत बुधवार ता० १३ दिसम्बर को इन्दौर के चिकित्सालय में हृदय रोग से आकस्मिक एवं असामयिक स्वर्गवास हो गया।

पं० रामनाथ शर्मा का अधिकांश जीवन ग्वालियर राज्य के वन विभाग में व्यतीत हुआ, जिस विभाग की आपने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी तथा जिस विभाग में आप अपने परिश्रम तथा ईमानदारी के कारण सर्वोच्च पद पर पहुँच कर कार्यनिवृत्त हुए।

आप को साहित्य सेवा तथा हिन्दी प्रचार का व्यसन विद्यार्थी अवस्था से ही था जो राज्य की सेवा में आने के बाद भी निरन्तर बना रहा। अबसे २५, ३० वर्ष पूर्व से ही ग्वालियर राज्य के प्रमुख पत्र "जयाजी प्रताप" में आप के लेख प्रायः प्रकाशित होते रहते थे, १९२६ में मुख्यतः आपके ही उद्योग से ग्वालियर राज्य हिन्दी साहित्य

सम्मेलन की स्थापना हुई और उसके चार अधिवेशन बड़े समारोह के साथ हुए। आप प्रथम तथा द्वितीय अधिवेशनों के प्रधानमन्त्री और चतुर्थ अधिवेशन के सभापति चुने गये थे। १९३२ में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के ग्वालियर अधिवेशन में भी आप ने रात दिन एक कर दिया था तथा उसे सफल बनाने में पूर्ण सहयोग दिया था।

अपनी हिन्दी सेवाओं के कारण आप ग्वालियर राज्य हिन्दी साहित्य सभा के भी कई वर्ष तक सभापति रहे और इस काल में आप ने राज्य के भिन्न भिन्न विभागों में हिन्दी का प्रचार बढ़ाने का पूर्ण प्रयत्न किया। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति के भी आप कई वर्ष से सदस्य थे तथा ग्वालियर और बागली जैसे सुदूर स्थानों से भी स्थायी समिति की बैठकों में सम्मिलित हुए थे, यह आप के उत्कट हिन्दी प्रेम का ही एक प्रमाण है।

हाल के जयपुर अधिवेशन में भी आप बागली तथा इन्दौर के कुछ साहित्य प्रेमियों को साथ लेकर सम्मिलित हुए थे तथा अधिवेशन की समस्त कार्यवाही में आप ने प्रमुख भाग लिया। राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा के हित की दृष्टि से आप ने प्रान्तीय भाषाओं और और बोलियों की आड़ में विकेन्द्री करने की चेष्टा का विरोध कर अधिवेशन के सोलहवें मन्तव्य का प्रस्ताव कर, उसे स्वीकृत भी कराया था। जयपुर में आप कई उपसमितियों के सदस्य भी चुने गये थे।

ग्वालियर से जब से आप बागली पहुँचे तब से उस ठिकाने में ही आप ने हिन्दी का प्रचार तथा प्रयोग नहीं बढ़ाया, मध्य भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को भी जो कि मृत प्राय हो रहा था—आप ने पुनर्जीवित किया तथा उसका एक अधिवेशन पिछले वर्ष अपने ठिकाने में कराया जो अपूर्व सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इस समय आप ही मध्य भारतीय साहित्य सम्मेलन के प्रधानमन्त्री थे।

अदालतों में हिन्दी प्रचार के लिये आप कई वर्ष से उद्योगशील थे तथा इसी दृष्टि से आप ने एक उर्दू हिन्दी कोष की भी रचना की थी। "ग्वालियर राज्य में हिन्दी का स्थान" आदि कई पुस्तकें भी आप ने लिखा था।

आप ने स्वयं तो हिन्दी प्रचार तथा हिन्दी सेवा का पूर्ण प्रयत्न किया ही उससे भी अधिक महत्वपूर्ण आप का कार्य था दूसरों को साहित्य सेवा तथा हिन्दी प्रचार के लिये निरन्तर प्रेरित करना। आप की कार्य क्षमता तथा आप के अदम्य उत्साह को देखकर वास्तव में युवकों को भी आश्चर्य होता था। ४९ वर्ष की ही अवस्था में आप की मृत्यु हिन्दी संसार की बहुत बड़ी क्षति है।

जनपदीय कार्यक्रम और विकेन्द्रीकरण[1]

[श्री प्रभुदयाल मीतल, मथुरा]

हिन्दी-साहित्य संमेलन के विगत हरिद्वार-अधिवेशन ने जनपद विषयक जो प्रस्ताव स्वीकृत किया था, उसका स्वागत सब क्षेत्रों में समान रूप से नहीं हुआ। यद्यपि प्रस्ताव में विभिन्न जनपदों की भाषा, पशु-पक्षी, बनस्पति, ग्राम-गीत, जल-विज्ञान, संस्कृति, साहित्य तथा उपज आदि की दृष्टि से उनके अध्ययन और अनुसंधान करने की प्रेरणा की गई है, जिसमें किसी को आपत्ति नहीं हो सकती, किंतु इस प्रस्ताव की उपयोगिता में संदेह करने वालों को आशंका है कि जनपदों की स्वतंत्र सत्ता मान लेने पर, उक्त कार्यक्रम सांस्कृतिक और साहित्यिक अध्ययन तक ही सीमित न रह सकेगा, बल्कि आगे जाकर क्षुद्र प्रांतीयता के विशाक्त वायुमंडल की उत्पत्ति का भी कारण होगा, जिसके फल-स्वरूप स्वयं हिन्दी-साहित्य-संमेलन ही नहीं, प्रत्युत् हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषा के भी घोर अनिष्ट होने की संभावना है।

हमारे सामने "जनपदों में साहित्यिक कार्य की योजना की रूपरेखा" के रूप में श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम उपस्थित है, जिसमें विद्वद्वर अग्रवाल जी की पंचवर्षीय योजना है, जिसमें कार्यकर्त्ताओं की इच्छा और सुविधा के अनुसार वर्षानुक्रम से अथवा एक साथ पूरे पाँच वर्ष में जनपदों के अध्ययन और अनुसंधान का कार्यक्रम है।

सुप्रसिद्ध साहित्य-महारथी श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी महोदय उपर्युक्त कार्यक्रम तक ही संतुष्ट ज्ञात नहीं होते, वे इससे भी आगे बढ़कर विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) के सिद्धांतानुसार साहित्यिक दृष्टि से हिन्दी-भाषा-भाषी समस्त भूभाग को अनेक केन्द्रों में विभाजित कर उनकी स्वतंत्र सत्ता को सांगोपांग उन्नत कर देना चाहते हैं। अपनी योजना को कार्यान्वित करने के अभिप्राय से उन्होंने अपने वर्तमान कार्यक्षेत्र बुंदेलखंड को एक पृथक् प्रांत बनाये जाने का आन्दोलन भी प्रारंभ कर दिया है।

जहाँ तक हमने इस संबंध में पढ़ा और विचार किया है, हमको ऐसा ज्ञात होता है कि जनपदीय कार्यक्रम को विकेन्द्रीकरण से सर्वथा मुक्त कर दिया जाय, तो अधिकांश व्यक्तियों की आशंका दूर हो सकती है। श्री वासुदेवशरण जी अग्रवाल के कार्यक्रम से,

---

[1] विक्रम द्विसहस्राब्दि महोत्सव के अवसर पर ब्रज-साहित्य-मंडल के विशेषाधिवेशन में पठित।

जहाँ तक हम समझते हैं, मतभेद नहीं होना चाहिए, क्यों कि वह साहित्यिक और सांस्कृतिक अनुसंधान तक ही सीमित है, किन्तु श्री चतुर्वेदीजी की योजना से भविष्य में दुष्परिणाम की आशंका होनी स्वाभाविक है। यही कारण है कि जिस बुंदेलखंड को वे एक पृथक् प्रांत बनाना चाहते हैं, उसका विरोध वहीं के सुप्रसिद्ध साहित्यिकों ने भी किया है। श्री सियारामशरण जी गुप्त का अभिमत इसका प्रमाण है। गुप्तजी इस विकेन्द्रीकरण को 'पाकिस्तान' की कोटि का समझकर 'बुंदेलस्तान' बनाया जाना पसंद नहीं करते हैं।

श्री अग्रवालजी की योजना में 'ब्रजमंडल' भी एक जनपद माना गया है। इसीलिए इस विवाद में पक्ष और विपक्ष के कई महानुभावों ने 'ब्रज-साहित्य-मंडल' और उसकी मुख—पत्रिका 'ब्रजभारती' का भी उल्लेख अपने—अपने दृष्टिकोण के अनुसार किया है। श्री चंद्रबलीजी पांडे ने "हिन्दी" के संपादकीय स्तंभ में 'विकेन्द्रीकरण' पर टिप्पणी करते हुए लिखा है :—

"यदि विकेन्द्रीकरण का कार्य इसी रूप में चलता रहा, अर्थात् हिन्दी के विकेन्द्रीकरण ने 'ब्रज-साहित्य-मंडल' को जन्म दिया और 'ब्रज-साहित्य-मंडल' के विकेन्द्रीकरण ने 'बुंदेलखंड-साहित्य-मंडल को, तो इसे विवश हो मानना ही पड़ेगा कि बुंदेलखंड साहित्य-मंडल का विकेन्द्रीकरण भी इसी न्याय से किसी अन्य साहित्य-मंडल को जन्म देगा और इसका अंत फिर जाकर कहाँ होगा यह कहना अत्यंत कठिन हो जायगा।"

इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि आदरणीय पांडेजी के विचारानुसार ब्रज-साहित्य-मंडल इस विकेन्द्रीकरण की ही उपज है, जो संभवतः नहीं है। ब्रज-साहित्य-मंडल को श्री अग्रवालजी के कार्यक्रम को अपनाना चाहिये, किन्तु 'विकेन्द्रीकरण' अथवा प्रांतीयकरण की थ्योरी में उसे विश्वास न करना चाहिये।

ब्रजमंडल का कोई व्यक्ति ब्रज को पृथक् प्रांत बनाने और राष्ट्रभाषा हिन्दी से विद्रोह पूर्वक ब्रजभाषा को उसके विरुद्ध खड़ी करने की बात स्वप्न में भी नहीं सोच सकता। इसी प्रकार ब्रज—साहित्य—मंडल भी ब्रजभाषा की हिमायत इसलिए नहीं करता कि वह ब्रजप्रांत की पृथक् भाषा है, बल्कि इसलिए कि इसी भाषा में हिन्दी का प्रायः वह समस्त प्राचीन साहित्य है, जिसके उद्धार पर ही हिन्दी भाषा का प्राचीन गौरव निर्भर है। इसलिए ब्रजभाषा और ब्रज-साहित्य-मंडल का कार्य क्रमशः हिन्दी और हिन्दी-साहित्य-संमेलन का ही कार्य प्रतीत होता है, जो कि एक अथवा अनेक केन्द्रों से बिना किसी विरोध व मतभेद के हो सकता है। ऐसी दशा में हम निःसंकोच भाव से कह सकते हैं कि ब्रज-साहित्य-मंडल के कार्यक्रम में विकेन्द्रीकरण की गंध भी नहीं है।

उपयुक्त स्पष्टीकरण से ब्रज-साहित्य-मंडल का अस्तित्व और उसका कार्यक्रम अन्य जनपदों से पूर्णतया पृथक् हो जाता है। श्री अग्रवालजी के प्रस्ताविक जनपदों में 'कुरु' और 'पांचाल' जनपदों के अत्यंत प्राचीन होते हुए भी वर्तमान समय में उनका अस्तित्व सर्वथा लुप्त हो चुका है। अब यदि वहाँ पर जनपदीय कार्य करना है, तो उसका नवीन रूप से आरंभ होगा। यदि यह हुआ भी, तब भी "कौरवी" अथवा "पांचाली" भाषाओं का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। इसी प्रकार श्री चतुर्वेदीजी का बुंदेलखंड प्रांत अभी भविष्य के गर्भ में है और उनकी आदरणीया बुंदेली भाषा भी ब्रजभाषा का ही एक रूप है; किन्तु इसके विरुद्ध ब्रजमंडल और ब्रजभाषा का जो महत्व पहले था, वही अब भी है और इस पर भी पृथक् प्रांत निर्माण का ब्रजमंडल ने कोई प्रश्न नहीं उठाया। ब्रजमंडल की भारती के रूप में ब्रजभाषा-साहित्य का जो अपार भंडार उपलब्ध है, उस पर ब्रज अथवा ब्रजभाषा भाषियों का ही नहीं, प्रत्युत अखिल हिन्दी जगत् एवं समस्त हिन्दी-भाषाभाषी जनता का समान रूप से पैतृक अधिकार है। खेद की बात तो यह है कि जिस प्रस्तुत ब्रजभाषा-साहित्य पर हिन्दीभाषा का प्राचीन गौरव निर्भर है, वह तो समग्र साहित्य का शतांश भी नहीं है। अधिकांश साहित्य अब भी अनधिकारी व्यक्तियों के घरों में पड़ा हुआ नष्ट हो रहा है, जिसको खोज निकालना समस्त हिन्दी हितैषियों का समान कर्त्तव्य है। ऐसी दशा में ब्रज को अन्य जनपदों की कोटि में रखना और ब्रज-साहित्य-मंडल को 'विकेन्द्रीकरण' की उपज समझना, उसके साथ सरासर अन्याय करना है।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि आख़िर यह 'विकेन्द्रीकरण' है क्या बला? इस अद्भुत सिद्धांत के आविष्कर्त्ता श्री चतुर्वेदीजी के ही शब्दों में—

"थोड़े से व्यक्तियों अथवा दो-तीन संस्थाओं के हाथ में संपूर्ण शक्ति सौंपने के बजाय अधिक से अधिक मनुष्यों को सशक्त बनाना तथा सैकड़ों-सहस्रों ऐसे केन्द्र स्थापित करना, जहां से साधारण जनता प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्राप्त कर सके, इस नीति का नाम विकेन्द्रीकरण है।"

यदि विकेन्द्रीकरण का यही अभिप्राय है, तो इससे किसी प्रकार के अनिष्ट होने की संभावना नहीं है; किन्तु जब श्री चतुर्वेदीजी यह बतलाते हैं कि "विकेन्द्रीकरण वस्तुतः अराजकवाद के मौलिक सिद्धान्तों में से है" तभी उससे आशंका होने लगती है।

विकेन्द्रीकरण का अराजक रूप तब सामने आता है, जब श्री चतुर्वेदी जी जनपदों की बोलियों में पाठ्य पुस्तकें निर्माण करने का आदेश करते हैं। आज चाहें यह अराजकता प्रारंभिक शिक्षा तक ही की जाय, किंतु कौन कह सकता है कि इस अरा-

जकता के वातावरण में शिक्षित बालक बड़े होने पर उच्च शिक्षा में भी अराजकता सिद्धान्त का उपयोग न करेंगे ! वास्तव में यह बड़ा अनिष्टकारी प्रोपेगेंडा है, जो काशी–नागरी–प्रचारिणी–सभा के अर्ध शताब्दी--महोत्सव के अध्यक्ष स्वामी भवानी दयाल जी के शब्दों में— 'हिंदी के प्रति अक्षम्य अपराध है।"

सच बात तो यह है कि विकेन्द्रीकरण के अनुसार अनेक केन्द्र स्थापित करने में भी कोई हानि नहीं है, बल्कि अनेक केन्द्रों से ही प्रधान केन्द्र की शक्ति और सामर्थ्य का विकास होता है। पर आवश्यकता इस बात की है कि ये अनेक केन्द्र पारस्परिक सहयोग करते हुए भी प्रधान केन्द्र के अनुशासन में रहें। यदि सब केन्द्र अराजकता पूर्वक प्रधान केन्द्र से पृथक् हो जावेंगे, तो अपनी सीमित और अल्प शक्ति के कारण वे अपना हित--संपादन करने में तो असमर्थ होंगे ही, साथ ही प्रधान केन्द्र की शक्ति का भी ह्रास कर देंगे। उदाहरणार्थं इम्पीरियल बैंक की अनेक शाखाएँ उसकी सामूहिक उन्नति की ही साधक हैं, और ये सब शाखाएँ भी प्रधान केन्द्र के बल पर अपनी सामर्थ्य से अधिक कारोबार प्रतिदिन सफलता पूर्वक करती रहती हैं। अब यदि कोई शाखा अराजकता पूर्वक प्रधान केन्द्र से पृथक हो जाय तो पारस्परिक आदान--प्रदान में गड़बड़ होने से एक दिन में ही इम्पीरियल बैंक का दिवाला निकल जावेगा, जिसके परिणाम स्वरूप उक्त शाखा के साथ, अन्य शाखाओं सहित प्रधान केन्द्र का भी कारोबार बंद हो जावेगा। इसलिए विकेन्द्रीकरण की नीति अराजकता-पूर्ण न होकर पारस्परिक सहयोग और अनुशासन पर आधारित होनी चाहिए।

श्री चतुर्वेदीजी ने प्रश्न किया है:—

"यदि राजस्थानी साहित्य सम्मेलन की नींव सुदृढ़ आधार पर रखी जाती है, अवध साहित्य परषद् की स्थापना हो जाती है, ब्रजभाषा के लिए महाविद्यालय कायम हो जाता है, बुंदेलखंडी विश्वकोष प्रकाशित हो जाता और कुमाऊँ तथा गढ़वाल के पार्वत्य प्रदेशों में साहित्यिक जागृति हो जाती है, इससे केन्द्रीय संमेलन का क्या अहित होगा ?"

उपर्युक्त आवश्यक बातों से केन्द्रीय संमेलन के अहित का क्या प्रश्न? इनसे तो पूर्ण रूपेण उसका हित ही होगा। जिन बातों को केन्द्रीय संमेलन अधिक समय में अधिक चेष्टा पूर्वक कर पावेगा, उनको ये अनेक केन्द्र अपनी-अपनी सीमाओं में अल्प काल और अल्प प्रयास से ही सफलता पूर्वक कर लेंगे, फिर इसके लिए प्रधान केन्द्र से अराजकता करने की क्या आवश्यकता है ? केन्द्रीय सम्मेलन का और उसके साथ ही उन विभिन्न केन्द्रों का अहित तो तब होगा, जब वे

पृथक प्रांत और पृथक भाषा की माँग करेंगे और अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग-अलग पकावेंगे!

श्री चतुर्वेदी जी के इस कथन का सभी सहर्ष अनुमोदन करेंगे कि "व्रजमंडल बृजभाषा महाविद्यालय की स्थापना करना और व्रजभाषा की पुरानी पोथियों को व्रजमंडल के संग्रहालय में ही रखना उचित है।" किंतु साथ ही यह भी उचित है कि इन निर्विवाद कार्यों को हिन्दी-साहित्य-संमेलन के सहयोग और उसकी सहानुभूति के साथ किया जाय। कम से कम इन कार्यों के लिए व्रज को आराजकता पूर्वक पृथक प्रांत बनाने और व्रजभाषा को हिन्दी से विद्रोह करने की आवश्यकता न होनी चाहिए।[1]

कार्य समिति का तृतीय अधिवेशन

कार्य समिति की तृतीय बैठक रविवार, ११ चैत्र संवत् २००१, तारीख़ २५ मार्च १९४४ को १२ बजे दिन से दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्यालय, १८ दीवानहाल में हुई। निम्न लिखित सदस्य उपस्थित थे—

सर्व श्री माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन श्री नारायण चतुर्वेदी; बलभद्र प्रसाद मिश्र; आनन्द कौसल्यायन सत्यदेव शास्त्री, वाचस्पति पाठक; मौलिचन्द्र शर्मा, (प्रधान मंत्री)

---

[1]इस विषय में सम्मेलन की नीति जयपूर अधिवेशन के सोलहवें मन्तव्य में निश्चित हो चुकी है। पाठकों की सुविधा के लिए प्रस्ताव नीचे दिया जा रहा है :—

'प्रान्तीय भाषाओं और बोलियों को पृथक-पृथक सभ्यता और संस्कृति का परिचायक बताकर जो संकुचित आन्दोलन कई प्रदेशों में किये जा रहे हैं यह सम्मेलन उनको अवांछनीय समझता है। उसकी सम्मति है कि भारत की एक ही संस्कृति है और एक ही संस्कृति एवं भाषा से प्रभावित भाषाएं एवं बोलियां देश में प्रचलित हैं। इस सम्बन्ध को दृढ़ करने के लिए ऐसे प्रान्तीय शब्द-कोषों के निर्माण की आवश्यकता है जिनमें प्रचलित और प्रयुक्त तद्भव और तत्सम शब्दों एवं व्युत्पत्ति के आधार पर यह आन्तरिक एकता स्पष्ट हो जाय। यह सम्मेलन प्रान्तीय सम्मेलनों से अनुरोध करता है कि वे अपनी अपनी प्रादेशिक भाषा में इस कार्य को पूर्ण करने का प्रयत्न करें।'

—सम्पादक

१—नियमानुसार माननीय पुरुषोत्तमदासजी टंडन ने सभापति का आ
ग्रहण किया।

३—सर्वसम्मति से खड़े होकर निम्नांकित शोक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ—

यह समिति हिन्दी के पुराने प्रतिष्ठित लेखक और पत्रकार श्री हरि
जौहर, अपने पुराने और मान्य सदस्य और हिन्दी के अनन्य सेवक श्री राम
शर्मा तथा अपने स्थायी सदस्य श्री लालमणि गुप्त के देहावसान पर हार्दिक
तथा उनके कुटुम्बियों के साथ सहानुभूति और समवेदना प्रकट करती है।"

४—हिन्दुस्तानी एकेडमी में भेजे गए सम्मेलन के दूसरे प्रतिनिधि
रिक्त स्थान का प्रश्न तथा उस सम्बन्ध में आया हुआ एकेडमी के सुपरिनटेंड
२१-२-४५ का पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि अभी यह प्रश्न स्थगित रखा जाय।

५—पटना विश्वविद्यालय में स्थापित रामदीन रीडरशिप समिति के
सदस्य के चुनाव का प्रश्न उपस्थित किया गया।

सर्व सम्मति से श्री उदयनारायण जी तिवारी उक्त समिति के स
निर्वाचित हुए।

६—माननीय टंडन जी तथा प्रधान मंत्री जी ने रेडियो के विषय में
अब तक के कार्य की सूचना दी।

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि आज ही इसके पश्चात् होने वाली
समिति में इस प्रश्न पर विचार किया जाय।

७—अम्बाला डिवीजन को दिल्ली प्रान्त में सम्मिलित करने के सम्बन्ध
दिल्ली प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मंत्री के पत्र उपस्थित किए गए।

सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि अभी यह प्रश्न स्थगित रखा जाय।

८—काशी के भगवानदीन साहित्य विद्यालय के मंत्री का आर्थिक सहा
विषयक पत्र उपस्थित किया गया।

निश्चय हुआ कि विद्यालय को लिखा जाय कि खेद है कि अनुमान पत्र में
धन नहीं है। इस कारण इस वर्ष हम ५०) सहायतार्थ भेज रहे हैं।

९—सदस्यता के लिए निम्नांकित सज्जनों के आवेदन पत्र उप
किए गए।

१—स्थायी सदस्य १
२—साधारण सदस्य ११९
३—विशेष सदस्य ११

४—कवि ५

५—लेखक १

प्रचार मंत्री जी ने बताया कि उपरोक्त सज्जनों के रुपए कार्यालय में पहुँच चुके हैं। इनकी सदस्यता स्वीकार की जानी चाहिए।

श्री वाचस्पति पाठक जी ने प्रस्ताव का समर्थन किया।

सर्व सम्मति से उपरोक्त सज्जनों की सदस्यता स्वीकृत हुई।

१०—कानपुर के हिन्दी साहित्य मंडल, बसरेहर (जि० इटावा) हिन्दी साहित्य समिति, प्रयाग की, हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य परिषद् तथा आगरे के श्रीधर साहित्य सदन के सम्बद्धता विषयक आवेदन पत्र उपस्थित किए गये।

कार्यालय ने बताया कि नियमानुसार चारों संस्थाओं के शुल्क आदि कार्यालय में प्राप्त हो चुके हैं।

सर्वसम्मति से कानपुर के हिन्दी साहित्य मंडल तथा आगरे के श्रीधर साहित्य सदन का सम्बन्ध स्वीकार किया गया। शेष दो के सम्बन्ध में निश्चय हुआ कि प्रबन्ध मंत्री जी इन संस्थाओं के विषय में जांच करके अपनी रिपोर्ट के साथ यह प्रश्न समिति में उपस्थित करें।

११—प्रबन्ध मंत्री श्रीनाथ सिंह जी के पत्र के विषय में निश्चय हुआ कि इस प्रश्न पर स्थायी समिति में विचार किया जाय।

१२—परीक्षा विभाग तथा साहित्य विभाग में नियुक्त कुछ लेखकों की स्थायी नियुक्ति का प्रश्न उपस्थित किया गया। सर्वसम्मति से निश्चय हुआ कि अभी यह विषय स्थगित रखा जाय।

१३—प्रचार मंत्री जी ने बताया कि कानपुर की श्रीमती पुष्पा देवी मेहरोत्रा तथा श्री परिपूर्णानन्द जी वर्मा, ने यथाक्रम स्त्रियोपयोगी तथा बालोपयोगी पांच सौ पुस्तकों की सर्वश्रेष्ठ सूची तैयार करने वाले सज्जन को १०१) का अलग-अलग पुरस्कार देना स्वीकार किया है और रुपया सम्मेलन कार्यालय में प्राप्त हो चुका है।

सर्व सम्मति से दोनों सज्जनों के दान सधन्यवाद स्वीकार किए गए।

कार्य समिति की चतुर्थ बैठक

कार्य समिति की बैठक रविवार ज्येष्ठ सौर ६ संवत् २००२, तारीख २० मई १९४५ को ३ बजे दिन से सम्मेलन कार्यालय में हुई। निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे—

१. सर्वश्री माननीय पुरुषोत्तम दास टंडन; २. रामकुमार वर्मा; ३. राम 'सुमन'; ४. मथुरा प्रसाद सिंह पटना; ५. उदय नारायण तिवारी; ६. श्रीनारायण वेदी; ७. बलभद्र प्रसाद मिश्र; ८. पुरुषोत्तम दास टण्डन; ९. रामेश्वर शुक्ल 'अंच १०. राम प्रसाद त्रिपाठी; ११. सत्यदेव शास्त्री; १२. भदन्त आनन्द कौसल्या १३. श्रीनाथ सिंह;

(प्रबन्ध मंत्री)

१. नियमानुसार माननीय पुरुषोत्तम दास जी टंडन ने सभापति का आ ग्रहण किया।

२. सर्व सम्मति से निम्नलिखित शोक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ—

"यह समिति हिन्दी के सेवक और राजनीति विज्ञान के उद्भट विद्वान बेनी प्रसाद के असामयिक निधन पर शोक तथा उनके कुटुम्बियों के प्रति सहानु और समवेदना प्रकट करती है।"

३. पिछली दो बैठकों की कार्यवाही के विवरण पढ़े गए और स्वीकृत हु

४. रामदीन रीडरशिप समितिके लिए सम्मेलन के प्रतिनिधि का नाम विल भेजा गया था। इस सम्बन्धी में पटना विश्व विद्यालय के सहायक रजिस्ट्रार का २४-४-४५ का आया हुआ पत्र पढ़ा गया।

५. प्रबन्ध मंत्री जी ने बताया कि सन् ३० में यदुनन्दन शर्मा नाम के लेखक कार्यालय में बिक्री का काम करते थे। उन्होंने लगभग ४००) का गबन कि था। उनका मामला पुलिस के सुपुर्द किया गया था वे आज तक भागे हुए पुलिस ने उनकी गिरफ्तारी के लिए उनके घर का कुछ सामान नीलाम किया उनकी वृद्धा माता ने यह प्रार्थना पत्र भेज कर निवेदन किया है कि सम्मेलन मु ७५) लेकर मुझे मुक्त कर दे।

निश्चय हुआ कि किसी वकील को इस विषय की पूरी फाइल दिखा कर जाय कि क्या हम रुपया लेकर अपराधी को मुक्त कर सकते हैं। यदि वकील सलाह हो कि रुपया लेकर अपराधी को हम छोड़ सकते हैं तो छोड़ दिया जाय सन् १९३० में पुलिस द्वारा किए गए नीलाम आदि में जो रुपया जमा हो वह मांगा जाय।

६. लिपि सुधार सम्बन्धी प्रश्न तथा इसी विषय में काशी के श्रीश्रीनिवास की योजना उपस्थित की गई और हरिद्वार अधिवेशन में इस विषय में स्वीकृत मं भी पढ़ा गया।

निश्चय हुआ कि डा० बाबूराम सक्सेना, श्री उदय नारायण तिवारी,

भदन्त आनन्द कौसल्यायन जी की समिति इस विषय पर विचार करे और हमारा क्या कर्तव्य है, इस विषय में अपने विचार स्थायी समिति में उपस्थित करे।

इस समिति के संयोजक श्री उदय नारायण तिवारी रहें।

यह समिति भारत के अन्य विद्वानों के भी मत प्राप्त करे।

७. आकस्मिक छुट्टी को छोड़कर शेष सवेतन छुट्टियों में कर्मचारियों को मंहगाई का भत्ता न देने का प्रश्न उपस्थित किया गया। इसी सिलसिले में बीमारी आदि छुट्टियों के सम्बन्ध में भी बातचीत हुई।

निश्चय हुआ कि अगर कोई कर्मचारी बीमारी की छुट्टी ले और उसकी रियायती छुट्टी शेष है तो बीमारी की छुट्टी रियायती छुट्टी में से दी जाय।

यह भी निश्चय हुआ कि वर्ष में बीमारी के लिए पन्द्रह दिनों की छुट्टी मंहगाई के भत्ते सहित दी जायगी और उससे अधिक छुट्टी लेने पर चाहे जिस प्रकार की छुट्टी हो—मँहगाई का भत्ता नहीं दिया जायगा। प्रश्न उपस्थित हुआ कि कार्यवाहक उप सभापति जी के आदेशानुसार चपरासियों की मँहगाई का भत्ता १) कम कर दिया गया है। निश्चय हुआ कि समिति कार्यवाहक उपसभापति जी की राय से सहमत है।

इसी सिलसिले में परीक्षा मंत्री जी ने प्रश्न उपस्थित किया कि कर्मचारियों को भिन्न-भिन्न भत्ते दिए गए हैं। अर्थात् किसी को ४) और किसी को ५)।

कार्यालय ने बताया कि अस्थायी कर्मचारियों को तीन महीने तक आधी मंहगाई दी जाने की प्रथा रही है। किसी विशेष कर्मचारी को पूरा भत्ता भी दिया गया है।

निश्चय हुआ कि सब कर्मचारियों को तीन महीने तक मंहगाई का आधा भत्ता दिया जाय। उसके बाद पूरी मंहगाई दी जाय

यह निश्चय ज्येष्ठ के वेतन के बारे में लागू होगा।

८. सदस्यता के लिए आए हुए निम्नलिखित लोगों के आवेदन पत्र उपस्थित किए गए—

विशेष सदस्य—२०

साधारण सदस्य—१५५

कवि—१

कार्यालय ने बताया कि फार्मों के अनुसार उपर्युक्त सज्जनों का शुल्क कार्यालय में आ चुका है।

श्री बलभद्र प्रसाद मिश्र ने प्रस्ताव किया कि सब की सदस्यता स्वीकार की जाय।

श्री उदय नारायण तिवारी ने प्रस्ताव का समर्थन किया।

सर्व सम्मति से उपर्युक्त सज्जनों की सदस्यता स्वीकृत हुई।

९. सम्बद्धता के विषय में निम्नलिखित संस्थाओं के आवेदन पत्र उप[स्थित] किए गए—

१. साहित्य मंडल, नाथ द्वारा (मेवाड़); २. मारवाड़ी सार्वजनिक [हि] पुस्तकालय, डालटन गंज (पलामू ; ३. स्वावलम्बी शिक्षण कुटीर; कांकरोली (मेवा[ड़]) ४. सेवा सदन, भीलवाड़ा (मेवाड़); ५. मध्य प्रान्त विदर्भ-हिन्दी साहित्य सम्मे[लन] सागर; ६. हिन्दी विद्यापीठ महा विद्यालय, उदयपुर; ७. हिन्दी साहित्य स[मि]ति मेरठ; ८. हिन्दी छात्र परिषद्, गाजीपुर;

प्रबन्ध मंत्री जी ने बताया कि नियमानुसार सब संस्थाओं के शुल्क, निय[माव]ली तथा विवरण आदि प्राप्त हो चुके हैं। इनका सम्बन्ध स्वीकार किया जाना चाहि[ए]।

श्री उदय नारायण तिवारी ने समर्थन किया।

सर्व सम्मति से उपर्युक्त आठ संस्थाओं में से सात का सम्बन्ध स्वीकार कि[या] गया और गाजीपुर की हिन्दी छात्र परिषद् का आवेदन पत्र अस्वीकार किया गया।

१०. हिन्दुस्तानी एकेडेमी में सम्मेलन से एक प्रतिनिधि डा० बाबू [रा]म सक्सेना के त्यागपत्र देने के कारण खाली हुए स्थान की पूर्ति का प्रश्न उपस्थित कि[या] गया। साथ ही एकेडेमी के सुपरिन्टेन्डेंट का २१-२-४५ का पत्र उपस्थित किया गया।

विचार विनिमय के पश्चात् निश्चय हुआ कि एकेडेमी के सुपरिन्टेंडेंट को लि[ख] दिया जाय कि अभी हमारा कोई इरादा उस खाली जगह को भरने का नहीं है।

११. बाराबंकी के जिला मजिस्ट्रेट की २८-११-४४ की निम्नांकित प्रतिलि[पि] की आज्ञा पढ़ी गई।

"यह सही तरीका है कि अदालत के रेकर्ड अंग्रेजी और किसी एक प्रान्[तीय] भाषा में रखे जांय। अवध में यह बराबर से माना गया है कि उर्दू में रेकर्ड रखे [जांय] और यह प्रथा भविष्य में भी कभी नहीं टूटनी चाहिये। केवल हिन्दी का जानने वा[ला] मजिस्ट्रेट यदि चाहे तो अपनी ही लिपि में दफा १६४ कि० प्रो० को० के अनु[सार] इकबाली बयान दर्ज कर सकता है।

यह जानकर कि बाराबंकी में यह आज्ञा हुई है समिति अपना रोष [और] असन्तोष प्रकट करती है। यह आज्ञा सरकार की १६०१ की आज्ञा के सर्वथा विरु[द्ध] है। इस विषय में प्रान्तीय सरकार के न्याय और कानून विभाग के सलाहकार से लि[खा] पढ़ी की जाय। साथ ही बाराबंकी के जिला मजिस्ट्रेट से इस आज्ञा की प्रतिलि[पि] भेजकर पूछा जाय कि यह बात कहां तक सही है।

१२. साहित्य विभाग की बिक्री का काम एक सोल एजेन्ट से द्वारा सम्पन्न कराने का प्रश्न उपस्थित किया गया।

इसी विषय में कार्यवाहक उपसभापति जी ने अपने पास आया हुआ श्री भवानी प्रसाद गुप्त के पत्र की चर्चा की। विचारोपरान्त निश्चय हुआ कि श्री भवानी प्रसाद गुप्त के पत्र के आधार पर इस वर्ष के अन्त तक के लिए प्रयोग रूप में यह काम उन्हें सौंपा जाय। जो कमीशन सम्मेलन कहे वह उन्हें पुस्तक क्रय करने वालों को देना होगा। ५ प्रति सैकड़ा उन्हें अधिक (ओवर राइडिंग) कमीशन दिया जाय।

सम्मेलन की ओर से पच्चीस प्रतिशत के स्थान पर, अब क्या कमीशन दिया जाय, साहित्य मंत्री जी तथा प्रबन्ध मंत्री जी कार्यवाहक उपसभापति की सलाह से निश्चय करें।

प्राप्ति स्वीकार

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

विश्व संस्कृति का विकाश—ले० श्री कालिदास कपूर एम० ए० एल० टी० प्रकाशक विद्यामंदिर चौक लखनऊ-मूल्य १।)

इस उपयोगी पुस्तक के लेखक श्री कालिदास जी कपूर हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक और अध्ययनशील लेखक हैं। प्रान्तीय शिक्षा विशारदों में आपका उच्च स्थान है। शिक्षा और संस्कृति के सम्बन्ध में नई से नई जानकारी और नये से नये अनुभव के लिए आप सदैव तत्पर रहते हैं और इसी उद्देश्य से आपने सन् १९३५ में जापान की यात्रा भी की थी। इस स्थिति में बहुत अंशों में यह कहना ठीक होगा कि आपकी विचार योजना और बौद्धिक प्रक्रिया में केवल पुस्तकों का ही नहीं भ्रमण और उसके फल स्वरूप मौलिक अनुभव का भी योग है।

मानव जाति के प्रादुर्भाव से लेकर आज तक के विकास की कहानी, कपूर जी इस पुस्तक में बड़े रोचक किन्तु साथ ही साथ वैज्ञानिक ढङ्ग से कह गये हैं। विश्व संस्कृति के विकास के आरम्भिक जिज्ञासु और विद्यार्थी इस छोटी-सी पुस्तक से निस्सन्देह बहुत अधिक लाभ उठा सकेंगे। मंगोल, सेमिटिक आर्य और बाद को निग्रो

जाति ने किस किस युग में क्या क्या पलटा खाया है। सभ्यताके निर्माण में सब अधिक योग मनुष्य की किस जाति से मिली और उस सफलता के कारण थे ? यह सब जिस आकर्षक रूप में कपूर जी ने रख दिया है वह विस्मय, कौ और चिन्तन की परिपाटी पाठक की बुद्धि में पैदा करता है। आरम्भ में सम्पूर्णानन्दजी की भूमिका है। पुस्तक की भाषा स्वाभाविक और बिना प्रयास के अपनी आन्तरिक शक्ति से ही वह बहती चली है।

मनुष्य का विकास—उस विकास की आरम्भ से लेकर आज तक की क मनुष्य के लिए अभी तक बहुत कुछ रहस्य ही है। निश्चित् रूप से कोई भी नहीं कही जा सकती। और न तो इस विषय की किसी भी बात को अन्तिम सत्य रूप में स्वीकार ही किया जा सकता है। कितने ही टूटे धागे अनुमान से मिलाये हैं। सभ्यता उत्तर और पश्चिम से बराबर दक्षिण पूर्व की ओर बढ़ती रही है यूरोपीय विद्वानों का यह मत क्या भारतवर्ष, चीन और जापान को मान्य होगा जि सभ्यता अपनी प्राचीनता, दर्शन सदाचार और नीति शास्त्र में किसी से पीछे कभी रही। कपूर जी ने एच० जी वेल्स और अन्य यूरोपीय विद्वानों की पद्धति को बि किसी भी संकोच के मान लिया है इससे सब को समान सन्तोष नहीं हो सके इतिहास की नई खोजों के बल पर सभ्यता का काल ज्यों ज्यों बढ़ता जा विचारकों के दृष्टि कोण बदलेंगे और तब कदाचित यह संस्कृति की कहानी दूसरी होगी।

अपराध और दण्ड—ले० श्री परमेश्वरीलाल गुप्त और श्री धूमबिहारीला सक्सेना, प्रकाशक—ज्ञान मण्डल लि०, काशी, मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक में विज्ञ लेखकों ने अपराध और दण्ड पर वैज्ञानिक सिद्धान्तों अनुसार विचार किया है। समाज और शासन का काम केवल अपराधी को दण्ड दे ही नहीं उसका सुधार करना भी है। इस दृष्टि कोण से लेखकों का यह प्रयत्न सरा नीय और उपयोगी है। उद्धरण और अधिकारी मत देकर लेखकों ने इस पुस्तक ठोस वैज्ञानिक बना दिया है इस सम्बन्ध में दो रायें नहीं हो सकती। भूमिका ले श्री कन्हैयालाल मानिकलाल मुन्शी के शब्दों में—"इस पुस्तक में पाश्चात्य पौरस्त्य विद्वानों के विचार और अनुभव के साथ साथ जिज्ञासुपाठक के लिए मनन काफी सामग्री प्रस्तुत की गई है।"

पुस्तक में खटकने वाली बात केवल एक है। अपराध और दण्ड के सम्बन्ध विभिन्न सभ्य देशों की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि दे देने से अधिक लाभ हुआ होता

संयोग के यहां वयोवृद्ध और अ समय था और हुआ दे की संख्या तक ज़ि पठनीय

ए० सा

एकांकी मौलिक कथनोपक कथनोपक नहीं रहत वैज्ञानिक कार को वातावरण भविष्य

साहित्य

ग्राम-सम है कि इस उनसे दो के उस प अनुकूल

संयोग से मुझे एक मित्र के साथ एक प्रायः ८० वर्ष की अवस्था के अंग्रेज़ ज़मीन्दार के यहां जाना पड़ा था। बात बात में मेरे मित्र ने जो ऊँचे सरकारी पद पर थे उन वयोवृद्ध अंग्रेज़ साहब से पूछ दिया—"आप जब इस देश में आये थे उस समय में और आज में आपको क्या अन्तर मिल रहा है? उन्होंने छूटते ही उत्तर दिया कि "उस समय यदि एक आदमी कूँये में गिर पड़ता था तो सारा गाँव उसे निकालने दौड़ता था और आज यदि कोई कूंये में गिरता है तो सारा गांव उसे ढेला मार कर उसी में डुबा देना चाहता है।" इसका अर्थ है कि गुलामी के कारण हमारे समाज में अपराधों की संख्या बहुत बढ़ गई है। अपराधों के लिए व्यक्ति की दूषित बनावट जिस अंश तक ज़िम्मेदार है उसी अंश तक दूषित सामाजिक व्यवस्था भी ज़िम्मेदार है। पुस्तक पठनीय है और हिन्दी में एक बड़ी कमी की पूर्ति करती है।

प्रेरणा—पाँच एकांकी नाटकों का संग्रह—ले० श्री प्रेमनारायण टण्डन एम० ए० साहित्य रत्न। प्रकाशक विद्यामन्दिर चौक लखनऊ मूल्य ।॥)

साहित्यिक आलोचनाओं के लिए विद्यार्थी वर्ग में प्रसिद्ध श्री प्रेमनारायण के एकांकी सुरुचिपूर्ण हैं इसमें सन्देह नहीं। दो एकांकी अनूदित हैं और शेष तीन मौलिक। आधुनिक नाटकों में कथनोपकथन की प्रधानता रहती है। प्रस्तुत संग्रह में कथनोपकथन रोचक और उत्तेजक हैं इसमें तो लेखक को सफलता मिली है। किन्तु कथनोपकथन जब तक सम्बन्धित चरित्रों की मनोवैज्ञानिक आधार शिला पर टिके नहीं रहते हलके पड़ते हैं और उनका प्रभाव स्थायी नहीं होता। चरित्र अपने मनोवैज्ञानिक वातावरण के अनुरूप ही सम्भाषण और व्यापार करता है इस लिए नाटककार को हर शब्द और व्यापार के लिए उसके अनुरूप पात्र विशेष का मनोवैज्ञानिक वातावरण बनाना पड़ता है। श्री प्रेमनारायण यदि इस तथ्य का अनुसरण करेंगे तो भविष्य में उनसे अधिक अच्छे नाटकों की सम्भावना की जा सकती है।

प्रेमचन्द और ग्राम समस्या—ले० श्री प्रेमनारायण टण्डन एम० ए० साहित्य रत्न। प्रकाशक रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा मूल्य ॥=)

स्वर्गीय प्रेमचन्द जी ने पहले पहल कथा साहित्य का आधार ग्रामीण-जीवन और ग्राम-समस्याओं को बनाया था। यह बात भी बिना किसी हिचक के कही जा सकती है कि इस समय भी हिन्दी में कोई ऐसा उपन्यासकार नहीं है जो इस विषय में उनसे दो कदम भी आगे बढ़ा हो। प्रस्तुत आलोचना पुस्तक में लेखक ने स्वर्गीय प्रेमचन्द के उस पहलू पर भरपूर प्रकाश डाला है और विद्यार्थियों की शक्ति और रुचि के अनुकूल एक अच्छी वस्तु निर्माण कर दी है। स्वर्गीय प्रेमचन्द ने समस्याओं और उनके

समाधान का जो रूप अपने उपन्यासों और कहानियों में दिया वह सब कहीं नहीं है। टण्डन जी यदि कुछ अपना मौलिक मत इस निराकरण में दे सके होते विद्यार्थियों को स्वतंत्र चिन्तन की प्रेरणा भी मिलती।

जातक

[प्रथम तथा द्वितीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं; मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुक़ाबला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५४०—४२; डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६०—२४ डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अभूतपूर्व प्रकाशन

प्रेमघन-सर्वस्व

(प्रथम भाग)

'दो शब्द'-लेखक, माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन

परिचय-लेखक, स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल

आधुनिक हिन्दी के एक निर्माता, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, स्वर्गीय उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का विशाल संग्रह-ग्रंथ। हिन्दी में प्रथम और अपूर्व काव्य। लेखक के चित्रों से सुसज्जित और सजिल्द।

मूल्य ३।)

साहित्य मंत्री—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ साहित्यमाला

१ भारत-गीत ≡)
२ राष्ट्रभाषा ||)
३ शिवाबावनी ≡)
४ पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १।)
५ सूरदास की विनयपत्रिका ≡)
६ नवीन पद्यसंग्रह १।)
७ बिहारी-संग्रह ≡)
८ सती कपणकी ||)
९ हिन्दी पर फारसी का प्रभाव ||=)
१० ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार १।)

(२) साधारण पुस्तकमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था ३)

(३) वैज्ञानिक पुस्तकमाला

१ सरल शरीर-विज्ञान ||), |||)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल-साहित्य माला

१ बाल नाटक-माला |)
२ बाल-कथा भाग २ |=)
३ बाल विभूति ≡)
४ वीर पुत्रियाँ |=)

(५) नवीन पुस्तकें

१ सरल नागरिक शास्त्र १
२ कृषि प्रवेषिका १
३ विकास (नाटक) ||=
४ हिंदू-राज्य शास्त्र ३
५ कौटिल्य की शासन-पद्धति १|=
६ गावों की समस्यायें १
७ मीराँबाई की पदावली २
८ भट्ट निबंधावली १
९ बंगला-साहित्य की कथा १
१० शिशुपाल वध १
११ ऐतिहासिक कथायें ||
१२ दमयन्ती स्वयंबर

नवीन पुस्तकें

१—मैथिली लोकगीत—रामइकबालसिंह 'राकेश', भूमिका लेखक—पण्डित अमरनाथ झा
२—गोरखबानी—स्व० डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल १
३—दीवाली और होली—(कहानी संग्रह) श्री इलाचन्द्र जोशी
४—महावंश—भदन्त आनन्द कौसल्यायन
५—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ३
६—स्त्री का हृदय—(एकांकी नाटक) श्री उदयशंकर भट्ट १
७—राजस्थानी लोकगीत—स्व० सूर्यकरण पारीक
८—सामान्य भाषाविज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना
९—काव्यप्रकाश—मम्मटाचार्य, अनुवादक स्व० हरिमंगल मिश्र १
१०—समाचार-पत्र शब्दकोष—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०

प्रकाशक—श्रीरमाप्रसाद घिल्डियाल, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।
मुद्रक : श्री[illegible] श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की मुख-पत्रिका

श्रावण-भाद्रपद २००२

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग

सम्पादक—श्री रामनाथ 'सुमन'

विषय-सूची

सामान्य भाषा विज्ञान

लेखक—श्री बाबूराम सक्सेना

भाषा-विज्ञान संबंधी यह पुस्तक सामान्य श्रेणी के पाठक और भाषा-विज्ञान के प्रारंभिक विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। पर यह होने पर भी उक्त विषय का कोई भी महत्वपूर्ण तथ्य छूटने नहीं पाया है, और विशेषज्ञ भी इस पुस्तक से काफी लाभ उठा सकेंगे—ऐसी हमारी धारणा है। ऐसे जटिल और नीरस (तथापि अवश्य जानने योग्य) विषय को लेखक ने ऐसा सुगम, सुबोध—बल्कि रोचक बना दिया है कि आश्चर्य होता है। लेखक अपने विषय के विशेषज्ञ हैं। हमें पूरा विश्वास है कि हिन्दी में यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है। पुस्तक के तीन परिशिष्ट में क्रम से लिपि का इतिहास, ग्रन्थसूची तथा समाधान, और पारिभाषिक शब्द-सूची सम्मिलित हैं। मूल्य ४)

साहित्य मंत्री—हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

भाग ३२, संख्या ११ : श्रावण, भाद्रपद २००२

सम्मेलन-पत्रिका

ग़ुसुलखाना

(श्री चन्द्रबली पाण्डे)

विमल-मति इतिहास-लेखक सर यदुनाथ सरकार ने मिश्र बन्धुओं की कृपा से 'भूषण' को जिस रूप में उड़ाया है वह हिन्दी साहित्य के लिये लज्जा की बात है। कितने आश्चर्य की बात है कि अभी तक समस्त हिन्दी संसार ने मिलकर भूषण का एक भी ऐसा संस्करण नहीं निकला जो कुछ इतिहास के काम का भी होता और इतिहास के ग्रन्थों में कहीं 'भूषण' भी प्रमाण के रूप में आते। और तो और अभी तक उनके एक शब्द का अर्थ हिन्दी संसार से न लगा और लोग मनमानी उसकी व्याख्या करते रहे। इस शब्द की शोध में सबसे अधिक सर मारा है श्री वेदव्रत शास्त्री ने। आप स्वयं लिखते हैं—

'गुसलख़ाना' पीछे भी कई जगह आ चुका है, इस पर अधिक विचार करने, ऐतिहासिक पुस्तकों की छानबीन करने और कई इतिहास के विशेषज्ञ विद्वानों से इसके विषय में बातचीत करने पर हम इस निश्चय तक पहुँचे हैं कि 'गुसलख़ाना' कोई स्नानागार नहीं था। बल्कि जिस प्रकार आजकल पश्चिमी सभ्यता के अनुसार बैठने उठने और अभ्यागतों को बैठाने के लिये लायब्रेरी या डाइङ्ग रूम होते हैं उसी प्रकार इस समय बादशाहों के यहाँ गुसलख़ाना ऐसे ही किसी स्थान को कहते थे जहाँ उनके ख़ास-ख़ास मुसाहिब आकर बैठते थे। किसी खास बात पर जहाँ बैठकर विचार होता था। दिल्ली और आगरे के किलों को देखने से यह बात आज भी समझ में आ जाती है। दरबार ख़ास और गुसलखाना बिलकुल पास पास बने हैं। बीच में एक जालीदार दीवार है जिस पर न्याय तुला बनी है और उसके अगल-बगल दो कमरे हैं और दरबार ख़ास के दूसरी तरफ़ नहाने की जगह है।" (शिवराज भूषण, छन्द ४०५ की टिप्पणी हि० सा० सम्मेलन प्रयाग, (सन् १९२९ ई०)

'गुसलखाना' का अर्थ ठीक ठीक न लगने के कारण किस प्रकार इसे 'गोसलखान' बनना पड़ा यह भी एक रोचक कथा है! यहाँ तक कि गोविन्द गिल्ला भाई की पुस्तक में इसका पाठ भी निकल आया। कहते हैं—

"कैकय हज़ार किये गुर्जबरदार ठाड़े करिके हुस्यार नीति शिखई समाज की।
राजा जसवंत को बुलाय के निकट राखे जिनको सदाय सी लाज स्वामी काजकी।
'भूषन' भनत ठाढ़ो पीठ है गुसलखान सिंह सों झपट मनमानी महराज की।
हठ तें हथ्थार फेंट बाँधी उमराव राखे लीनी तब नौरंग ने भेंट शिवराज की॥"

किन्तु इसका शुद्ध पाठ दिया गया है—

"कैयक हजार जहाँ गुर्ज बरदार ठाढ़े,
करि के हुस्यार नीति पकरि समाज की।
राजा जसवंत को बुलाय के निकट राख्यो,
तेऊ लखैं नीरे जिन्हें लाज स्वामि काज की॥
भूषन तबहुँ ठठकत ही गुसुलखाने,
सिंह लौं झपट गुनि शाह महाराज की।
हटकि हथ्यार फट बाँधि उमरावन की,
कीन्हीं तब नौरंग ने भेंट सिवराज की॥" (शिवाबावनी ११)

'गोसलखान' नाम का कोई औरंगजेब का अंगरक्षक था यह कहने को अच्छा पर मानने को बीहड़ है। इसे यहीं छोड़ देखिए यह कि 'भूषण' इस शुभ मिलन के सम्बन्ध में कहीं कुछ और भी कहते हैं या नहीं। किन्तु ऐसा करने के पहले यहाँ टाँक रखिए कि भूषण ने 'राजा जसवन्त' का नाम यहां जान बूझ कर कुछ दिखाने के लिये ही दिया है। सच पूछिए तो औरंगजेब अपने जिन हाथों से विजयी रहा और डटकर अपना सिक्का जमा लिया उन्हीं का नाम जसवंत और जयसिंह है। जयसिंह औरंगज़ेब का दाहिना हाथ है तो जसवन्तसिंह बायाँ, संभव है आप कहना चाहते हों कि इन्होंने तो दारा का पक्ष लिया था फिर इन्हें औरंगजेब का अंग क्यों समझते हो। निवेदन है—कहते तो ठीक पर समझते मिथ्या हो। इन्हीं के कारण तो 'दारा' का पतन हुआ। बस 'दारा' की होकर कोई लड़ा तो 'हाड़ा' जिसके विषय में कितना सटीक कहा गया है—

"दारा और औरंग जुरे हैं दोऊ दिल्लीवाल,
एकै गए भाजि एकै गए रुँधि चाल में।
कोऊ दगाबाजि करि बाजी राखी निज कर,
कौनहू प्रकार प्रान बचत न काल में॥
हाथी ते उतरि हाडा जूझ्यो लोह लंगर दै,
एती लाज कामै जेती लाल छत्रसाल में।

तन तरवारिन मैं मन परमेसुर मैं,
प्रान स्वामी कारज मैं माथो हर-माल मैं ॥"

इस सूत्र का भाष्य यदि हो जाता तो इतिहास आँख खोलकर प्रकट देख लेता कि हिन्दी कवि किस प्रकार गागर में सागर भरते और पद को ग्रन्थ बना देते हैं। तो भी यह देख कर प्रसन्नता होती है कि इतिहास ने इसे पहचाना है और डाक्टर कानूनगो ने अपने 'दाराशिकोह' में इसका उल्लेख भी किया है। परन्तु रोना तो यहाँ यह है कि भूषण की कहीं कोई परख नहीं! पर इतिहास बोलता है—सच कहते हो। औरंगजेब ने जसवन्त सिंह को शिवाजी के निकट ही अर्थात् यों कहो कि अपने तथा शिवा जी के बीच में खड़ा किया था। सर यदुनाथ सरकार लिखते और मानते हैं कि वस्तुतः यह महाराज जसवन्त सिंह ही थे जिनके पीछे शिवाजी खड़ा किया गया था कुछ रायसिंह सिसोदिया नहीं जैसा कि स्वयं उन्होंने 'औरंगजेब' में माना था। अपने 'शिवाजी' नामक ग्रन्थ में आप लिखते हैं—

"Then he (Shiwaji) asked, who the noble standing in front of him was, Ram Singh replied that it was Maharaj Jaswant Singh. At this Shiva cried out, "Jaswant, whose back my soldiers have seen? I to stand behind him! What does it mean?" (Shivaji And His Times, 1929, P. 144)

रामसिंह से यह जान कर कि शिव भगोड़े जसवंत सिंह के पीछे खड़ा किया गया है उसका आग-बबूला हो जाना स्वाभाविक था। 'सम्भावित' भला यह कब सह सकता था। 'भूषण' कहते हैं—

"जसन के रोज यों जलूस गहि बैठो, जोऽब
इन्द्र आवै सोऊ लागै औरंग को परजा।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवाजी गाजी,
तिनको तुजुक देखि नेकहू न लरजा॥
ठान्यो न सलाम भान्यो साहि को इलाम,
धूम-धाम के न मान्यो रामसिंहहू को बरजा।
जासों बैर करि भूप बचै न दिगंत ताके,
दंत तोरि तखत तरे ते आयो सरजा॥"

(शिवराज भूषण, १६३)

समझ में नहीं आता कि हमारे टीकाकारों ने भूषण का अध्ययन किस दृष्टि से किया है कि इस 'जसन के रोज' और 'तखत तरे' के होते हुए भी उन्होंने औरंगजेब को किसी 'नहान घर' में क्यों बैठा दिया है। क्या 'गुसलखाना' के कारण ही?

अवश्य, सस्ता सौदा जो ठहरा। किन्तु भूषण किस कैंड़े का व्यक्ति था और उसकी प्रतिभा कितनी प्रखर थी इसे कुछ इस छन्द में देखो—

"जोर रुसिमान को है, तेग खुरासनहू की,
नीति इंगलैंड, चीन हुन्नर महादरी।
हिम्मत अमान मरदान हिन्दूवान हू की,
रूम अभिमान, हबसान हद कादरी॥
नेकी अरबान, सान-अदब ईरान त्यों ही,
क्रोध है तुरान, ज्यों फरांस फंद आदरी।
भूषन भनत इमि देखिए महीतल पै,
बीर-सिरताज सिवराज की बहादरी॥"

(फुटकर, १२)

विविध जातियों की भाँति भाँति की जो विशेषता आपको इस एक ही छन्द में हाथ लगी वह तो इतिहास की आँख ठहरी। उसकी भाषा लेखनी नहीं समझ सकती। तो भी इतना तो कहना ही है कि यहाँ प्रसंग है 'क्रोध है तुरान' का। तूरानी औरंगजेब साँप का बच्चा नहीं अपनी बाप की दृष्टि में 'सफेद सांप' था। सांप बारह बरस में बैर लेता है, इसे कौन नहीं जानता? पर दहाड़ कर नहीं, लिपट कर, झपट कर नहीं, उलट कर। निदान औरंगजेब ने किया भी यही। इतनी 'शान और अदब' तो 'जसन-जलूस' में रचा गया और तूरानी 'क्रोध'? वही तो बस औरंगजेब की आँख का कांटा रह गया। वह सोचता है—

"पंच हजारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कछु भेद न पाया।
भूषन यों कहि औरंगजेब ऊजीरन सों बेहिसाब रिसाया॥
कम्मर की न कटारी दई इसलाम ने गोसलखाना बचाया।
जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया॥"

(सिवराज भूषण, २१०)

'इसलाम ने गोसलखाना बचाया' में 'गोसलखाना' फिर आ गया तो आने दीजिए। अभी उसे भी 'पिनाक' बन लेने दीजिए। वह तो 'छूते' ही टूट जायेगा। उसकी चिन्ता क्या? चिन्ता तो हमें इस औरंगजेब की है जिसे शिवाजी पहेली हो रहा है। उसकी समझ में कुछ आता ही नहीं कि आखिर हो क्या गया? 'पहाड़ी चूहा' और चाहता क्या था? क्या पांच हजार का मनसब उसके लिये कम था? और यदि क़सूर था तो वजीरों से इस प्रकार क्रोध करने का कारण क्या था। अच्छा ही हुआ जो रामसिंह ने उसे अपनी कटार न दी और यदि कहीं उसके हाथ में हथियार आ

जाता तो ख़ुदा जाने क्या कहर ढाता। अरे! मैं तो चूक ही गया था! यह तो अल्लाह की कृपा हुई जो मेरी गद्दी रह गई। नहीं तो न जाने क्या कुछ हो जाता! तात्पर्य यह कि चतुर औरंगजेब की सारी चातुरी शिवा जी के सामने मारी गई और वह जहाँ का तहाँ मूँड मारे रह गया। इसलाम ने उसकी रक्षा की 'गुसलखाना' ने नहीं, 'इसलाम ने गोसलखाना बचाया' 'गोसलखाना' ने नहीं।

'गोसलखाना' का अर्थ? अभी अभी खुलता है। अधीर न हों। देखें कि 'भान्यो साहि को इलाम' का अर्थ खुला या नहीं। जिन लोगों ने 'इलाम' को 'एलान' का रूप समझ लिया है उनसे हमारा नम्र निवेदन है कि कृपया इतना कष्ट न करें। इस 'इलाम' ही का रूप रहने दें। भूषण इसके द्वारा यही स्पष्ट करना चाहते हैं कि उसकी सारी जानकारी जाती रही और उस समय कोई विद्या काम में न आ सकी। वह तो ठक सा रह गया। उसका सारा ठाट-बाट निष्फल गया। उसके प्रताप के सामने 'इन्द्र' 'प्रजा' बन सकते थे परन्तु तभी शिवा जी नहीं, भूषण कहते हैं—

"साहितनै सरजा सिव के गुन नेकहु भाषि सक्यो न प्रबीनो।
उद्यत होत कछू करिबे को, करैं कछू वीर महा रस भीनो॥
ह्याँ ते गयो चकतै सुख देन को गोसलखाने गयो दुख दीनो।
जाय दिली दरगाह सुसाहि को भूपन बैरि बनाय ही लीनो॥" २०४॥

'जाय दिली दरगाह सुसाहि' से भूषण का तात्पर्य उसी औरंगजेब से है न जिसके विषय में इतना कुछ सुन चुके हैं? हाँ, 'दिली दरगाह' का अर्थ 'औलिया आलमगीर' ही है, कुछ और नहीं। भूषण भली भाँति जानते हैं कि 'जसन' आगरे में हुआ था, कुछ दिल्ली में नहीं, लिखते हैं—

"आवत गुसलखाने ऐसे कछू त्यौर ठाने,
जाने अवरंग जू के प्रानन को लेवा है,
रस खोट भए ते अगोट आगरे मैं सातौं,
चौकी डाँकि आन घर कीन्ही हद रेवा है।
भूषन भनत वह चहूँ चक्क चाहि कियो,
पातसाही चकता को छाती माँहि छेवा है।
जान्यो न परत ऐसे काम है करत कोऊ,
गंधरब देव है कि सिद्ध है कि सेवा है॥ ७६॥"

'आवत गुसलखाने ऐसे कछू त्यौर ठाने' को ध्यान में रखते हुए विचार करें कि भूषण इस छंद में क्या बताते हैं और किस अर्थ में 'दरबार' का प्रयोग करते हैं। कहते हैं—

"आए दरबार बिललाने छरीदार देखि,
जापता करनहारे नेक हू न मनके।
भूषन भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े,
बाजे भए, उमराय तुजुक करन के॥
साहि रह्यो जकि, सिव साहि रह्यो तकि,
और चाहि रह्यो चकि, बने ब्योंत अनबन के,
ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि,
तारे सम तारे गए मूँदि तुरकन के॥ ३८॥"

तो क्या 'गुसलखाना' का अर्थ 'दरबार' है? जी हाँ, इतना और सुनिए—

"मिलतहि कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हों,
सरजा, सुरेस ज्यों दुचित ब्रजराज को,
भूषण, कुमिस गैर मिसिल खरे किए को;
किए म्लेच्छ मुरछित करि कै गराज को॥
अरे ते गुसलखाने बीच ऐसे उमराय,
लै चले मनाय महाराज सिवराज को।
दावदार निरखि रिसानो दीह दलराय,
जैसे गड़दार अड़दार गजराज को॥ ३४॥"

स्थिति को स्पष्ट करने के लिए इतना और जान लें कि यही भूषण अन्
कहते हैं—

"सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छहजारिन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे॥
'भूषन' भनत महावीर कलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे,
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे॥ १५॥"

(शिवाबावनी)

'छहजारिन के नियरे' के विषय में इतना जान लें कि महाराजा यशवंत सिं
इसी मनसब के थे, और औरंगजेब ने कुछ समझ कर ही शिवाजी को उनके पीछे
पंचहजारी में प्रमुख स्थान दिया था। यहाँ विचारणीय बात यह है कि शिवाजी

बारे में जो भूषण ने लिख दिया है कि 'कीन्हीं न सलाम' वह क्या सर्वथा असत्य है। माना कि शिवाजी ने विनय के अनुसार सम्राट को तीन बार झुक कर सलाम किया और इसी सलामी में उसके रंगढंग को भी ताड़ लिया। पर इसी से यह भी कैसे मान लें कि फिर कभी किसी और को सलाम करने की बारी ही नहीं। क्या रामसिंह ने फिर शिवाजी से राजकुमार शुजा को पास से निकलते हुए देखकर सलाम करने को नहीं कहा था और शिवाजी ने क्रोध के साथ उसकी अवहेलना न की थी? किन्तु यह तो इतिहास की बात ठहरी और यहाँ तो विचार करना है 'गुसुलखाना' मात्र पर। सो भूषण कहते हैं—'अरे ते गुसुलखाने बीच'। स्मरण रहे, उन्होंने अन्यत्र भी 'आवत गुसुलखाने ऐसे कछु त्यौर ठाने' का उल्लेख किया है। अब इस 'गुसुलखाने' का अर्थ क्या लगाया जाय?

भरे दरबार में वस्तुतः शिवाजी ने क्या कुछ किया, इसका ठीक ठीक किसी को पता नहीं, औरंगजेब के व्यवहार को देखकर वह आपे से बाहर हो गया इसमें सन्देह नहीं। सभी इतिहास लेखक इसको मुख खोल कर कहते हैं। पर सच पूछिए तो उस समय उसकी बलकन से चारों ओर हड़बड़ी मच गई, इसमें सन्देह नहीं। अरे! यह क्या हो गया यही सब के मुँह में था—ऐसा प्रतीत होता है। भूषण ने इस अवसर पर जो कुछ कहा हुआ सब, पर कहाँ और किस अवसर पर इसका ठीक ठीक पता नहीं, इतिहास भी इसमें एक मत नहीं। सभी अपनी अपनी हाँकते हैं। फिर भी कोई यह नहीं कहता कि बादशाह सलामत मूर्छित हो गए थे। हाँ, कुछ लोग अवश्य मानते हैं कि स्वयं शिवाजी ने यह स्वांग रचा था और इसी के बहाने से अपने स्थान की दीनता से दूर निकल गया था। अपने स्थान से निचुक कर कहाँ जा रहा था इसका ठीक निर्देश नहीं पर था कहीं वहीं इतना निश्चित है। सचमुच मायाधनी शिवाजी की माया को कब किसने और कहाँ समझा; उस दरबार में भला कौन ऐसा था जिसकी दृष्टि इस मायावी पर नहीं पड़ी थी। अफजल खाँ के मन्तव्य और शाइस्ता खाँ के घातक को भला कोई भूल सकता था? सभी अपनी अपनी चिन्ता में थे। फलतः सहसा जो कुछ घटा सारे दरबार में छा गया और सब के मुँह पर कोई न कोई भाव दौड़ गया। बेचारा रामसिंह पहले से ही इसी चिन्ता में लगा रहा और शिवाजी को समझा-बुझाकर किसी प्रकार स्थिति को काबू में लाने में लगा था। पर आदि की बिगड़ी किसी से कब बनी! औरंगजेब शिवाजी का तो कुछ न कर सका पर रामसिंह उसकी निगाह पर चढ़ गए और बहुत कुछ अपना अधिकार भी खो दिया। भूषण होते तो इस समय 'गुसुलखाना' का भाव क्या बताते यह हम नहीं कह सकते परन्तु इतना जानते अवश्य हैं कि उनका 'गुसुलखाना' 'खिलवतखाना' का पर्याय नहीं, कारण उनका स्वयं कहना है—

"तुरमती तहखाने तीतर गुसलखाने,
सूकर खिलहखाने कूकत करीस हैं।
हिरन हरमखाने स्याही हैं सुतुरखाने,
पाढ़े पीलखाने औ करंजखाने कीस है।
भूषन सिवाजी गाजी खग्ग सों खपाए खल,
खाने खाने खलन के खेरे भए खीस हैं,
खड़गी खजाने खरगोस खिलवतखाने,
खीसैं खोले खसखाने खाँसत खबीस हैं" ॥३६३॥

'तीतर गुसलखाने' और 'खरगोस खिलवतखाने' को देखकर कोई भी व्यक्ति कह सकता है कि दोनों एक नहीं। परन्तु उधर दोनों को पर्याय भी कहा गया; साथ ही कोढ़ में की खाज यह है कि इन्हीं के साथ 'दौलतखाना' नाम भी चलता; मानो 'गुसुल', 'खिलवत' और 'दौलत' एक ही वर्ग के जीव हैं। 'दौलत' के बारे कुछ कहना नहीं, 'खिलवत' से भी यहाँ क्या लेना है? किन्तु 'गुसुल, को कोई कैसे भूल सकता है? उसी को लेकर तो इतना विवाद जगा है। सो कहा जाता है कि अकबर का स्वभाव था कि वह हरम और दीवानखाना के बीच जो स्थान था वहाँ नहाया करता था और नहाने के बाद ही कुछ विश्वासपात्रों को वहीं बुला भी लेता था धीरे धीरे यह नौबत आई की राजकाज भी वहीं होने लगा। परिणाम यह हुआ कि इसका नाम 'गुसुलखाना' हो गया। शाहजहाँ ने इनको 'दौलतखाना-ये-खास' का नाम दिया। अर्थ यह हुआ कि 'गुसुलखाना' वस्तुतः 'स्नानागार' नहीं 'मन्त्रणा-गृह' है। किन्तु हम देख चुके हैं कि यह घटना 'जसन के रोज' की है 'तखत' की है। तो क्या भूषण 'दौलतखाना आम' को ही तो 'गुसुलखाना' नहीं कहते? निवेदन है यही बात है। यहाँ कोई विश्वासपात्रों के साथ किसी बात पर विचार नहीं था। हाँ, यहाँ तो औरंगजेब की वर्षगाँठ का जमाव था और उछाह था और 'तुलापुरुषदान' का। किन्तु परमात्मा का प्रबन्ध तो देखिए। कैसा रंग में भंग हुआ और बाजी शिवाजी के हाथ रही। निदान मानना पड़ता है कि भूषण ने 'गुसुल-खाना' का प्रयोग 'दरबार आम' के लिये ही किया है और किया है 'अभिषेकगृह' के पर्याय के रूप में ही कुछ 'स्नानागार' के रूप में नहीं। अजब नहीं कि स्वयं अकबर की कृपा से इस 'अभिषेक' ने ही 'गुसुल' का रूप धारण कर लिया हो और फिर 'स्नानं' के रूप में हमारे सामने आया हो। जो हो, भूषण का पक्ष स्पष्ट है। उनके यहाँ 'गुसुलखाना' का अर्थ है 'दरबार आम' वा सभामंडप वा 'सभागृह' है 'मंत्रणा' किंवा 'मंत्रगृह' नहीं। आशा है इतने से भूषण पर अज्ञान की जो काई लग गई है वह फट जायगी; जो रह जायगी वह फिर 'भूषण' में दूर होगी।

साहित्य लहरी की रचना

(ले० महावीरसिंह गहलोत एम० ए०, रिसर्च स्कॉलर, हिंदू विश्वविद्यालय, काशी)

सूर पर लिखने वाले सभी विद्वानों ने "साहित्य लहरी" को दृष्टि कूट पदों का संग्रह मात्र कह कर अपने कर्त्तव्य की इति श्री की है। विशेष अध्ययन करने पर अवश्य ज्ञात होगा कि "साहित्य लहरी" रस, अलंकार और नायिका भेद का ज्ञान कराने के लिए लिखी हुई एक शुद्ध रीति-रचना है। इसकी रचना का हेतु तो यही है, पर रचना किस के लिए बनी? इसी पर हमें विचार करना है। "साहित्य लहरी" के १०९ वें पद पर यदा कदा सभी विद्वानों का ध्यान गया है किन्तु केवल रचना काल के लिए; रचना हेतु के लिए नहीं।

मुनि सुनि रसन के रस लेख।
दसन गोरी नन्द को लिखि सुबल संवत पेख॥
नन्दनन्दन मास छैते हीन तृतिया बार।
नन्दनन्दन जनम ते है बान सुख आगार॥
तृतीय रीछ सुकर्म योग विचार सूर नवीन।
नन्दनन्दन दास हित साहित्य लहरी कीन॥ १०९॥

इस पद की अंतिम पंक्ति का अर्थ न तो सरदार कवि ने अपनी टीका में दिया है और न भारतेन्दु ने अपने तिलक में। वार्ता साहित्य के मर्मज्ञ श्री द्वारकादास परिख (कांकरोली) इस पंक्ति का अर्थ कुछ विचित्र ही करते हैं।[1] आप "साहित्य लहरी" की रचना को नंददास के लिए हुई बताते हैं। "नन्दनन्दन दास" का अर्थ, यहाँ पर नंददास लगाया गया है, जो कि सर्वथा त्रुटि पूर्ण है। "नन्दनन्दन" का अर्थ तो "कृष्ण" होता है, तब "नन्द" किस प्रकार हुआ? प्रमाण खोजने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। इसी १०९ वें पद में "नंदनंदन" शब्द दो बार और आया है जिसका अर्थ "कृष्ण" ही होता है। स्वयं "साहित्य लहरी" में "नंदनंदन" शब्द कई स्थानों पर आया है; जैसे ४९, ६३, ७६, ७८, ८६, ११६, ११७ आदि पदों में। इन सभी स्थानों पर निर्विवाद रूप से उनका अर्थ "कृष्ण" ही हो सकता है। इसलिए "नंदनंदन दास" का अर्थ नंददास न लगाकर "कृष्ण दास" लगावै तो उत्तम होगा। कृष्णदास कौन थे? और उनके लिए "साहित्य लहरी" क्यों बनी? इस पर

[1] प्राचीन वार्ता-रहस्य, भाग २ पृ० १०७ (गुजराती विभाग)

आगे विचार करेंगे।

हाँ, तो "साहित्य लहरी" नंददास के लिए बनी, यह इस पद से सिद्ध होता है। इतने पर भी पता नहीं, किस आधार पर श्री परिख की खोज है कि नंद "अेक प्रकारे तेओ काव्य क्षेत्र मां श्री सूर ना शिष्यवत थया। सूरदास जी तेमने माटे छ मास मां समग्र "साहित्य लहरी" नी रचना करी। अने तेनी सम्वत १६०७ वैशाख सुद ३ ना दिवसे........करी।"[1]

नंददास के जीवन संबंधी तिथियों को निश्चित करने में श्री परिख ने सामग्री का सहारा लिया है। आपने हर्ष प्रकट करते हुए लिखा है; "भक्तेच्छ आचार्य श्री ना अनुग्रह बले अमारा परम मित्र माननीय सोरों निवासी पं० वल्लभ शास्त्री काव्यतीर्थ नो तद्विषयक प्रयास सफल थयो। अने परिणामे तटस्थ विद्वानों पण तेमां सहमत थया। आ रीते वागीश प्रभुनी प्रेरणा थी २२२ ऊपर विरोध पक्षे करेला सबल अने तीव्र प्रहार नो निर्मूल नाश थयो।"[2] अत्यधिक परिश्रम से प्राप्त अकाट्य प्रमाणों को भी हम त्रुटिपूर्ण पाते हैं। सोरों पर विचार न करके हम श्री परिख द्वारा जो नंददास के जीवन की तिथियाँ निर्धारित हुई हैं; उनको ही कसौटी पर कसना चाहते हैं।

श्री परिख नंददास का जन्म सम्वत १५९०, अष्टछाप में गणना सम्वत १६ शरणागति काल सम्वत १६०६, सूर का शिष्य तत्व सम्वत १६०७ और पुनः शरणागति काल सम्वत १६२४ में मानते हैं।[3] इन तिथियों के निर्धारण में असत्य हुई है। कवि का १२ वर्ष की आयु में अष्ट छाप में स्थान पाना हास्यप्रद मालूम पड़ता है। (हाँ, अष्टछाप गणना के काल्पनिक चित्र में नंददास को १२ वर्ष दिखाने की भूल श्री विद्या विभाग, काँकरोली ने नहीं की है।)[4] डॉ० दीनदयालु गुप्त कवि का जन्म सम्वत १५९४ (अनुमान सिद्ध) मानते हैं। इस दशा में नंद का ८ वर्ष की आयु में अष्टछाप में गिना जाना केवल हास्यप्रद जान पड़ेगा। परिख, कवि का शरणकाल सम्वत १६०६ और डॉ० दीनदयालु गुप्त सम्वत १६ मानते हैं। इस दशा में कवि का सम्वत १६२० में अष्टछाप में गिना जाना

[1] वही, पृ० १०७

[2] वही, पृ० ९९

[3] नंददास जी नो भौतिक इतिहास (वार्ता रहस्य भाग २, पृ० गुजराती विभाग)

[4] वार्ता रहस्य भाग २ वक्तव्य पृ० १५ और चित्र पृ० २४७ पर है।

म्भव है। तथा क्या कवि को बिना देखे ही श्री गुसाईं-चरण ने उसको आंगाऊ (Advance) में ही अष्टछाप में थाप दिया।

मजे की बात यह भी है कि श्री परिख सोरों सामग्री के आधार पर नंददास को आरम्भ से ही पंडित नरहरि के पास पढ़ा मानते हैं;—"रामनंदी पंडित श्री नरहरि ने त्यां विद्याभ्यास करी संस्कृत ना प्रखर ज्ञाता थया।" सोरों सामग्री का "रत्नावली चरित" नामक ग्रंथ भी नंददास की शिक्षा के संबंध में यही मत प्रकट करता है;—"पढ़त करत विद्या विलास।" अब प्रश्न उठता है कि "संस्कृत के प्रखर ज्ञाता" और "विद्या विलासी" के लिए क्या "साहित्य लहरी" की रचना उपयोगी हो सकती है? कदापि नहीं। "साहित्य लहरी" एक शुद्ध रीति रचना है यह श्री परिख अपनी साम्प्रदायिक होड़ में इसकी रचना का उद्देश्य कुछ और भी सिद्ध करना चाहते हैं;—"श्रे कूट पदों द्वारा तेमना हृदय मां श्रृंगार परिपूर्ण कृष्ण ने स्थायी मर्यादा राम भक्ति ने दूर करो आ काव्यों श्रे नंददास जी ना हृदय ने कृष्णा सक्त कयु।[1] सम्पूर्ण "साहित्य लहरी" पढ़ जाने पर भी उपयुक्त उद्देश्य का समर्थन कहीं भी नहीं होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नंददास का सूर का शिष्य बनना सम्भव नहीं है। कई प्रमाणों में से एक और प्रमाण भी देना चाहेंगे; वह यह कि "सम्प्रदाय कल्पद्रुम", श्री गिरधरलाल जी (गोविंद राम जी ?) के जन्मोत्सव पर संवत १५९९ में नंददास को अष्ट सखा में लिया बताता है। इसका तो अर्थ यह हुआ कि संवत १५९९ तक नंददास सम्प्रदाय के सिद्धान्तों और भक्ति के स्वरूप को पूर्ण रीति से समझ गये थे। फलस्वरूप उनको श्री नाथ जी की अंतरंग लीला में सेवा करने का सौभाग्य मिला। "सम्प्रदाय कल्पद्रुम" को तो श्री परिख एक प्रमाणिक रचना मानने में कटिबद्ध हैं। तब उनकी निर्धारित शरण तिथि संवत १६०६ और शरण में आते ही सूर का संवत १६०७ में दिव्य बनना क्या मूल्य रखता है? यह वे ही जाने।

उपयुक्त चर्चा से यह अवश्य सिद्ध हो जाता है कि "साहित्य लहरी" की रचना नंददास के लिए नहीं वरन् एक कृष्णदास के लिए हुई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार शोध के नाम पर "अराजकता" फैल रही है। खैर! अभी तो नंददास को समझना बहुत कुछ बाकी है।

लहरी यदि नंददास के लिए नहीं बनी तो किस के लिए बनी? हमें "नंददास" को खोजने दूर नहीं जाना पड़ेगा। वे हमारे अष्टछाप के एक कवि "कृष्णदास (अधिकारी)" हैं। संवत १६०७ तक कृष्णदास "सुर तें असुर भये, असुर तें

---

[1] वार्ता रहस्य, भाग २, पृ० १०७ गुजराती विभाग।

सुर भये" हो चुके थे। अब वे श्री गुसाईं जी के एक निष्ट सेवक बन गये। आरम्भिक भेटियाँ कर्म के बाद जब वे कीर्त्तन सेवा में अधिक रुचि बढ़ाने लगे, तब काव्य का ज्ञान करना आवश्यक हो गया होगा। इसके लिए सूरदास को "सा बहरी" की रचना करनी पड़ी।

हमारी इस धारणा का समर्थन कृष्णदास की वार्ता के ४ थे प्रसंग से भी है।[1] घटना यह है कि एक बार सूरदास जी ने कृष्णदास से कहा कि तुम्हारे पद मेरे पदों की छाया है। इस पर कृष्णदास ने मौलिक पद बनाने की सोची। "कृष्णदास एकांत में बेठि कें एकाग्रचित्त कारि कें नयौ पद करन लागे जो जा में तुक को (तो) कीयौ और चौथी तुक बने नाहीं। तब घड़ी द्वोपलो बिचारे जो तुक चलत नाही तो भलो फेरि प्रसाद लेकें विचारेंगे। सो जा पत्र में लिखत हुते पत्र तथा द्वाति लेखनी उहांई धारि कै प्रसाद लेवे को उठे। जब प्रसाद लेवे को बैठे श्री नाथ जी ने आप तीन तुक वा पत्र में अपने श्री हस्त सों लिख दीये।"

राग गौरी—

आवत बने कान्ह गोपबालक संग।
नेचुकी खुर रेनु छुरतु अलकावली॥
भौं हैं मनमथ चाप वक्र लोचन बान।
सीस सोभित मत्त मयूर चंद्रावली॥१॥
उदित उडुराज सुंदर सिरोमनि बदन।
निरखि फूली नवल जुवती कुमुदावली॥
अरुन सकुच अधर बिंबफल उपहसत।
कहत कछुक प्रकटित होत कुंद रसनावली॥२॥
स्रवन कुंडल तिलक भाल बेसरि नाक।
कंठ कौस्तुभ मनि सुभग त्रिवलावली॥
रत्न हाटक खचित उरसि पद कन पांत।
बीच राजत सुभ्र झलक मुक्तावली॥३॥

(अथ श्री नाथ जी कृत)—

वलय कंकन बाजूबंद आजनुभुज।
मुद्रिका कर तल बिराजत नखावली॥

---

[1] चौरासी वैष्णव की वार्ता (वेंकटेश्वर संस्करण सम्वत १९९५) पृष्ठ

क्नित कटि मुरलिका मोहित अखिल विस्व ।
गोपिका जन मनसि ग्रंथत प्रेमावली ॥४॥
कटि छुद्र घंटिका जटित हीरामयी ।
नाभि अंबुज बलित अंग रोमावली ॥
धायक बहु चलत भक्त हित जानि पिय ।
गंड मंडित रुचिर स्रमजल कनावली ॥५॥
पीत कौसय परिधान सुंदर अंग चरण ।
नुपुर वाद्य गीत सबदावली ॥
हृदय कृस्नदास गिरवर धनन लाल की ।
चरन नख चंद्रिका हरति तिमिरावली ॥६॥

"यह पद कृष्णदास ने" सूरदास जी के आगे कह्यौ। सो सूरदास जी तीन तुक ताँहि तौ बोले नाहीं। और तीन तुक के आगे कहन लागे तब सूरदास जी ने कृष्णदास सों कह्यौ जो कृष्णदास मेरे तुक सो बाद है और प्रभून से बाद नाहीं में प्रभून की बानी पहिचानत हौं।" इस प्रसंग से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि कृष्णदास एक कष्ट साध्य कवि थे। उन्होंने अपने सामने सूर की कविता का आदर्श रख कर पद भी बनाये थे। रस, अलंकार, नायिका भेद का ज्ञान कराने के लिए—"नन्दनन्दन दास हित साहित्य लहरी कीन", की घटना हिन्दी साहित्य के इतिहास में घट जाती है तो यह सूर का आभार ही हम पर है।

ब्राह्मण

[भारतेन्दु-युग का प्रमुख पत्र]

(लेखक श्री त्रिलोकीनारायण दीक्षित, एम० ए० रिसर्च स्कालर लखनऊ विश्वविद्याल

भारतेन्दु-युग साहित्यिक जाग्रति का समय था। नाटक, जीवन चरित्र तथ कविता इत्यादि की रचनाओं द्वारा साहित्य का रिक्त भंडार उसी समय, पूर्ण कि गया था। मुद्रण यंत्रालयों के प्रचार के कारण पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन प्रार हो चुका था। पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ ही रचनात्मक कार्य और भी अबा गति से होने लगा। आलोचना साहित्य के जन्म और विकास का श्रेय भी बहु कुछ उस युग की पत्र-पत्रिकाओं को है। साहित्य के अंगों को भरने में जहाँ अन्य प का कलात्मक सहयोग रहा, वहाँ 'ब्राह्मण' की सेवाएँ भी विशेष उल्लेखनीय हैं 'ब्राह्मण' का प्रकाशन उस युग के साहित्यिक इतिहास में एक महत्व पूर्ण घटना है।

'ब्राह्मण' नाम से सामान्यतः यह अनुमान होता है कि इसके जन्म दा ब्राह्मण ही होंगे, परन्तु तथ्य इसके विरुद्ध है। ब्राह्मण के प्रकाशन में अन्य वर्णों भी अपूर्व सहयोग रहा। इससे यह स्पष्ट होता है कि 'ब्राह्मण' किसी जाति अथ वर्ग विशेष का पत्र नहीं था वरन उसके लक्ष्य तथा उसकी रचनाओं का सम्ब साहित्य की प्रगति से ही था। ब्राह्मण के जन्म दाताओं में पं० प्रताप नारायण मि पं० बद्री नारायण शुक्ल तथा लाला व्रजभूषण लाल अग्रवाल विशेष रूप उल्लेखनीय हैं। 'ब्राह्मण' के प्रकाशन में पं० बद्री नारायण शुक्ल की वाचिक सह यता थी, ला० व्रजभूषण लाल की आर्थिक तथा वाचिक, परन्तु पं० प्रताप नाराय मिश्र ने तन, मन, धन से 'ब्राह्मण' की सेवा की। उपर्युक्त साहित्यिकों के निःस्वा प्रयत्न के फल स्वरूप 'ब्राह्मण' का जन्म संवत् १९४० वि० के फाल्गुन मास में हुआ था। फाल्गुन मास में जन्म पाने के संस्कार वश तथा मिश्र जी के सम्पादकत्व के कारण 'ब्राह्मण' प्रकृति से ही विनोद प्रिय तथा हास्य प्रधान पत्र बना रहा।

साहित्य क्षेत्र में 'ब्राह्मण' अपना नवीन तथा मौलिक लक्ष्य लेकर अवतरि हुआ था। इस पत्र का लक्ष्य साहित्य सेवा मात्र था। इसका प्रकाशन न तो धन उपा र्जन के हेतु किया गया था और न अपनी ख्याति फैलाने के हेतु। मिश्र जी अपने इ पत्र द्वारा हिन्दी, हिन्दुस्तान तथा हिन्दू जाति की सेवा तथा भलाई करना चाहते थे 'ब्राह्मण' के खंड ४, संख्या १ में निम्नलिखित पंक्तियों को लिखकर मिश्र जी ने उस लक्ष्य पर यथेष्ठ प्रकाश डाला था:—

"ब्राह्मण पत्र हमने रुपया जोड़ने को न चलाया था। तौ भी उसका ख

निभाना ही चाहिये। लेकिन जसमार ग्राहक नहीं समझते कि सम्पादक लखाधीश नहीं है।" तथा "हम गुणी हैं या औगुणी यह तो आप लोग कुछ दिन में ही जान लेंगे पर यह जान रखिये कि भारत वासियों के लिए क्या अलौकिक क्या पार लौकिक मार्ग का एक मात्र अगुआ हम और हमारे थोड़े से पत्र ही बन सकते हैं। कानपूर इतना बड़ा नगर अनेक सहस्त्रावधि मनुष्यों की बस्ती पर नागरी पत्र जो हिन्दी रसिकों का एक मात्र मन बहलाव, देशोन्नति का सर्वोत्तम उपाय, शिक्षा और सभ्यता का दर्शक अत्युच्च ध्वजा यहाँ एक भी नहीं।......हम निरे मतमतान्तर के झगड़े की बातें कभी न करेंगे कि एक की प्रशंसा और दूसरे की निंदा।......हमारी दक्षिणा भी बहुत न्यून है।......हां एक बात रही जाती है। जन्म हमारा फागुन में हुआ है और होली की पैदाइश प्रसिद्ध है कभी कोई हंसी कर बैठे तो क्षमा कीजियेगा।"[1]

विनोद प्रियता के कारण 'ब्राह्मण' में अनेक हास्य प्रधान लेख तथा टिप्पणियाँ प्रकाशित होती थीं। इस नीति के कारण जनता की रुचि इस पत्र तथा हिन्दी की ओर आकर्षित हुई। साथ ही साथ इसके ग्राहकों की संख्या में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। मिश्र जी निरे सम्पादक ही नहीं थे वरन जनता की मनोवृत्तिके पारखी भी थे। जनता की रुचि आकर्षित करनेके पश्चात् उन्होंने इसकी नीतिमें परिवर्तन कर दिया। जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियों से प्रकट होता है:—"जी बहलाने के लेख हमारे पाठकों ने बहुत से पढ़ लिये यद्यपि उनमें भी समयोपयोगी शिक्षा रहती हैं।......अब हमारा विचार है कि कभी कभी ऐसी बातें भी लिखा करें जो इस काल के लिए प्रयोजनीय हैं तथा हास्य पूर्ण न हो के सीधी सादी भाषा में हों। हमारे पाठकों का काम है कि उन्हे नीरस समझ कर छोड़ न दिया करे......।"[2]

'ब्राह्मण' का कलेवर अधिक बड़ा नहीं था। वह केवल १२ पृष्ठों का मासिक पत्र था। भारतेन्दु-युग के इतने सर्व प्रिय पत्र का अपना कोई यंत्रालय भी नहीं था। खड्ग विलास प्रेस, हनुमंत प्रेस तथा शुभचिन्तक प्रेस में इसका मुद्रण हुआ करता था। इस पत्र की आर्थिक दशा कभी इतनी अच्छी नहीं होसकी कि वह मोटे, चिकने तथा सुन्दर कागज पर छप कर पाठकों के सामने जा सके। 'ब्राह्मण' को कभी-कभी लीथो टाइप से भी सन्तोष करना पड़ता था।

ब्राह्मण' में समाचारों के साथ साथ विविध विषयों पर निबंध भी प्रकाशित

---

[1]'ब्राह्मण' खंड १, अङ्क १

[2]ब्राह्मण खंड १, अङ्क १

होते थे। समय समय पर राजनैतिक, सामाजिक, तथा साहित्यिक निबन्ध प्रका
हुआ करते थे। 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हास्य प्रधान निबन्धों में व्यंग का
प्रमुख स्थान रहता था। व्यंग तो भारतेन्दु-युग के लेखकों का सर्व प्रिय अस्त्र
जिसके द्वारा वे अपना असंतोष प्रकट करते थे। प्रेस ऐक्ट तथा दासता की
श्रृंखलाओं में जकड़े भारतीय विद्वानों के पास इससे अच्छा कोई और साधन न
जिसके द्वारा वे जनता में जाग्रति उपस्थित कर सकते। 'ब्राह्मण' में समय समय
भाषा-विज्ञान संबंधी लेख प्रकाशित हुआ करते थे। इसमें बहुधा भाषा शैली एवं
सम्बन्धी विचार भी निकला करते थे।

'ब्राह्मण' की फाइलें देखने से उसके सम्पादक की शैली पर अच्छा प्र
पड़ता है। मिश्र जी की हिंदी में संस्कृत तथा उर्दू के शब्दों का भी स्वाभावि
प्रयोग मिलता है। उनकी भाषा में देहाती शब्दों का विचित्र सम्मिश्रण उपलब्ध
है। प्रयुक्त मुहाविरे भी प्रायः ग्रामीण भाषा से हुआ करते थे।

'ब्राह्मण' की आर्थिक दशा कभी संतोष जनक नहीं रही। ग्राहक संख्या इ
कम थी कि उसका खर्च पूरा नहीं पड़ता था। भारतेन्दु-युग के प्रत्येक पत्र का
आर्थिक हीनता के कारण हुआ। उनके सम्पादक घर फूंक कर तमाशा देखते
जब तक उनके पास पैसा होता तब तक पत्र में लगाते रहते पर अंत में वही होता,
होना चाहिए था। 'ब्राह्मण' की भी यही दशा थी। ब्राह्मण के ग्राहकों में बहुत
आठ आठ महीने तक बिना चन्दा दिये ही मुफ्त में पढ़ा करते थे। परंतु फिर
देखिये, मिश्र जी उनसे किस विनोद पूर्ण शैली में चंदा मांगते थे।

"आठ मास बीते जजमान अबतो करो दच्छिणा दान।
जो तुम लेहो बहुत खिझाय यह कौनो भलमंसी आय।

तथा

सदुपयोग नित ही करै मांगै भोजन मात्र॥
देखो हमसा विश्व में कौन दान का पात्र॥"

अनेक प्रकार से आर्थिक संकटों का सामना करते हुए मिश्र जी, 'ब्राह्मण'
संवत् १९४७ वि० तक चलाते रहे। अंत में ७००) का घाटा देकर उसे बन्द
देना पड़ा। पत्र को बंद करने में मिश्र जी को आन्तरिक कष्ट हुआ था जिसका आभा
निम्नांकित पंक्तियों से मिलता है:—

"ब्राह्मण को बंद करने में परमेश्वर साची है" कि हमे पुत्र शोक से कम
न होगा पर हमारे नादिहन्दों ने हमे लाचार कर दिया॥

राष्ट्र-भाषा के प्रश्न पर मतभेद

म० गांधी का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से इस्तीफा

गांधी जी और टंडन जी का महत्वपूर्ण पत्र-व्यवहार

[हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के मंत्री श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने राष्ट्र-भाषा के प्रश्न पर महात्मा गांधी और श्री पुरुषोत्तमदास टंडन के बीच हुए निम्न पत्र-व्यवहार को प्रकाशित कराया है ।]

महाबलेश्वर
२८-५-४५

भाई टंडन जी,

मेरे पास उर्दू खत आते हैं, हिन्दी आते हैं और गुजराती। सब पूछते हैं, मैं कैसे हिन्दी साहित्य सम्मेलन में रह सकता हूँ और हिंदुस्तानी सभा में भी ? वे कहते हैं, सम्मेलन की दृष्टि से हिन्दी ही राष्ट्र भाषा हो सकती है जिसमें नागरी लिपि ही को राष्ट्रीय स्थान दिया जाता है, जब मेरी दृष्टि में नागरी और उर्दू लिपि को स्थान दिया जाता है, और जो भाषा न फारसीमयी है न संस्कृतमयी है। जब मैं सम्मेलन की भाषा और नागरी लिपि को पूरा राष्ट्रीय स्थान नहीं देता हूँ तब मुझे सम्मेलन में से हट जाना चाहिए। ऐसी दलील मुझे योग्य लगती है। इस हालत में क्या सम्मेलन से हटना मेरा फर्ज़ नहीं होता है ? ऐसा करने से लोगों को दुविधा न रहेगी और मुझे पता चलेगा कि मैं कहाँ हूँ।

कृपया शीघ्र उत्तर दें। मौन के कारण मैंने ही लिखा है लेकिन मेरे अक्षर पढ़ने में सब को मुसीबत होती है इसलिए इसे लिखवा कर भेजता हूँ।

आप अच्छे होंगे।

आप का
—मो० क० गांधी

---

१० क्रासथवेट रोड, इलाहाबाद
८-६-४५

पूज्य बापू जी, प्रणाम।

आपका २९ मई का पत्र मुझे मिला। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के कामों में कोई मौलिक विरोध मेरे विचार में नहीं है। आपको स्वयं हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सदस्य रहते हुए लगभग २७ वर्ष हो गये। इस बीच

आपने हिन्दी-प्रचार का काम राष्ट्रीयता की दृष्टि से किया। वह सब काम ग़लत था ऐसा तो आप नहीं मानते होंगे। राष्ट्रीय दृष्टि से हिन्दी का प्रचार वांछनीय है यह तो आपका सिद्धान्त है ही। आपके नये दृष्टिकोण के अनुसार उर्दू शिक्षण का भी प्रचार होना चाहिए। यह पहले काम से भिन्न एक नया काम है जिसका पिछले काम से कोई विरोध नहीं है।

सम्मेलन हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानता है। उर्दू को वह हिन्दी की एक शैली मानता है जो विशिष्ट जनों में प्रचलित है।

स्वयं वह हिन्दी की साधारण शैली का काम करता है, उर्दू शैली का नहीं। आप हिन्दी के साथ उर्दू को भी चलाते हैं। सम्मेलन उसका तनिक भी विरोध नहीं करता। किन्तु राष्ट्रीय कामों में अँग्रेज़ी को हटाने में वह उसकी सहायता का स्वागत करता है। भेद केवल इतना है कि आप दोनों चलाना चाहते हैं। सम्मेलन आरंभ से केवल हिन्दी चलाता आया है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सदस्यों को हिन्दुस्तानी प्रचार-सभा के सदस्य होने में रोक नहीं है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से निर्वाचित प्रतिनिधि हिन्दुस्तानी ऐकेडमी के सदस्य हैं और हिन्दुस्तानी ऐकेडमी हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियाँ और लिपियाँ चलाती है। इस दृष्टि से मेरा निवेदन है कि मुझे इस बात का कोई अवसर नहीं लगता कि आप सम्मेलन छोड़ें।

एक बात इस सम्बन्ध में और भी है। यदि आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अब तक सदस्य न होते तो सम्भवतः आपके लिए यह ठीक होता कि आप हिन्दुस्तानी प्रचार सभा का काम करते हुए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में आने की आवश्यकता न देखते। परन्तु जब आप इतने समय से सम्मेलन में हैं तब उसका छोड़ना उसी दशा में उचित हो सकता है जब निश्चित रीति से उसका काम आप के नए काम के प्रतिकूल हो। यदि आपने अपने पहले काम को रखते हुए उसमें एक शाखा बढ़ायी है तो विरोध की कोई बात नहीं है।

मुझे जो बात उचित लगी ऊपर निवेदन किया। किन्तु यदि आप मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं और आपकी आत्मा यही कहती है कि सम्मेलन से अलग हो जाऊँ तो आपके अलग होने की बात पर बहुत खेद होते भी नतमस्तक हो आपके निर्णय को स्वीकार करूँगा।

हाल में हिन्दी और उर्दू के विषय में एक वक्तव्य मैंने दिया था, उसकी एक प्रति-लिपि सेवा में भेजता हूँ। निवेदन है कि इसे पढ़ लीजिएगा।

—विनीत,

—पुरुषोत्तमदास टंडन

पुनः—इस समय न केवल आप किन्तु हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा के मंत्री श्रीमन्नारायण जी तथा कई अन्य सदस्य सम्मेलन की राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के सदस्य हैं। एक स्पष्ट लाभ इससे यह है कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और हिन्दुस्तानी-प्रचार सभा के कामों में विरोध न हो सकेगा। कुछ मतभेद होते हुए भी साथ काम करना हमारे नियंत्रण का अंश होना उचित है।

—पु० दा० टंडन

पंचगनी
१३-६-४५

भाई पुरुषोत्तमदास टंडन जी,

आप का पत्र कल मिला। आप जो लिखते हैं उसे मैं बराबर समझा हूँ तो नतीजा यह होना चाहिए कि आप और सब हिन्दी-प्रेमी मेरे नए दृष्टिकोण का स्वागत करें और मुझे मदद दें। ऐसा होता नहीं है। और गुजरात में लोगों के मन में दुविधा पैदा हो गयी है। और मुझसे पूछ रहे हैं कि क्या करना? मेरे ही भतीजे का लड़का और ऐसे दूसरे, हिन्दी का काम कर रहे हैं और हिन्दुस्तानी का भी। इससे मुसीबत पैदा होती है। पेरीन बहन को आप जानते हैं। वह दोनों काम करना चाहती हैं। लेकिन अब मौका आ गया है कि एक या दूसरे को छोड़ें। आप कहते हैं वह सही है तो ऐसा मौका आना ही नहीं चाहिए। मेरी दृष्टि से एक ही आदमी हिन्दुस्तानी प्रचार सभा और हिन्दी साहित्य सम्मेलन का मंत्री या प्रमुख बन सकता है। बहुत काम होने के कारण न हो सके तो वह दूसरी बात है। और यह मैं कहता हूँ वही अर्थ आप के पत्र का है, और होना चाहिए। तब तो कोई मतभेद का कारण ही नहीं रहता और मुझको बड़ा आनन्द होगा। आप का जो वक्तव्य आपने भेजा है मैं पढ़ गया हूँ। मेरी दृष्टि से हिन्दुस्तानी प्रचार सभा बिलकुल आप ही का काम कर रही है, इसलिए वह आप के धन्यवाद की पात्र है। और कम से कम उसमें आप को सदस्य होना चाहिए। मैंने तो आप से विनय भी किया कि आप उसके सदस्य बनें लेकिन आपने इनकार किया है, ऐसा कह कर कि जब तक डाक्टर अब्दुल हक न बनें, तब तक आप भी बाहर रहेंगे। अब मेरी दरख्वास्त यह है कि अगर मैं ठीक लिखता हूँ और हम दोनों एक ही विचार के हैं तो हि० सा० स० की ओर से यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। अगर इसकी आवश्यकता नहीं है तो मेरा कुछ आग्रह नहीं है। कम से कम हम दोनों में तो इस बारे में मतभेद नहीं है इतना स्पष्ट होना चाहिए। हि० सा० स० में से निकलना मेरे लिए कोई मजाक की बात नहीं है। लेकिन जैसे मैं कांग्रेस में से निकला तो कांग्रेस

की ज्यादा सेवा करने के लिए, उसी तरह अगर मैं सम्मेलन में से निकला तो सम्मेलन की अर्थात् हिन्दी की ज्यादा सेवा करने के लिए निकलूँगा।

जिसको आप मेरे नए विचार कहते हैं वे सचमुच तो नए नहीं हैं। लेकिन मैं सम्मेलन का प्रथम सभापति हुआ तब जो कहा था और दोबारा सभापति हुआ अधिक स्पष्ट किया, उसी विचार-प्रवाह का मैं अभी स्पष्ट रूप से अमल कर रहा ऐसे कहा जाय। आप का उत्तर आने पर मैं आखिर का निर्णय कर लूँगा।

आप का

—मो० क० गां

---

१० क्रास्थवेट रोड इलाहाबाद

११-७-४५

पूज्य बापू जी, प्रणाम।

आपका पंचगनी से लिखा हुआ १३ जून का पत्र मिला था। उसके तुरन्त ही राजनीतिक परिवर्तनों और आपके पंचगनी से हटने की बात सामने आयी। मन में यह आया था कि राजनीतिक कामों की भीड़ से थोड़ी सुविधा जब आपके देखूँ तब मैं लिखूँ। आज ही सबेरे मन में आया कि इस समय आपको कुछ सुवि होगी। उसके बाद श्री प्यारेलाल जी का ६ तारीख का पत्र आज ही मिला जि उन्होंने सूचना दी है कि आप मेरे उत्तर की राह देख रहे हैं।

आपने अपने २८ मई के पत्र में मुझसे पूछा था कि—मैं कैसे हि० सा० में रह सकता हूँ और हि० प्र० सभा में भी? इस प्रश्न का उत्तर मैंने अपने ८ के पत्र में आपको दिया। मेरी बुद्धि में जो काम हि० सा० स० कर रहा है उ आपके अगले काम का कोई विरोध नहीं होता। इस १३ जून के पत्र में आपने दूसरे विषय की चर्चा की है। आपने लिखा है कि 'आप और सब हिन्दी-प्रेमी मेरे दृष्टिकोण का स्वागत करें और मुझे मदद दें'। मैंने मौखिक रीति से आपको करने का यत्न किया था, और जिस वक्तव्य की नक़ल मैंने आपको भेजी थी उसमें मैंने स्पष्ट किया है, कि मैं आप के इस विचार से कि प्रत्येक देशवासी हिंदी और दोनों सीखें सहमत नहीं हो पाता। मेरी बुद्धि स्वीकार नहीं करती कि आपका यह कार्यक्रम व्यवहारिक है। मुझे तो दिखाई देता है कि बंगाली, गुजराती, मराठी, आदि बोलने वाले इस कार्यक्रम को स्वीकार नहीं करेंगे।

हिन्दी और उर्दू का समन्वय हो इस सिद्धान्त में पूरी तरह से मैं आपके हूँ। किन्तु यह समन्वय, जैसा मैंने आपसे बम्बई में निवेदन किया था और

मैंने वक्तव्य में भी लिखा है, तब ही संभव है जब हिन्दी और उर्दू के लेखक और उनकी संस्थायें इस प्रश्न में श्रद्धा दिखायें। मैंने इस प्रश्न को प्रयाग में प्रान्तीय हिं० सा० स० के सामने थोड़े दिन हुए रखा था। मेरे अनुरोध से वहाँ यह निश्चय हुआ है कि इस प्रकार के समन्वय का हिन्दी वाले स्वागत करेंगे। आवश्यकता इस बात की है कि उर्दू की भी संस्थाएँ इस समन्वय के सिद्धान्त को स्वीकार करें। उर्दू के लेखक न चाहें और आप और हम समन्वय कर लें यह असंभव है। इस काम के करने का क्रम यही हो सकता है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी विद्यापीठ, अंजुमने तरक़्क़ी ये उर्दू, जामिया मिलिया तथा इस प्रकार की दो एक अन्य संस्थाओं के प्रतिनिधियों से निजी बातचीत की जाय और यदि उनके संचालकों का रुझान समन्वय की ओर हो तो उनके प्रतिनिधियों की एक बैठक की जाय और इस प्रश्न के पहलुओं पर विचार हो। भाषा और लिपि दोनों ही के समन्वय का प्रश्न है, क्योंकि अनुभव से दिखाई पड़ रहा है कि साधारण कामों में तो हम एक भाषा चला-कर दो लिपि में उसे लिख लें, किन्तु गहरे और साहित्यिक कामों में एक भाषा और दो लिपि का सिद्धान्त चलेगा नहीं। भाषा का स्थायी समन्वय तभी होगा जब हम देश के लिए एक साधारण लिपि का विकास कर सकें। काम बहुत बड़ा अवश्य है, किन्तु राष्ट्रीयता की दृष्टि से स्पष्ट ही बहुत महत्व का है।

मेरे सामने यह प्रश्न १९२० से रहा है किन्तु यह देख कर कि उसके उठाने के लिए जो राजनीतिक वायुमंडल होना चाहिए वह नहीं है, मैं उसमें नहीं पड़ा और केवल राष्ट्र भाषा के हिन्दी रूप की ओर मैंने ध्यान दिया – यह समझ कर कि इसके द्वारा प्रान्तीय भाषाओं को हम एक राष्ट्रभाषा की ओर लगा सकेंगे। मैं स्वीकार करता हूँ कि पूर्ण काम तभी कहा जा सकता है कि जब हम उर्दू वालों को भी अपने साथ ले सकें। किन्तु उस काम को व्यावहारिक न देख कर देश की अन्य भाषा-भाषी बड़ी जनता को हिन्दी के पक्ष में करना एक बहुत बड़ा काम राष्ट्रीयता के उत्थान में कर लेना है। अस्तु, इसी दृष्टि से मैंने काम किया है। उर्दू के विरोध का तो मेरे सामने प्रश्न हो ही नहीं सकता। मैं तो उर्दू वालों को भी उसी भाषा की ओर खींचना चाहूँगा जिसे मैं राष्ट्रभाषा कहूँ। और उस खींचने की प्रतिक्रिया में स्वभावतः उर्दू वालों का मत ले कर भाषा के स्वरूप परिवर्तन में भी बहुत दूर तक कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर जाने को तैयार हूँ। किन्तु जब तक वह काम नहीं होता तब तक इसी से संतोष करता हूँ कि हिन्दी द्वारा राष्ट्र के बहुत बड़े अंशों में एकता स्थापित हो।

आपने जिस प्रकार से काम उठाया है वह ऊपर मेरे निवेदन किए हुए क्रम से बिल-कुल अलग है। मैं उसका विरोध नहीं करता किन्तु उसे अपना काम नहीं बना सकता।

आपने गुजरात के लोगों के मन में दुविधा पैदा होने की बात लिखी है। ऐसा है तो आप कृपया विचार करें कि इसका कारण क्या है। मुझे तो यह दि देता है कि गुजरात के लोगों (तथा अन्य प्रान्तों के लोगों) के हृदयों में दोनों लि के सीखने का सिद्धान्त घुस नहीं रहा है किन्तु आप का व्यक्तित्व इस प्रकार का है जब आप कोई बात कहते हैं तो स्वभावतः इच्छा होती है कि उसकी पूर्ति की जा मेरी भी तो ऐसी ही इच्छा होती है; किन्तु बुद्धि आप के बताए मार्ग का निरो करती है और उसे स्वीकार नहीं करती।

आपने पेरीन बहन के बारे में लिखा है। यह सच है कि वह दोनों काम क चाहती हैं। उसमें तो कोई बाधा नहीं है। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति और हिन्दुस्ता प्रचार-सभा के कार्यकर्ताओं में विरोध न हो और वे एक-दूसरे के कामों को उदारता देखें—इसमें यह बात सहायक होगी कि हिं० प्र० सभा और रा० प्र० समिति का अलग-अलग संस्थाओं द्वारा हो, एक ही संस्था द्वारा न चले। एक के सदस्य दूस सदस्य हों किन्तु एक ही पदाधिकारी दोनों संस्थाओं के होने से व्यावहारिक कठिना और बुद्धि भेद होगा। इसलिए पदाधिकारी अलग अलग हों। आपको याद दिल हूँ कि इस सिद्धान्त पर आप से सन् ४२ में बातें हुई थीं। जब हिन्दुस्तानी-प्रच सभा बनने लगी उसी समय मैंने निवेदन किया था कि रा० प्र० समिति का मंत्री हिं० प्र० सभा का मंत्री एक होना उचित नहीं। आपने इसे स्वीकार भी किया और जब आपने श्रीमन्नारायण जी के लिए हिं० प्र० सभा का मंत्री बनना आवश बताया तबही आप की अनुमति से यह निश्चय हुआ था कि कोई दूसरा व्यक्ति प्र० समिति के मंत्री पद के लिए भेजा जाय। और उसके कुछ दिन बाद आनन्द कौ स्यायन जी भेजे गए थे। यही सिद्धान्त पेरीन बहन के सम्बन्ध में लागू है। जि प्रकार श्रीमन्नारायण जी हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के मंत्री होते हुए रा० प्र० समिति स्तम्भ रहे हैं, उसी प्रकार पेरीन बहन दोनों संस्थाओं में से एक की मंत्रिणी हों दूसरे में भी खुल कर काम करें। इसमें तो कोई कठिनता की बात नहीं है। यह सिद्धा सब प्रान्तों के सम्बन्ध में लगेगा। संभवतः श्रीमन्नारायण जी उन सब स्थानों में रा० प्र० समिति का काम हो रहा है, हिं० प्र० सभा की शाखायें खोलने का प्र करेंगे। उन्होंने रा० प्र० समिति के कुछ पदाधिकारियों से हिं० प्र० सभा का का करने के लिए पत्र-व्यवहार भी किया है। आपस में विरोध न हो इसके लिए यह म उचित है कि दोनों संस्थाओं की शाखाएँ अलग-अलग हों। और उनके मुख्य प धिकारी अलग हों। साथ ही मेल और समझौता रखने के लिए दोनों की सदस्य सब के लिए खुली रहे। यह मेरी बुद्धि में ऐसा क्रम है जिसका स्वागत होना चाहिए

आपने मेरे वक्तव्य को पढ़ने की कृपा की और उससे आपने यह परिणाम निकाला कि हिं० प्र० सभा बिलकुल मेरा ही काम करेगी और मुझे उसका सदस्य होना चाहिए। आपने यह भी लिखा कि आपने मुझसे सदस्य होने के लिए कहा था किन्तु मैंने यह कह कर इन्कार किया कि जब तक अब्दुल हक़ साहब उसके सदस्य न बनेंगे मैं भी बाहर रहूँगा। यह सच है कि मैं हिं० प्र० सभा का सदस्य नहीं बना हूँ। इस सम्बन्ध में सन् ४२ में काका कालेलकर जी ने मुझसे कहा था और हाल में डा० ताराचंद ने। आपने बम्बई में पंचगनी जाने से पहले एक लिफ़ाफ़े में दो पत्र मुझे भेजे थे। उनमें से एक में आपने इस विषय में लिखा था। किन्तु मुझे बिलकुल स्मरण नहीं है कि कभी आपने मौखिक रीति से मुझ से हिं० प्र० सभा के सदस्य बनने के लिये कहा हो और मैंने अब्दुल हक़ साहब का हवाला देकर इन्कार किया हो। मुझे लगता है कि आपने एक सुनी हुई बात को अपने सामने हुई बात में स्मृतिभ्रम से परिणत कर दिया है। सन् ४२ में काका जी ने जब चर्चा की उस समय मैंने उनसे मौलवी अब्दुल हक़ तथा उर्दू वालों को लाने की बात अवश्य कही थी। तात्पर्य वही था जो आज भी है अर्थात् यह कि जब तक हिन्दी और उर्दू लेखक हिन्दी-उर्दू के समन्वय में शरीक नहीं होते तब तक यह यत्न सफल नहीं हो सकता। हिं० प्र० सभा यदि इस काम में कुछ भी सफलता प्राप्त करेगी तो वह अवश्य मेरे धन्यवाद की पात्री होगी। आज तो हिं० प्र० सभा में शामिल होने में मेरी कठिनता इसलिये बढ़ गयी है कि वह हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाने के अतिरिक्त हिन्दी और उर्दू दोनों शैलियों और लिपियों को अलग अलग प्रत्येक देशवासी को सिखाने की बात करती है।

यह तो मैंने आपके पत्र की बातों का उत्तर दिया। मेरा निवेदन है कि इन बातों से यह परिणाम नहीं निकलता कि आप अथवा हिं० प्र० सभा के अन्य सदस्य सम्मेलन से अलग हों। सम्मेलन हृदय से आप सबों को अपने भीतर रखना चाहता है। आपके रहने से वह अपना गौरव समझता है। आप आज जो काम करना चाहते हैं वह सम्मेलन का अपना काम नहीं है। किन्तु सम्मेलन जितना करता है वह आपका काम है। आप उससे अलग जो करना चाहते हैं उसे सम्मेलन में रहते हुए भी स्वतन्त्रता पूर्वक कर सकते हैं।

—विनीत

—पुरुषोत्तमदास टंडन

सेवाग्राम,
२५.७.४५

भाई टंडन जी,

आपका ता० ११-७-४५ का पत्र मिला। मैंने दो बार पढ़ा। बाद में किशोरलाल भाई को दिया। वे स्वतंत्र विचारक हैं आप जानते होंगे। उन्होंने लि है सो भी भेजता हूँ। मैं तो इतना ही कहूँगा, जहाँ तक हो सका मैं आपके प्रे अधीन रहा हूँ। अब समय आया है कि वही प्रेम मुझे आपसे वियोग करावे मैं मेरी बात नहीं समझा सका हूँ। यही पत्र आप सम्मेलन की स्थायी समिति के रखें। मेरा ख्याल है कि सम्मेलन ने मेरी हिन्दी की व्याख्या अपनायी नहीं है। तो मेरे विचार इसी दिशा में आगे बढ़े हैं। राष्ट्रभाषा की मेरी व्याख्या में हिन्दी उर्दू लिपि और दोनों शैली का ज्ञान आता है। ऐसा होने से ही दोनों का सम होने का है तो हो जायगा। मुझे डर है कि मेरी यह बात सम्मेलन को चुभेगी। लिये मेरा इस्तीफा कबूल किया जाय। हिन्दुस्तानी प्रचार का कठिन काम करते मैं हिन्दी की सेवा करूँगा और उर्दू की भी।

—आप का
मो० क० गां

---

१० क्रास्थवेट रोड, इलाहाबाद
२-८-४५

पूज्य बापू जी,

आपका २५ जुलाई का पत्र मिला। मैं आपकी आज्ञा के अनुसार खेद के स आपका पत्र स्थायी समिति के सामने रख दूंगा। मुझे तो जो निवेदन करना था पिछले दो पत्रों में कर चुका।

आपके पत्र के साथ भाई किशोरलाल मशरूवाला जी का पत्र मिला है। उ मैं अलग उत्तर लिख रहा हूँ। वह इसके साथ है। कृपया उन्हें दे दीजियेगा।

—विनीत
पुरुषोत्तमदास टं

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
जन्म और विकास

(३)

[ले० श्री सत्यदेव शास्त्री]

सम्मेलन का पांचवां अधिवेशन लखनऊ में बड़े समारोह से हुआ। इस सम्मेलन को अवध के कुछ प्रसिद्ध राजाओं और ताल्लुकेदारों का सहयोग प्राप्त हुआ था। इस सम्मेलन की विशेषता यह थी कि इसमें ५०० प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। इसी सम्मेलन में बहुत से वकीलों और ताल्लुकेदारों ने कचहरियों में और अपने २ दफ्तरों में नागरी का प्रचार करने की प्रतिज्ञा की।

स्कूल और कालेजों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो इसके संबंध में सम्मेलन प्रारंभ से ही प्रयत्नशील रहा। लखनऊ में श्री पं० रामनारायण मिश्र ने इसी आशय का एक प्रस्ताव उपस्थित किया था। प्रस्ताव इस प्रकार है कि:—

स्कूल विभाग में अंग्रेजी साहित्य को छोड़कर गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, आदि विषयों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने से बालकों की उपर्युक्त और आवश्यक उन्नति में बहुत बाधा पड़ती है और उन विषयों में उनका समुचित प्रवेश नहीं होने पाता तथा उनका बहुत सा समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है। अतएव यह सम्मेलन भारत तथा संयुक्त प्रदेश के गवर्नमेंटों से प्रार्थना करता है कि वे कृपा कर ऐसी आज्ञा निकालें जिसमें यदि स्कूल विभाग की समस्त श्रेणियों में नहीं तो कम से कम ऊपर की दो श्रेणियों को छोड़कर बाकी सब श्रेणियों में अंग्रेज़ी साहित्य के अतिरिक्त अन्य सब विषयों की शिक्षा देश भाषा द्वारा हो।"

हिंदू विश्व विद्यालय में शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रस्ताव भी पास हुआ था। ऊपर के दोनों प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हुए। पहिले प्रस्ताव पर प्रान्तीय सरकार ने शीघ्र ही अमल किये। किंतु दूसरे पर अमल बहुत दिनों तक नहीं हुआ। हिन्दू विश्व विद्यालय में इंटर मीडियेट तक तो हिन्दी माध्यम द्वारा विषयों के पढ़ाने का नियम हो गया है; किंतु बी० ए० और एम० ए० में तो अंग्रेज़ी के ही माध्यम द्वारा पढ़ाई होती है।

सम्मेलन के अधिवेशन के साथ २ चौथे अधिवेशन भागलपुर में प्रदर्शिनी प्रारंभ की गई। पांचवें अधिवेशन लखनऊ में जो प्रदर्शिनी हुई थी वह भी आकार प्रकार में काफ़ी छोटी थी। प्रदर्शित वस्तुओं की संख्या सैकड़ों में ही सीमित थी।

किंतु कुछ वस्तुयें बड़े महत्व की थीं।

इस प्रदर्शिनी में मीराबाई का एक पुराना चित्र और भूषण कवि का चित्र। बहुत सी हस्तलिखित और छपी पुस्तकें प्रदर्शिनी की शोभा बढ़ा रही थीं।

सम्मेलन ने अपने जन्म दिन से ही कचहरी में हिंदी प्रचार की ओर दिया। कानपुर के पं० महेश दत्त शुक्ल ने इस कार्य में पर्याप्त योग दिया। बांदा प्रमुख वकील श्री कुंअर हर प्रसाद सिंह तथा उनके मुहर्रिर मुंशी मथुरा प्रसाद के उद्योग से बांदा की कचहरी में हिंदी का अच्छा प्रचार हुआ। सम्मेलन की ओर अदालती शब्द संग्रह तैय्यार कराने का कार्य शुरू किया गया।

द्वितीय और तृतीय सम्मेलन के अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा लेखकों प्रकाशकों से यह प्रार्थना की गई थी कि वे अपनी पुस्तकों की एक प्रति सम्मेलन का लय में भेज दिया करें। उसके फलस्वरूप पाँचवें सम्मेलन के समय तक १७१ पुस्तकें सम्मेलन कार्यालय में पहुँच चुकी थीं। इसके पीछे विचार यह था कि सम्मेलन का सुंदर पुस्तकालय हो जिससे हिंदी के विद्वान और हिंदी प्रेमी जनता लाभ उठा सके।

सम्मेलन की स्थापना एवं उसके अधिवेशनों से हिंदी संसार में एक उत्साह की लहर दौड़ गई और जगह २ हिंदी की संस्थायें स्थापित होने लगीं। इस समय तक हिंदी की २० संस्थायें सम्मेलन से संबद्ध हो चुकी थीं।

जिला सम्मेलन

नई नई पुस्तकें प्रकाशित होने लगीं। जगह २ नागरी प्रचारिणी सभा तथा हिंदी साहित्य संस्थायें कायम होने लगीं। इनके अतिरिक्त अलीगढ़ और वृन्दावन में जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन के भी अधिवेशन हुए। अलीगढ़ में श्री राधा चरण गोस्वामी की अध्यक्षता में प्रथम जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन हुआ। वृन्दावन में मथुरा जिला हिंदी साहित्य सम्मेलन हुआ। वृन्दावन के जिला सम्मेलन का एक अच्छा असर हुआ कि मथुरा में नागरी प्रचारिणी सभा स्थापित हो गई।

सम्मेलन की परीक्षायें उत्तरोत्तर लोक-प्रिय होने लगीं। परीक्षार्थियों की संख्या भी बढ़ने लगी। परीक्षाओं में कन्यायें भी सम्मिलित हुईं। सम्मेलन परीक्षाओं का सम्मान समाज में बढ़ने लगा। परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण होने वाले को सम्मेलन से पदक देकर उसे उत्साहित एवं सम्मानित करने की परिपाटी चली।

उच्च शिक्षा तो विश्वविद्यालय में ही मिल सकती है। अभी तक तो प्रस्ताव होते रहे कि हिन्दूविश्वविद्यालय काशी में शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो तथा इलाहाबाद और पंजाब के विश्वविद्यालयों में अन्य विषयों के साथ साथ हिन्दी के पढ़ाने की व्यवस्था की जाय। सप्तम हिन्दी साहित्य सम्मेलन जबलपुर में देश में

भाषा द्वारा शिक्षा देनेवाली एक यूनिवर्सिटी की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा था। इस सम्मेलन में इस आशय का एक प्रस्ताव भी उपस्थित किया गया जो सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ था। वह प्रस्ताव इस प्रकार है।

इस सम्मेलन की राय में देश की उन्नति के लिए मातृभाषा द्वारा शिक्षा देनेवाली एक यूनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) की आवश्यकता है, जिसमें उच्च प्रकार की विज्ञान तथा शिल्प सम्बन्धिनी शिक्षा का पूर्ण प्रबन्ध हो और इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए हिन्दी के समस्त प्रेमियों से यह सम्मेलन अनुरोध करता है कि वे कम से कम एक छोटा सा वैज्ञानिक स्कूल अपने अपने नगरों में स्थापित कराने का प्रयत्न करें जिससे आगे चल कर इस विश्वविद्यालय की नींव सुदृढ़ हो जाय।

सम्मेलन की लोक प्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी और संपूर्ण भारत में इसकी चर्चा थी। आठवाँ सम्मेलन इन्दौर नगरी में हुआ जहाँ हिन्दी के लिए पहिले ही से उपयुक्त वातावरण था। सौभाग्य से इस सम्मेलन को सभापति मिले महात्मागांधी जैसे कर्मवीर और त्यागी नेता जो गुजराती होते हुए भी राष्ट्रभाषा हिन्दी के अनन्य उपासक थे। उनके राष्ट्र भाषा के अनन्य प्रेम ने ही उन्हें सम्मेलन की इस गद्दी पर प्रतिष्ठित किया। महात्मागांधी के दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की विजय एवं चम्पारन सत्याग्रह की सफलता की देश में बड़ी धूम मची हुई थी। महात्मागांधी की कीर्ति संपूर्ण भारत में फैल रही थी। लोग उनमें भावी नेता का दर्शन कर रहे थे। सम्मेलन ने ऐसे त्यागी, राष्ट्र भाषा के अनन्य प्रेमी एवं कर्मठ नेता को अपना सभापति चुनकर न केवल महात्मागांधी का सम्मान किया; बल्कि अपने आप को गौरवान्वित किया और सम्मेलन के कर्णधारों ने ऐसा कर दूरदर्शिता का परिचय दिया। महात्माजी का सम्मेलन का सभापति होना सम्मेलन का सौभाग्य सूचक था। सम्मेलन में नया जीवन आया। तेजस्विता आई। सम्मेलन का कार्य क्षेत्र विस्तृत और व्यापक हुआ। इसी सम्मेलन में दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार की व्यापक योजना बनी थी जिसके अनुसार मद्रास में हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना हुई। उसी के उद्योग से आज मद्रास में लाखों नर नारी राष्ट्र भाषा हिन्दी की शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। उसी योजना के परिणाम स्वरूप आज मद्रास प्रान्त में राष्ट्र भाषा की दुन्दुभी बज रही है। महात्मागान्धी का संबन्ध सम्मेलन से जुड़ने से सम्मेलन का स्वरूप भी प्रकृत राष्ट्रीय हो गया। सम्मेलन की प्रतिष्ठा बढ़ी और वह अत्यधिक व्यापक हुई।

इसी सम्मेलन में महात्मागान्धी ने अपने भाषण के सिलसिले में राष्ट्रभाषा हिन्दी की व्याख्या की थी जिसे उन्हीं के शब्दों में यहाँ देना उचित प्रतीत होता है :—

"हिन्दी भाषा की व्याख्या का थोड़ा ख्याल करना आवश्यक है। मैं व्याख्या कर चुका हूँ कि हिन्दी भाषा वह भाषा है। जिसको उत्तर में हिन्दू मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। हिन्दी एकदम संस्कृतमयी नहीं है न वह एकदम फ़ारसी शब्दों से लदी हुई। देहाती बोली में जो माधुर्य मैं देखता हूँ वह न लखनऊ के मुसलमीन भाइयों की में, न प्रयाग जी के पंडितों की बोली में पाया जाता है। भाषा वही श्रेष्ठ है जिसे जन समूह सहज में समझ ले। देहाती बोली सब समझते हैं। भाषा का मूल मनुष्य रूपी हिमालय से मिलेगा और उसमें ही रहेगा। हिमालय में से निकली हुई गंगा जी अनन्तकाल तक बहती रहेंगी। ऐसे ही देहाती हिन्दी का गौरव और जैसे छोटी सी पहाड़ी से निकलता हुआ झरना सूख जाता है वैसे ही संस्कृत तथा फारसी मयी हिन्दी की दशा होगी।

वे आगे चलकर फिर कहते हैं कि हिन्दू मुसलमानों में जो भेद किया जा वह कृत्रिम है। ऐसी ही कृत्रिमता हिन्दी व उर्दू भाषा के भेद में है। हिन्दुओं बोली से फारसी शब्दों का सर्वथा त्याग और मुसलमानों की बोली से संस्कृत सर्वथा त्याग अनावश्यक है। दोनों का स्वाभाविक संगम गंगा यमुना के संगम शोभित अंचल रहेगा।" लिपि के संबन्ध में अपना विचार प्रकट करते हुए म जी कहते हैं कि "मुसलमान भाई अरबी लिपि में ही लिखेंगे; हिन्दू बहुतकर ना लिपि में लिखेंगे। राष्ट्र में दोनों को स्थान मिलना चाहिए। अमलदारों को लिपि का ज्ञान होना आवश्यक होना चाहिये। इसमें कुछ कठिनाई नहीं है। जिस लिपि में ज्यादा सरलता होगी उसकी विजय होगी। भारतवर्ष में परस्पर के लिए एक भाषा होनी चाहिए—इसमें कुछ संदेह नहीं है।"

इस सम्मेलन में एक महत्व का प्रस्ताव सभापति महोदय द्वारा उपस्थित गया और उस प्रस्ताव का तत्काल ही प्रभाव पड़ा। वह प्रस्ताव इस प्रकार है:-

"इस सम्मेलन की सम्मति में अब समय आ गया है कि हिन्दी भाषा शिक्षा के आदर्श का प्रचार करने के लिए सम्मेलन की ओर से हिन्दी विद्या स्थापित किया जाय, जो सम्मेलन की परीक्षाओं का अधिक प्रचार करें और निज का भी एक विद्यालय बनाये, जिसमें हिन्दी भाषा द्वारा उच्चकोटि की शिक्षा जाय और वैज्ञानिक प्रयोग तथा ऐतिहासिक और वैज्ञानिक अनुसंधान का कार्य हो।

(ख) सम्मेलन के विचार में उसके बढ़ते हुए काम के लिए यह भी आव है कि उसके कार्यालय के लिए निज के भवन बनाये जायँ। (ग) सम्मेलन के लि

में अब यह भी नितान्त आवश्यक है कि उन प्रान्तों में जहाँ की भाषा हिन्दी नहीं है सम्मेलन की ओर से हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए अध्यापकों तथा उपदेशकों द्वारा विशेष उद्योग किया जाय।

(घ) सम्मेलन समस्त देश हितैषियों और हिन्दी भाषा प्रेमियों से निवेदन करता है कि वे इस वृहत कार्य में उदारता से सहायता करें।

इस अपील का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। काशी के प्रसिद्ध दानवीर राष्ट्रकर्मी स्वर्गीय श्री शिवप्रसाद गुप्त ने घोषित किया कि काशी के एक सज्जन जो अपना नाम बतलाना नहीं चाहते ५ वर्ष तक १०००) वार्षिक सहायता देंगे। रायबहादुर सेठ हुकुम-चन्द ने १००००) की सहायता देने का वचन दिया। श्रीमन्त महाराजा साहेब इन्दौर ने १००००) का वचन दिया। इस प्रकार कुल मिलाकर ३००००) का चन्दा हुआ।

इसी सम्मेलन के अवसर पर महात्मा गांधी ने श्री शिवाजी राव साहित्य भवन (मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति का भवन) की नींव डाली जो मध्यभारत में हिन्दी की अमूल्य सेवा कर रही है।

हिन्दी जगत

स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर गुप्त जी का प्रवचन

'भाषा सर्वसाधारण की है'

[गत बारह अगस्त को काशीनगरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में राष्ट्रकवि श्री मैथिली शरण गुप्त की हीरक जयन्ती मनाई गई। हमारी संस्कृति में वाल्मीकि और तुलसीदास की काव्य साधना, जो हमारे लिए चिरकाल से मंगल और विवेक की प्रतीक रही है, इस युग में गुप्त जी की रचनाओं में ही देखने को मिली है। श्री गुप्त जी हमारे यशस्वी कवि हैं इतने ही से काम नहीं चलता। वे केवल ऋषि वाल्मीकि और गो० तुलसीदास की पद्धति और परम्परा के कवि हैं हम तो यह कहेंगे। हिन्दी साहित्य के इस युग में जिसे भारतीय साहित्य और जीवन का दर्शन करना हो वह गुप्त जी का साहित्य देखे। हमारे आधुनिक साहित्य के भावावेश और निराशावाद के इस समुद्र में गुप्त जी प्रकाशस्तम्भ की तरह स्थिर खड़े हैं। उनका संयम और धैर्य अडिग है। जयन्ती के अवसर पर उनके प्रवचन की यही ध्वनि है। ईश्वर उन्हें चिरायु करे। सामयिक भाषा, साहित्य और अन्य समस्याओं पर उनका यह गद्य प्रवचन

कितना ठोस साथ ही साथ मोहक है अपने पाठकों के लाभ के लिए हम उसे स्तम्भ में दे रहे हैं।

सम्पादक

भाषा सर्व साधारण की है।

हमारी भूमि के समान हमारी भाषा का क्षेत्र भी विस्तृत है तथापि वह सर्वसाधारण का ही है। कोई राज्य अथवा राजबल उसकी पीठ पर नहीं। फिर उसका भविष्य असंदिग्ध है। जिस प्रकार हमारी भूमि का उद्धार निश्चित है, उसी प्रकार हमारी भाषा का अधिकार भी। हमारे समर्थ मस्तिष्क ज्योंही राजनीति उलझन से अवकाश पायेंगे और हम अपनी भाषा में सर्वाङ्गीय शिक्षा पाने लगें त्योंही उसके विभिन्न भण्डार भरते विलम्ब न होगा। अभी तो आचार्य नरेन्द्रदेव, सम्पूर्णानन्दजी, राजेन्द्रबाबू और श्रीप्रकाशजी आदि नेताओं से हम जो कुछ पाते हैं, वह अतिरिक्त लाभ है और यह तो कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। अपनी भूमि के उद्धार के लिये जूझने में हमें जितनी प्रेरणा हिन्दी के द्वारा मिली है उतनी और किसी के द्वारा नहीं। यही नहीं; हिंदी इस बात पर भी गर्व कर सकती है कि विदेशी शासन के आगे वह किसी उपकार का आभार मानने के लिये बाध्य नहीं। शासकों ने उलटे उसके मार्ग में काँटे ही बिखेरे हैं, परन्तु वह उन्हें पददलित करके आगे बढ़ने की शक्ति रखती है। अधिकारियों का उसपर अन्तिम प्रहार रेडियो विभाग के द्वारा हुआ है जिनके हाथ में सत्ता होती है, उनका अन्याय भी न्याय होता है परंतु उन्हें स्मरण रखना चाहिये—अंतिम निर्णय अभी शेष है।

हमारे गांव में हिन्दू और मुसलमान एक ही बोली से अपना काम चलाते हैं, परन्तु कोई बोली किसी वाङ्मय की भाषा का स्थान नहीं ले सकती। जैसे शिक्षा का स्तर ऊंचा होता है वैसे ही भाषा का भी। ऐसी स्थिति में आप चाहे अरबी फारसी के सहारे नये-नये शब्द संग्रह कीजिये चाहे संस्कृत के। उर्दू के प्रति यथो आदर और ममत्व रखते हुए भी मैं इस देश के लिये संस्कृत का सहारा ही उचित और अनुकूल मानता हूँ। काका कालेलकर का यह कहना बहुत ठीक है कि संस्कृत के सम्मुख भारत की सभी भाषाएँ अपना हृदय खोल देती हैं। इस स्थिति में अपने मुसलमान भाइयों से क्या यह प्रार्थना नहीं की जा सकती कि वे संस्कृत के भी कुछ तत्सम और तद्भव शब्द स्वीकार कर लें, जैसा बंगाल में उन्होंने उन्हें स्वीकार कर लिया है, और राष्ट्रभाषा के निर्माण में हमें अपने समुचित सहयोग का लाभ लेने दें? 'रानी केतकी की कहानी' के कर्त्ता के अधिकारियों से हम क्यों आशा न रखें?

एक भाषा की बात तो बापू की ओर से भी कही जाती है, पर एक लिपि की नहीं। यह कदाचित अप्रिय सत्य है। परन्तु इस संघर्ष में भय है कि एक तीसरी ही लिपि हम दोनों पर न लद जाय। हमारी लिपि को भी समयानुसार प्रेस के योग्य होने के लिये प्रस्तुत होना होगा।

जो हो, मुझे बापू केस्वराज्य में कोई डर नहीं। मेरे ऐसे लोग अपनी भाषा में लिख-पढ़ न सकेंगे तो अन्त में बापू को भी, ईसा के स्वरों में कहना ही पड़ेगा कि "तुम अपनी बात अपने शब्दों में कह सकोगे, क्योंकि तुम्हें अपना मुंह बन्द रखना पड़ा है।"

शब्दों का विशेष अर्थ होता है!

प्रत्येक भाषा के शब्द साधारण अर्थ से भिन्न, बहुधा अपना एक विशेष अर्थ भी रखते हैं। जैसे गनीमत और कुशल। साधारण अर्थ में दोनों मिलते-जुलते हैं, किन्तु दोनों का अपना अपना एक अलग इतिहास है। इस देश के निवासी चाहे हिंदू हों चाहे मुसलमान अथवा ईसाई, वे इसी देश के निवासी रहेंगे। यह उनके द्वारा होना उचित नहीं है कि वे अपने देश के इतिहास की उपेक्षा करते रहें, जो हमारे शब्द शब्द में घुल-मिलकर एक हो गया है। मुझे तो यही जान पड़ता है कि स्वतन्त्र भारत का कमालपाशा के समान साहसी, कोई मुसलमान राष्ट्रपति ही हमारी राष्ट्रभाषा का संस्कार करेगा, जैसा अभी ईरान के राष्ट्रपति ने किया। हमें चाहिये कि हम स्वयं उसकी कठिनाइयाँ न बढ़ावें।

हजरत मुहम्मद के विजयी अनुयायियों ने अरब से ईरान में आकर क्या नहीं किया? क्या उन्होंने एक भिन्न भाषा और संस्कृति को नहीं अपना लिया? दिखाई तो यह देता है कि वहाँ के द्राक्षारस का चषक हाथ में लेकर एक बार अपने वायज की हँसी उड़ाने से भी वे नहीं चूके। क्या महान कथाकार फिरदौसी के शाहनामे पर उन्होंने अपना महत्व नहीं प्रगट किया, जिसमें कहा जाता है, अरबी के दो-चार शब्द ही आये है? यह उनकी पराजय थी अथवा सौहार्द? वे ऐसे न थे कि बात में उनका मजहब खतरे में पड़ जाय। उनके पैगम्बर ने पहले ही कह रखा था कि सब लोग अपनी अपनी भाषाओं में नमाज पढ़ सकते हैं अथवा उपासना कर सकते हैं। परमात्मा सब की बात समझता है। यदि ईरान के 'गुल' और 'बुलबुल' उनकी सहायता से वंचित नहीं रहे तो यहाँ के कमल, कोकिल, हंस, मयूर और चातक कब वंचित रहेंगे। क्या यहाँ के वन उपवन, यहाँ के नद निर्झर और यहाँ के पर्वत वैसे ही उनके नहीं हैं, जैसे कि हमारे? क्या हमने जायसी, कबीर और रहीम को शिरोधार्य नहीं किया? और क्या बंगाल के नजरुल इस्लाम को आदर नहीं दिया? यदि हमारा सिकन्दर

और रुस्तम उनकी वाणी के विषय बन गये तो यहाँ के चन्द्रगुप्त, अशोक एवं वि
दित्य और हर्ष सीधे उन्हीं के पूर्व पुरुष हैं। मैं मानता हूँ कि कठिनाइयाँ पद
हैं परंतु संसार में क्या असंभव है? कठिनाइयों की बात क्या कहूँ वे तो हमारे
ही नहीं भीतर भी हैं। एक ओर विकेन्द्रीकरण का प्रकरण है जहाँ जनपदीय सं
की आड़ में संकीर्ण प्रांतीयता सिर उठा रही है, दूसरी ओर सुना जाता है कि
कोई भाषा ही नहीं, वह तो उर्दू के विरोध में बनाकर खड़ी कर दी गई है। जो
भी नहीं देखना चाहते कि किसी प्रांतीय संस्कृति का सार्वदेशिक प्रचार करने में
ही सहायक हो सकती है एवं कोई भी कृत्रिम भाषा इस प्रकार करोड़ों घरों में
समा सकती, उनसे क्या निवेदन किया जाय! ऐसे लोग कल यह भी कह स
कि हमारी स्वाधीनता का आन्दोलन शुद्ध उन्माद है, हम तो चिर पराधीन
आये हैं।

पराधीनता का अभिशाप

इतना तो स्पष्ट ही है कि अपनी पराधीनता में दूसरों के दिये हुए अपने
में हथियारों का लक्ष्य भी बहुधा हमें ही बनना पड़ा है। अथवा उस साम्राज्यवाद
रक्षा के लिये उनका प्रयोग करना पड़ा है, जो हमें अपने जाल में जकड़े हुए हैं
उसके युद्ध को हमें अपना युद्ध सुनना पड़ा है। हमारे लाखों भाई अन्न के बिना
पर मर चुके हैं और हमारी बहिनों को वस्त्र के बिना लज्जा बचाने के लिये पा
कूद कर आत्महत्या तक करनी पड़ी है। इसके साथ ही हम नैतिक पतन की परा
तक पहुँचा दिये गये हैं।

हमारी पराधीनता का यह अभिशाप, जो हम भोग रहे हैं, अंतिम
चाहिये। इसके लिये हमारे जननायक प्राणपण से प्रयत्नशील हैं। वे विजयी
हिंदी उनका संदेश भार लेने के लिये सदैव प्रस्तुत है।

पराधीनों के लिये राष्ट्रीयता अनिवार्य सी है परन्तु परिणति उसकी अन्त
यता में है। मुझे विश्वास है, हिंदी ने जैसे राष्ट्रीयता के प्रचार में योग दिया है
ही हमारे स्वाधीन और समर्थ होने पर वह अन्तर्राष्ट्रीयता अथवा विश्वबन्धुत्व
भावना फैलाने में भी प्रमुख भाग लेने से न चूकेगी। यह विश्वास मुझे इसलि
कि हिन्दी समयानुसार परिवर्तन का स्वागत करने की क्षमता रखती है। आजक
कविता का जब उसने आरम्भ किया तब न तो उसे ब्रजवाणी के माधुर्य का मोह
न अवधी के आभिजात्य का लोभ।

जो पीछे आ रहे···उन्हीं का मैं आगे का जय-जयकार······

हिन्दी की इस नयी कविता के क्षेत्र में कुछ काम करने का मुझे सौभाग्य

है। इस क्षेत्र में मेरा आना आकस्मिक तो है पर सहज नहीं, उसके लिये मुझे हिंदी लोअर प्राइमरी पाठशाला की सारी श्रेणियां पार करनी पड़ी हैं और वे भी इस प्रकार जिस प्रकार साकेत के शत्रुघ्न को—

"चढ़ा दो दो सोपान
राजतोरण पर आया।
ऋषभ लांघ कर—
मालकोस, ज्यों स्वरपर छाया।"

गुरुदेव की एक बात मैंने कहीं पढ़ी कि जो पोला बाँस और किसी काम नहीं आता उसकी बाँसुरी बन सकती है। वेणु किंवा शृंगरव तो मेरे अन्यान्य समान धर्माओं के बाँटे आया पर अपनी स्थिति सोच कर कवि ठाकुर की बात मुझे चुभती है। मैंने अपने मास्टरों, मौलवियों और पंडितों को निराश ही किया। संगीत और व्यायाम के शिक्षकों का श्रम भी मैंने सफल नहीं होने दिया। संगीत का सुयोग अपने बाल्य-बंधु मुंशी अजमेरी के रूप में मुझे सदैव प्राप्त था। किंतु बचपन में एक बार मैंने उधर मुंह किया तब देखा कि जहाँ उनके कंठ में कोकिल कूकती है वहाँ मेरे गले में काक-काकली विराजमान है। मुझे निश्चय करना पड़ा कि गाना-बजाना भले मानुषों का काम नहीं है! सचमुच उस समय भले मनुष्यों का ऐसा ही विचार था!

व्यायाम के विषय में भी ठीक यही हुआ। पिताजी ने मुझे इन बातों के सीखने की आज्ञा दी। यह उस समय के लिये बड़ी वैसी बात थी। आज तो भले घर की लड़कियाँ भी संगीत की शिक्षा लेती हैं। वे चाहते थे कि मैं विद्या नहीं पढ़ सकता तो कोई कला ही आयत्त करूँ पर जो करूँ उसमें एक विशेषता अवश्य हो। पर गेंद खेलने, पतंग लड़ाने और परेवा उड़ाने में भी कोई विशेषता हाथ न आयी। आल्हा बाँचने और कहानियाँ सुनने में मेरा मन अवश्य लगता था। घर में अपनों और बाहर ब्राह्मणों द्वारा रामायण के पाठ होते भी सुनाई पड़ते थे।

पारिवारिक सुख

कक्काओं की बात कैसे कहूँ पर पिताजी के हाथों पिटने का डर न था। एक किसी अन्य पुरुष को उन्होंने एक थप्पड़ मार दी थी जिसके कारण उन्हें ऐसा खेद हुआ कि उन्होंने किसी पर हाथ न उठाने की प्रतिज्ञा ले ली थी। उनकी वत्सलताकी क्या बात कहूँ। मेरे हाथ से एक पद्य अपनी रचना की पोथी पर लिखा देखकर ही मेरे भविष्य की न जाने उन्होंने क्या-क्या कल्पना की। 'साकेत' के दशरथ-चरित्र के मोह से उनके स्नेह का संबंध था या नहीं, यह मनोवैज्ञानिकों के ही विचार की बात है।

मैं आरंभ-शूर अवश्य था पर महीने में ही मेरा उत्साह समाप्त हो जाता था

और मैं एक काम छोड़कर दूसरा खोजने लगता था। केवल छंदो-रचना ही
निकली जिसने मुझे बांध लिया। आज भी लिखने में मन लगने पर दो ही चार
में मेरी भूख और निद्रा क्षीण होने लगती है। अपने कुछ जैन बंधुओं के इस
की रक्षा करने की मुझे चिंता है कि मैं किसी जैन विषय पर एक छोटा-मोटा
लिख दूं। इसी प्रकार प्रभु ईसा पर भी मैं कुछ लिखना चाहता हूँ, जैसे मुसल
के महापुरुषों पर मैंने कुछ लिखा है। एक मनुष्य के नाते मैं विश्व के महापुरुषों
अपनी पुष्पांजलि चढ़ाने को उत्सुक हूँ। मेरी वैष्णवता मुझसे यही कहती है—

सीय राम मय सब जग जानी।
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी॥

हो सकता है, कवित्व के कुछ संस्कार मुझमें रहे हों और मेरे व्यक्तिगत
दुखों ने उन्हें जगा दिया हो। यदि यह यथार्थ है तो यह भी सत्य है कि मुझे
संस्कारों का कड़ा मूल्य चुकाना पड़ा है।

अपने रचना-काल के प्रारंभ में की गई अपने शुभ चिंतक सैंसरों की
छाँट आज भी मूदी मार-सी मुझे कसकती है परंतु उनके प्रति भी मैं अपनी कृत
कैसे भुला सकता हूँ।

मैंने सुना है, यूरोप के कुछ सहृदय कवि अपने प्रतिकूल आलोचकों के प्रहा
ऐसे जर्जर हुए कि उन्हें अपने प्राणों से ही हाथ धोने पड़े। इस विषय में मेरी
आत्म विश्वास ने की अथवा निर्लज्जता ने, यह मैं नहीं कह सकता। फिर भी मैं
प्रतिकूल आलोचनाओं से हतोत्साह नहीं हुआ बहुधा और भी उत्साह से अपने
में लग गया। मेरे जिन आलोचकों ने आलोचना के साथ व्यंग-विनोद किये हैं उ
अपने परिश्रम का परिहार ही किया है, जिसका उन्हें अधिकार था। उनके प्रति
मन में भी उपेक्षा के भाव असम्भव न थे। परन्तु अपने युग पुरुष बापू का थोड़
सम्पर्क मुझे प्रेरित करता है कि उनके प्रति भी नतमस्तक होकर मैं अपनी कृत
प्रगट करूं और मैं ऐसा करता हूँ।

भले ही प्रतिकूल आलोचनाओं से मैं हत-प्रभ न हुआ होऊँ, एक बात
दिनों तक मुझे पीड़ा पहुँचाती रही। जब मैं अपनी जान में कोई नयी बात
और वही बात अपने किसी पूर्ववर्ती से सुनता तब बहुत घबराहट होती। एक बार
अन्योक्ति लिखी कि सूर्य ऐसा सहायक होते हुए भी कमल शीत से मर जाता है।
को मित्र भी कहते हैं; इसलिये मैंने 'मित्र' शब्द का ही प्रयोग किया। उस प
चौथा चरण आज भी नहीं भूल सका हूँ—

"हा हा उसे तदपि तुच्छ तुषार दाहे।"

मैं उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा, कब प्रवास से अजमेरी लौटें और मैं गहरी डुबकी का यह रत्न उन्हें दिखाऊं। किंतु मैं आकाश से गिरा जब मैंने देखा कि इस प्रवास में अजमेरी जो पद्य संग्रह करके लाये हैं उनमें इस आशय का भी पद्य है। उसमें 'मित्र' शब्द तो नहीं, मेरा तुच्छ 'तुषार' वैसा का वैसा पहले से ही बैठा हुआ है—

तुच्छ तुषार इतौ, परिवार पै
नेक सहाय भयो नहिं सोई।

और उसके साथ इस पंक्ति का कहना ही क्या—

कौन काको है विपत्ति परे पर,
सम्पति में सबको सब कोई॥

क्षोभ और लज्जा से मैंने अपना पद्य फाड़ कर फेंक दिया।

संस्कृत के आशु कवि पण्डित अयोध्यानाथ उपाध्याय उन्हीं दिनों मेरे यहां आये। इस विषय की चर्चा होने पर उन्होंने मुझे यह कह कर सान्त्वना दी कि भैया, प्राचीनों ने सरस्वती के भण्डार से सब कुछ ले लिया। अब हम लोगों के लिये क्या रहा है। सरस्वती का भण्डार तो सदैव अक्षय है। तथापि इस बात से मुझे उस समय संतोष ही करना पड़ा। अब भी ऐसे प्रसंग आ ही जाते हैं, परन्तु यह सोच कर संतोष करता हूँ कि यही क्या थोड़ा है जो पूर्ववर्तियों का उच्छीष्ट मुझे नैवेद्य के रूप में मिल जाता है। इससे यह न समझना चाहिये कि मैं उनका ऋण अस्वीकार करता हूँ, मैं सदा उनकी छत्रछाया में हूँ—

समय के साथ कोई कहां तक चल सकता है, परन्तु मैंने अपने प्रकार से अन्त में उसका स्वागत करने का ही प्रयत्न किया है।

अपने युग को हीन समझना,
आत्म हीनता होगी।
सजग रहो, इससे दुर्बलता
और दीनता होगी॥
जिस युग में हम हुए,
वही तो अपने लिये बड़ा है।
अहा! हमारे आगे,
कितना कर्मक्षेत्र पड़ा है॥
हीन हो गया काल कौन सा?
क्या घन मन्द्र नहीं अब?

सायं, प्रात, रात, दिन, ऋतुएँ
या रवि—चन्द्र नहीं अब ?

सावधान ! युग के अधर्म को
हम युग-धर्म न समझें।
कर्म नहीं, हम पतित आप,
यदि उनका मर्म न समझें ॥

वह अतीत पुरखों का युग था,
उसका क्या कहना है ?
सुनो, किंतु अपने ही युग में
हम सबको रहना है।

जन्मे हैं हम उसी भूमि पर
उसी वायु—मण्डल में।
पर आगे की ओर हमारी
वृद्धि-सिद्धि पल-पल में।

विगत हुआ तो विगतों का युग
अपना तो प्रस्तुत है।
कितना नव्य-भव्य तुम देखो
यह अपूर्व अद्भुत है ॥

नये-नये अध्याय खुले हैं,
नये पाठ हैं कितने।
कैसे काट छांट के कौशल,
और ठाट हैं कितने ॥

बहुत दिन पहले मैंने साम्यवाद पर कुछ पद्य लिखे थे, तब तक मैंने कोई कविता हिंदी में उस विषय पर नहीं देखी थी। उन पद्यों का अंतिम पद्य यह था—

निज वर्तमान में
किसे नितान्त निरति है
परिवर्तन में भय,
किंतु वहीं तो गति है।
उस स्वर्ग हेतु भी कौन
स ह र्ष म रे गा

पर, कालवली निज
कार्य सदैव करेगा ॥

जैनी और मार्क्स पर भी मैंने सम्वाद के रूप में एक पद्य-प्रबंध आरंभ किया था, पर सामग्री न पा सकने के कारण एक अंक ही मैं लिख सका। भले ही न लिख सका, परन्तु यह तो मैं आज भी मानता हूँ कि कम्युनिस्ट के समान ही हमारे कम्युनिज्म कामरेड अच्छे हों।

पद्य में थोड़ा लिखकर भी मेरा नाम चलता रहा। इसलिये गद्य की ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं रही और एक-एक शब्द को स्लेट पर कई-कई बार काटने छाँटते रहने के कारण भाषण देने के लिये उचित शब्द ही मेरे लिये दुर्लभ हो गये।

यदि मैंने डायरी रखी होती तो संभव है कि आज मैं ऐसी बातें कह सकता जिससे थोड़ा बहुत कौतूहल होता। प्रत्येक जन के जीवन में ऐसी बातें होती हैं। कितने ही विचार अथवा भाव समय पर नोट न करने के कारण मुझे खो देने पड़े हैं। ऐसे प्रसंगों पर डायरी अथवा नोटबुक न रखने का मुझे दुख भी हुआ। फिर भी डायरी के संबन्ध में मन यही कहता रहा कि इतने दिन से नहीं, तो अब कितने दिन के लिये। मैं यह भी क्या जानता था कि कभी मुझे इस प्रकार आपके संमुख आने का सौभाग्य प्राप्त होगा और आप लोगों को भी मेरे विषय में कोई जिज्ञासा होगी।

कला की उपासना निस्संदेह आनन्द के लिये होती है। परंतु कला का ही यह काम है कि वह हमें उस आनन्दोपभोग के योग्य बनावे। लोकोत्तरानन्द पाने के लिये साधारण स्तर से ऊँचा उठना पड़ेगा। जो कला स्तर को ऊँचा उठाने मे हमारी सहायता नहीं करती वह विकल्प है।

अपनी रचनाओं के विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है। वे आपके संमुख उपस्थित हैं। थोड़े को बहुत मानने वाली अपनी उदारता के कारण आरंभ में जैसे आपने अनुग्रह किया था, वैसे ही अंत में भी आप कर रहें हैं। यह आपकी ही बड़ाई है। मेरे द्वारा आपकी कुछ सेवा बन पड़ी होतो एक मात्र वही मेरे जीवन की सफलता है। मेरे बहाने आप अपने साहित्य की जिस परंपरा का अभिनंदन कर रहे है वह निस्संदेह अनेक मणि-रत्नों से आभूषित है। मेरा गौरव तो जैसा मैं पहले कह चुका हूँ, यही है कि—

'जो पीछे आ रहे उन्हीं का,
मैं आगे का जय-जयकार।'

सर सुलतान क्यों हटाये जायँ ?

सम्मेलन द्वारा उनकी हिंदी विरोधी नीति पर प्रकाश

हिंदी-उर्दू ब्राडकास्ट अलग-अलग हो—बहिष्कार जारी रहेगा

अ० भा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थायी समिति ने गत रविवार मार्च को दिल्ली में अपनी बैठक में रेडियो की भाषा संबन्धी नीति पर जो प्र स्वीकार किया था, उसका सार पहले प्रकाशित हो चुका है। अब संपूर्ण अधिकृत रूप से वह प्रकाशनार्थ दिया है, जो निम्न प्रकार है :—

भारतीय गवर्नमेन्ट के रेडियो विभाग में हिन्दी भाषा के विरोध की जो वर्षों से बरती जा रही है उसकी ओर हिन्दी साहित्य संमेलन ने बार-बार गवर्न का ध्यान दिलाया है।

यह अनुभव कर कि रेडियो विभाग के अधिकारी अपनी पक्षपात नीति नहीं छोड़ते और हिन्दी भाषा की बराबर अवहेलना करते हैं, सम्मेलन ने अपने वि अधिवेशन में, जो जयपुर में हुआ, यह निश्चय किया कि हिन्दी के लेखक और रेडियो विभाग से सहयोग उस समय तक त्याग दें जब तक वह अपनी हिन्दी वि नीति नहीं छोड़ता। इस निश्चय का पालन कर हिन्दी के मान्य लेखकों और क ने रेडियो विभाग से सहयोग त्याग दिया। संमेलन की स्थायी समिति आदर प्रेम के साथ उनकी सराहना करती है और उनकी दृढ़ता पर उन्हें बधाई देती है।

पिछले दिसम्बर मास में भारतीय गवर्नमेंट की ओर से रेडियो की संबंधी नीति पर विचार करने के लिए एक कमेटी की नियुक्ति की घोषणा हुई हिंदी साहित्य सम्मेलन के पास पत्र आया कि वह अपने तीन प्रतिनिधि इस क में भाग लेने के लिए भेजे।

सम्मेलन की कार्यसमिति ने तीन प्रतिनिधि भेजना स्वीकार किया, किन्तु उत्तर में यह स्पष्ट कर दिया कि जो कमेटी बनी है वह हिन्दी विरोधी सरकारी के चलाने वालों और उसके पोषकों से भरी है, इसलिए सम्मेलन के प्रतिनिधि शर्त पर सम्मिलित होंगे कि यह कमेटी कोई निर्णय मताधिक्य से नहीं करेगी सम्मेन के प्रतिनिधि विषयों के विचार में इस दृष्टि से भाग लेंगे कि वह भारतीय र्नमेंट को भाषा संबंधी सब अंगों पर विचार करने और हिंदी के विषय में न्याय में सहायता दें।

इस कमेटी की बैठक दिल्ली में फरवरी के प्रारम्भ में हुई। सम्मेलन की

से श्री सम्पूर्णानन्द, श्री आनंद कौसल्यायन और श्री मौलिचन्द शर्मा ने उसमें भाग लिया और सम्मेलन का दृष्टिकोण उपस्थित किया। सम्मेलन की ओर से कमेटी की मांग के अनुसार एक लिखित वक्तव्य (मेमोरेंडम) भी कमेटी के मंत्री के पास भेजा गया। (वक्तव्य) परिशिष्ट रूप में इसके साथ दिया जाता है) गवर्नमेंट की बनायी कमेटी की बैठक में विचार विनिमय हुआ किंतु कोई प्रस्ताव स्वीकृत के लिए उपस्थित नहीं हुआ और कमेटी ने किसी प्रकार का निर्णय नहीं किया—उसके सभापति सर सुलतान अहमद ने कमेटी की समाप्ति के समय बताया कि विचार के बाद भारतीय गवर्नमेंट अपनी नीति केन्द्रीय एसेम्बली के बैठने के समय प्रकाशित करेगी।

१४ फरवरी की विज्ञप्ति द्वारा भारतीय गवर्नमेण्ट ने अपनी नीति प्रकाशित की है। उससे स्पष्ट है कि पुरानी नीति में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ है और वही उर्दू भाषा जो हिंदुस्तानी के नाम से चलाई जा रही थी चलाने का निश्चय किया गया है। गवर्नमेण्ट के वक्तव्य के समय अब तक जिस भाषा में रेडियो के प्रसार का काम हो रहा है उसको देखते हुए इस समिति का दृढ़ मत है कि वह भाषा हिन्दी संसार को मान्य नहीं हो सकती। वह ज्यों-की-त्यों अरबी-फारसी मिश्रित उर्दू है।

सर सुलतान अहमद ने राज्य परिषद (काउन्सिल आफ स्टेट) में हाल में यह कही है कि जो कमेटी गवर्नमेंट की ओर से रेडियो की भाषा पर विचार करने के लिए नियत हुई थी वह इस परिणाम पर पहुँची कि हिन्दी और उर्दू के प्रथक प्रसार न हों। इस समिति को ऐसे असत्य वक्तव्य को सुनकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि कमेटी का कोई निर्णय इस प्रकार का नहीं हुआ था। सम्मेलन के लिखित वक्तव्य में यह स्पष्ट कहा गया था (और इसी पर सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने भी बल दिया था) कि "हिन्दी की दो शैलियां हैं—हिन्दी और उर्दू। यदि समाचार अथवा किसी दूसरे विषय के प्रसार के लिए एक ही शैली का प्रयोग करना है तो वह ऐसी हिन्दी ही हो सकती है जो न केवल संयुक्त प्रांत, विहार, मध्यप्रांत, राजपूताना और पंजाब में किन्तु महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल, उड़ीसा और दूसरे प्रांतों में भी समझी जा सके। इस हिंदी में ऐसे फारसी शब्दों का जो साधारण प्रयोग में है बहिष्कार नहीं होगा। किन्तु भाषा का आधार देशी शब्द ही हो सकते हैं चाहे अपने बदले हुए रूपों में या अपने मूल साहित्यिक रूपों में। नये शब्दों के बनाने में आधार या तो संस्कृत औरप्राकृत हो सकती है, जो देश की आधुनिक साहित्यिक भाषाओं के समान स्रोत हैं या उनसे निकले हुए शब्द हो सकते हैं।"

साथ ही इस बात का अनुभव कर कि उर्दू के पक्षपातियों को इस प्रकार की भाषा मान्य होगी और वे उर्दू शैली में भी रेडियो प्रसार चाहेंगे सम्मेलन-वक्तव्य

(मेमोरेंडम) में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि उदू के लिए अलग प्रब… सकता है और इस दशा में यह निर्णय करना होगा कि हिन्दी और उदू शैलि… लिए समय किस अनुपात में दिया जाय।

सम्मेलन की ओर से भेजे वक्तव्य का यह समिति पूर्ण समर्थन करती है… अपने इस वक्तव्य का उसको अंग बनाती है।

अब जो निर्णय भारतीय गवर्नमेंट ने प्रकाशित किया है और उसका… प्रकार पालन हो रहा है उसमें सम्मेलन के बताए हुए सिद्धांतों की अवहेलना की… है और की जा रही है। इस लिए यह समिति समस्त हिन्दी भाषियों की ओर… सर सुलतान अहमद के निर्णय का तीव्र विरोध करती है और समस्त हिन्दी प्रे… लेखकों और कवियों से अनुरोध करती है कि वे रेडियो का बराबर दृढ़ता से बहि… जारी रखें।

हिन्दी बोलने वालों की संख्या और हिन्दी द्वारा शिक्षा पाने वालों की सं… उदू बोलने वालों और उदू द्वारा शिक्षा पाने वालों की संख्या से कई गुना अधिक… हिन्दी को रेडियो में स्थान न देना और बल-पूर्वक यत्न करना कि केवल उदू शैली… चलाई जाय रेडियो विभाग का स्पष्ट अत्याचार है। सम्मेलन की मांग यह है… रेडियो की मुख्य भाषा हिन्दी हो क्योंकि भारतवर्ष की सब से अधिक जन-संख्या… वही मानी हुई भाषा है। जिस प्रकार अन्य प्रान्तीय भाषाओं का स्थान है उसी प्र… जनता के एक विशेष अंश के लिए उदू में भी रेडियो प्रसार हो सकता है। इस… को ईमानदारी के साथ चलाने के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी के विद्वान… और लेखक रेडियो विभाग में ऊपर से नीचे तक दायित्व के पदों पर रखे जायं… हिन्दी विद्वानों को रेडियों से अलग रखने की जो नीति इस समय चल रही है… दृढ़ता से बदली जाय।

यह समिति भारतीय गवर्नमेंट से अनुरोध करती है कि सर सुलतान अहमद… जो पक्षपात और अन्याय से हिन्दी का विरोध कर रहे हैं और हिन्दी के विद्वानों… लेखकों का बहिष्कार कर रहे हैं, रेडियो विभाग का दायित्व ले लिया जाय… किसी ऐसे दूसरे सदस्य को दिया जाय जो हिन्दी के साथ न्याय करें। यह समि… केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा (लेजिस्लेटिव एसेम्बली) तथा राज्य परिषद (कौंसि… आफ स्टेट) के सदस्यों से अनुरोध करती है कि हिन्दी भाषा के साथ जो अत्या… रेडियों विभाग में हो रहा है उसे दूर करने में सहायक हों।

परिशिष्ट

१. अखिल भारतीय रेडियो द्वारा जो भाषा उपयोग में लाई जा रही है…

उर्दू है, जिसमें अरबी और फारसी शब्दों का प्राधान्य है, यद्यपि उक्त विभाग उसे हिन्दुस्तानी कहता है।

२. यह स्पष्ट है कि जिन व्यक्तियों के हाथ में प्रोग्राम बनाने का काम है उनकी अन्य साहित्यिक योग्यताएँ कुछ भी हों उनमें से प्रायः सब को शुद्ध हिन्दी का कोई ज्ञान नहीं है, वे हिन्दी के शब्दों का शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सकते उदाहरणार्थ स्वर्ग का उच्चारण 'सुर्ग' और हरिश्चन्द्र' का उच्चारण 'हरिश्चन्दर' किया जाता है।

३. हिन्दी की दो शैलियां हैं—हिन्दी और उर्दू। यदि समाचार अथवा किसी दूसरे विषय के प्रसार के लिए एक ही शैली का प्रयोग करना है तो वह ऐसी हिन्दी ही हो सकती है जो न केवल संयुक्त प्रांत, विहार, मध्यप्रांत, राजपूताना और पंजाब में किन्तु महाराष्ट्र, गुजरात, बंगाल, उड़ीसा, और दूसरे प्रांतों में भी समझी जा सके। इस हिन्दी में ऐसे फारसी शब्दों का जो साधारण प्रयोग में हैं बहिष्कार नहीं होगा किंतु भाषा का आधार देशी शब्द ही हो सकते हैं चाहे अपने बदले हुए रूपों में या अपने मूल साहित्यिक रूपों में। नये शब्दों के बनाने में आधार या तो संस्कृत और प्राकृत हो सकती हैं जो देश की आधुनिक साहित्यिक भाषाओं की समान स्रोत हैं या उनसे निकले हुए शब्द हो सकते हैं।

४. यह बात स्पष्ट समझ लेनी चाहिए कि अरबी और फारसी हमारे देश की भाषाएँ नहीं हैं। उनसे आए हुए शब्द हमारी भाषा में उसी प्रकार व्यवहार में लाये जा सकते हैं जिस प्रकार अँग्रेजी भाषा के शब्द या उनसे बिगड़ कर बने हुए शब्द व्यवहार में आते हैं। किन्तु वे ऐसे विदेशी शब्दों की तरह ही व्यवहार में आ सकते हैं, जो हमने अपना लिए हों। हमारे देश में नये शब्द पढ़ने के लिए अरबी व्यवहार में नहीं लाई जा सकती। फारसी आर्य भाषा है अतः उसका प्रयोग वहीं तक किया जा सकता है जहां तक कि उसका स्वरूप संस्कृत व प्राकृत से मिलता जुलता हो, या उसके निकट आता हो। नये शब्दों के निर्माण के लिए साधारणतः देश विशेषकर उत्तर भारत के और कभी-कभी अन्य प्रान्तीय भाषाओं के धातुओं और शब्दों को आधार मानना चाहिए। यदि कोई कठिनाई उत्पन्न हो तो मुख्य कसौटी यही हो सकती है कि जो शब्द प्रयोग में आवे वह ऐसा हो जिसे देश भर में अधिक से अधिक लोग समझ सकें।

५—जो अरबी तथा फारसी के शब्द व्यवहार में आ गए हैं; उनके रूप हिन्दी व्याकरण के नियमों के अनुसार ही बनाए जायँगे—अरबी तथा फारसी व्याकरण के अनुसार नहीं। उदाहरणार्थ 'साहेब' का बहुवचन 'असहाब' नहीं आवश्यकतानुसार 'साहेब' या 'साहबों' होना चाहिए।

६—यदि किसी प्रोग्राम के लिए एक ही भाषा को व्यवहार में लाना है उपरोक्त सिद्धान्त के अनुसार ही चलना पड़ेगा और भारतीय गवर्नमेंट के विभाग द्वारा विचार विनियम के लिए भेजे गये इस प्रश्न का कि हफ्ता और 'इक्तिसादी' और 'आर्थिक' तथा 'इस्तिकबाल' और 'स्वागत' में कौन से शब्द जाने चाहिए, उत्तर यही है कि वे ही शब्द लिए जायंगे जो देशी हैं।

७—किन्तु आज जैसी स्थिति है, उसमें यह स्पष्ट है कि उर्दू के अनु उर्दू में भी प्रसार चाहेंगे। अतएव उर्दू शैली का प्रयोग भी नाटक या साहित्यिक जैसे कुछ विशिष्ट विषयों के प्रसार के लिए करना होगा, यदि रेडियो विभाग तो समाचार तथा दूसरे विषय भी हिन्दी और उर्दू दोनों में 'प्रसार' किए जा सकें परन्तु तब यह निर्णय करना होगा कि हिन्दी तथा उर्दू के प्रोग्रामों का क्या अनु होना चाहिए, इसका निर्णय मोटी रीति से उस अनुपात के अनुसार हो सकता जो किसी भी रेडियो स्टेशन द्वारा सेवित देश-भाग में हिन्दी और उर्दू जानने वालों संख्या का हो अथवा रेडियो लाइसेन्सदारों की इच्छा जान कर किया जा सकता है

८—संक्षेप में, दिल्ली और लखनऊ से प्रस्तावित प्रोग्रामों का आधार बड़े अनुपात में देशी शब्दनिष्ठ हिन्दी होनी चाहिए। निःसन्देह वे प्रोग्राम मु उन हिन्दी भाषी प्रदेशों के लिए होंगे जो दिल्ली और लखनऊ स्टेशनों द्वारा हैं। परन्तु उनका एक विशेष उपयोग यह भी होगा कि वे बंगाल, महाराष्ट्र, गु उड़ीसा तथा अन्य प्रान्तों में भी अधिकतर समझे जायंगे जहां हिन्दी से मि जुलती भाषाएँ बोली और लिखी जाती हैं। उन लोगों के लिए जो उर्दू चाहते हैं प्रोग्राम उर्दू में भी दिए जाने चाहिएं। लाहौर स्टेशन में सब प्रोग्राम हिन्दी और बराबर बाँटे जाने चाहिए। पेशावर में उर्दू की प्रधानता दी जा सकती है, वहाँ से हिन्दी के प्रोग्राम भी उन लोगों के लिए प्रसारित किए जाने चाहिए जो चाहते हैं।

हिन्दी के कवियों लेखकों और विद्वानों से

अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ३३ वाँ अधिवेशन ता० १८, १९ अक्टूबर को उदयपुर में हो रहा है। उसमें होने वाली परिषदें तथा सम्मेलन में भाग लेने के लिये भारतवर्ष के तमाम विद्वानों तथा कवियों को जो माध्यम द्वारा अपने भाव या विचार प्रकट कर सकें, सादर निमंत्रण है। परि निबन्धों के अतिरिक्त विचार विनिमय के लिये भी अलग विषय रखा जा

विद्वान परिषदों में भाग लेना चाहें निबन्ध लिख कर या प्रवचन देकर, वे कृपया अभी सूचित करने की कृपा करें। कवियों से निवेदन है कि जो कविगण कवि सम्मेलन में भाग लेना चाहें वे अपनी कविता सहित भाग लेने की सूचना पूर्व दे दें। कवि सम्मेलन में वे ही कवि भाग ले सकेंगे जिन्हें पहले स्वीकृति मिल चुकी होगी। इस प्रकार की तमाम सूचनायें स्वागत समिति के साहित्य मंत्री के पास ३० सितम्बर तक पहुँच जानी चाहिये। परिषदों के विषयों की सूची शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी। निबन्धों के विषयों में यह ध्यान रखा जाय कि निबन्ध मौलिक तथा गवेषणा-पूर्ण हों।

साहित्य मंत्री,
स्वागत समिति
उदयपुर

हमारे गुरुजन

जिनके आशीर्वाद से हिन्दी साहित्य पनप रहा है!

हमारे साहित्य के मानसिक यात्रा-पथ में एक दुखद सत्य का अनुभव हमें बराबर होता है, और वह यह कि हम अपने गुरुजनों को भूलते जा रहे हैं जिनके आशीर्वाद ने हिन्दी की प्राण-प्रतिष्ठा की है और जिनकी तपस्या की भूमि पर आज हमने अपना भवन खड़ा किया है। हिंदी की नई पीढ़ी तो उन्हे भूल ही गई है पर साहित्य के प्रौढ़ सेवक भी उनके प्रति किंचित् उदासीन हैं। हमें यह ज्ञात ही नहीं होता कि उन वृद्ध गुरुजनों का स्वास्थ्य कैसा है, वे कैसे जी रहे हैं, क्या कर रहे हैं वे जिन्होंने अपनी हड्डियों से और अपने रक्तमांस से हमारे साहित्य को रूप दिया।

स्पष्ट है कि हिंदी पाठकों, कार्यकर्ताओं से उनके जीवन का सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता है। वे क्रियात्मक रूप से साहित्य के निर्माण में अब भाग न भी ले सकते हों तो भी उनके आशीर्वाद और पथ-दर्शन से हमारा पथ मङ्गलमय होगा।

इसी उद्देश्य से मैंने कुछ सम्मानित गुरुजनों से उनके वर्तमान जीवन-क्रम, स्वास्थ्य आदि की जानकारी प्राप्त कर यहाँ रखने की चेष्टा की है, और आशा करता हूँ, यह क्रम चलता रहेगा।

श्री रामनाथ 'सुमन'
साहित्य मन्त्री

स्व० श्री श्यामसुंदरदास जी

मृत्यु से कुछ ही मास पूर्व सम्मेलन के भूतपूर्व अध्यक्ष और हिन्दी के अन॰ सेवक श्री श्यामसुन्दरदास जी ने यह पत्र लिखा था :—

३८, ७६ हौज कटो॰
काशी
१।६।४५

प्रिय महाशय,

आपका कृपा पत्र मिला। उत्तर में निवेदन है कि मेरा स्वास्थ्य साधारण॰ अच्छा नहीं रहता। कोई न कोई शिकायत बनी रहती है। चलने-फिरने में मैं असम॰ हो रहा हूँ और लिखने पढ़ने का कार्य भी जो बहुत आवश्यक होता है उसको॰ लेता हूँ। वह भी किसी लेखक की सहायता से।

रेडियो के संबंध में मुझे यह कहना है कि मैंने रेडियो का सुनना बिलकु॰ बन्द कर दिया है। उसकी भाषा के विषय में कार्यकर्ताओं का विशेष आग्रह मालू॰ पड़ता है। इसका एक ही मात्र उपाय है कि रेडियो का पूरा बहिष्कार कि॰ जाय।

भवदीय
श्यामसुन्दरदास

[२]

श्री भगवान्‌दास

शान्ति सदन, सिगरा
बनारस (कैण्ट)
९ जून १९४५

श्री रामनाथ जी 'सुमन',
साहित्य-मंत्री, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन,
पोस्ट बाक्स नं० ११, इलाहाबाद,

नमस्कार,

आपका पत्र, ता० २५ मई का, समय से मिला—उत्तर में विलंब हुआ—

· रेखांकन सम्पादकीय है। संपा०।

क्षमा कीजिएगा—'साहित्य-मंत्री' को 'साहित्य-सेवकों' की फ़िक्र रखना उचित ही है—आपका पत्र पढ़कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ—पर मैंने हिंदी साहित्य की सेवा बहुत थोड़ी की अंग्रेज़ी पोथियां लिखने में ही अधिक समय गँवाया! ७७वाँ वर्ष चल रहा है—आज काल कोई विशेष क्लेश शरीर में नहीं है—दुर्बलता ही बढ़ती जाती है—जाड़ों में तीन-चार घंटे सबेरे (अर्थात् दोपहर से पहिले) लिखने का काम कर लेता था; अब जब से गर्मी अधिक हुई है, दो-तीन घंटे ही—बाकी समय कुछ शरीर कृत्य में ('शारीरं केवलं कर्म कुर्वन् न आप्नोति किल्बिषं'!); कुछ पढ़ने में; सबेरे शाम, प्रायः उद्यान के भीतर ही, थोड़ा टहलने में; और जो अभ्यागत आ गये उनसे वार्त्तालाप करने में; बिताता हूँ—एक हिंदी पुस्तक 'पुरुषार्थ' का नया संस्करण सस्ता साहित्य-मंडल, नई दिल्ली के व्यवस्थापक, वहीं छपवा रहे हैं; उसके प्रूफ़ जब आते हैं तब शोधकर वापस करता हूँ—तथा "शास्त्रवाद बनाम बुद्धिवाद" पुस्तिका के दूसरे संस्करण के प्रूफ़ भी जो स० सा० मं० से आते हैं—एवं एक अंग्रेज़ी पुस्तक, 'दि सायंस आफ़ पीस' का नया संस्करण मद्रास में छप रहा है, उसके भी प्रूफ़ बीच-बीच में शोध रहा हूँ—पर काग़ज़ की दुर्लभता के कारण दोनों जगह (नई दिल्ली और मद्रास) का काम बहुत देर से होता है—एक और अंग्रेजी पुस्तक, 'दि सायंस आफ़ सोशल आर्गेनिज़ेशन' की दो जिल्दें पहिले (कई वर्ष हुए) मद्रास में छप चुकी हैं—तीसरी जिल्द छप जाय तो ग्रन्थ पूर्ण हो—सामग्री एकत्र हो चुकी है—प्रेस-कापी स्वच्छ बना देना बाकी है—पर, उसी काग़ज़ के दुर्भिक्ष के कारण छपाई का काम आरंभ नहीं हो रहा है—इत्यादि—शरीर की दशा और कालयापन के प्रकार के बारे में जो आपने प्रीति से पूछा उसका यह उत्तर हुआ—

दूसरी बात आपने पूछा है—'रेडियो भाषा-नीति के संबंध में मेरा मत'—यह प्रश्न 'हिंदी-उर्दू-हिंदुस्तानी' प्रश्न का ही अंग है—उसके विषय में हिंदुस्तानी कल्चर सोसायटी' के लिये जो लेख मैंने तयार किया था, उसका अंग्रेजी रूप 'अमृत बाज़ार पत्रिका' और 'लीडर' में छप चुका है—'हिंदुस्तानी' में भावानुवाद 'विश्व-वाणी' में छप चुका है—पर एक और 'हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी' (!) अनुवाद (जिसको मैंने स्वयं शोधा है), सस्ता-साहित्य-मंडल की मासिक पत्रिका 'जीवन साहित्य' में छपने गया है उससे आपको इस विषय पर मेरे विचार विदित होंगे—

शुभचिंतक भगवान् दास

सम्पादकीय

[इस स्तंभ में प्रकट किये मत सम्पादक के निजी मत समझे जाने च सम्मेलन के नहीं ।]

आचार्य दास का निधन—

हिन्दी के इस संकट काल में जब उस पर चतुर्दिक आक्रमण हो रहे हैं उसका भविष्य हमारे पौरुष और बलिभावना को चुनौती दे रहा है। आचार्य सुन्दर दास जी का निधन हमारी बहुत बड़ी क्षति है। उनका जीवन हिन्दी की वृद्धि और प्रसार की आश्चर्यजनक घटनाओं से इस प्रकार सम्बद्ध रहा है कि चालीस-पैंतालीस वर्ष का हिन्दी का इतिहास उनके प्रयत्नों की वन्दना के बिना रहेगा। एक दिन जो स्वप्न उनके और उनके दो अन्य साथियों के मानस पर और जिससे नागरी प्रचारिणी सभा और बाद में उसी से हिन्दी साहित्य सम्मेलन जन्म हुआ, उसे स्वप्न से वस्तु-जगत् में लानेवालों में वह प्रधान थे। सरकारी में हिन्दी का सन्देश पहुँचाने में उन्होंने सबसे अधिक काम किया था और सम्बन्धी खोज इत्यादि के काम को आगे बढ़ाने में वह अग्रणी थे। साहित्य-नि की दृष्टि से चाहे उन्होंने बहुत उच्चकोटि के मौलिक ग्रन्थ हमें न दिये हों परन्तु योगी और शिक्षण-कार्य में सहायक ग्रन्थों की उनकी देन कम नहीं है। उनकी बड़ी विशेषता यह थी कि हिन्दी के लिए उनके हृदय में प्रेम ही नहीं, गौरव का था और साहित्यकार तथा साहित्य सेवक को वह राष्ट्र-सेवकों के सब वर्गों के स्थान देते थे। हिन्दी अथवा हिंदी के सेवकों का तिरस्कार वह सहन नहीं कर थे। जब वह हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष थे तब अनेक ऐसे आये जब उन्होंने बड़ी तेजस्विता के साथ हिन्दी के प्रति अधिकारियों की सीनता की आलोचना की थी। हमारे लिए सबसे बड़ी विरासत जो वह छोड़ हैं, वह हिन्दी के लिए अत्यन्त निजत्व और गौरव भाव की अनुभूति है। आत्मा सदैव हमारा पथ दर्शन करती रहेगी। प्रभु से हमारी याचना है कि वह उनके कार्यों एवं जीवन व्यापी हिन्दी-सेवा की भावना से प्राणान्वित करे।

हमारे कार्य की दिशा

सम्मेलन का अधिवेशन सिर पर आ गया। प्रताप और मीरा की भूमि में सम्मेलन का अधिवेशन विजयादशमी के शुभ अवसर पर हो रहा है। अधि

तो हो ही जायगा और हम वहाँ के सेवाभावी कार्यकर्ताओं को जानते हुए यह भी कह सकते हैं कि बहुत अच्छी तरह हो जायगा। पर आज हिन्दी उस स्थिति में आ पहुँची है जब केवल समारोहात्मक अधिवेशनों का होना न होना उसके लिए बहुत महत्वपूर्ण बातें नहीं है, हमारी भाषा और हमारा साहित्य दोनों आज ऐसी स्थिति में हैं कि उनको नवीन पर विवेक युक्त दिशा-दर्शन, कार्य में बोलनेवाली स्फूर्ति और विशद एवं उदार मनोभूमिकाओं की आवश्यकता है। हिन्दी की सबसे पहली आवश्यकता यह है कि हममें उसके लिए निजत्व और ममता की भावना हो; वह हमारी बोली मात्र न हो बल्कि हमारे अस्तित्व, हमारे हृदय, हमारे समग्र जीवन की अभिव्यक्ति हो; उसमें हमारा राष्ट्र बोले, राष्ट्र की आत्मा बोले, उसमें हमारी संस्कृति का स्वर फूटे। इसके लिये हमें उस विदेशी भाषा, अंग्रेजी, को अपदस्थ करना है जो हमारे जीवन में अस्वाभाविक स्थान ग्रहण कर चुकी है और जो वस्तुतः हिन्दी का है। हिन्दी की प्रतिद्वन्दिता जितनी अँग्रेजी से है उतनी किसी भाषा से नहीं है। पर भाषा के प्रचार और प्रसार से भी महत्वपूर्ण काम साहित्य का निर्माण है। हमारे यहाँ साहित्य-सृजन की न कोई योजना है, न क्रम है, न ढंग है। जिससे जो हो सकता है, कर रहा है पर उतना बस नहीं है। हमें इसके लिये कुछ निश्चित योजनाएँ बनानी होंगी और साहित्य के सच्चे सेवक को यदि संभव हो तो, जीविका की चिन्ता से मुक्त करके इसमें लगाना होगा। हिन्दी की तीसरी आवश्यकता सारा समय देनेवाले ऐसे सेवकों का एक दल तैयार करना है जो जीवन निर्वाह के लिये वेतन लेते हुये भी उसकी सेवा में तन्मय हों, जो सोते-जागते, उठते-बैठते उसी का स्वप्न देखें, उसी के लिये कार्य करें। भारत सेवक समिति, लोक सेवक मंडल, गांधी सेवा संघ, भाषा संघ इत्यादि की भाँति हिन्दी-सेवक-मंडल जैसी एक कार्यकर्ता तैयार करनेवाली संस्था की बड़ी आवश्यकता है। अब वह समय आ गया है कि प्रत्येक हिंदी पाठक, हिंदी प्रेमी, हिंदी साहित्यकार को हिंदी भारती को सच्ची राष्ट्र-भारती के रूप में निर्मित करने में अपना योग देना चाहिये। उदयपुर का अधिवेशन यदि इस ओर कुछ भी कर सके तो किसे प्रसन्नता न होगी ?

—श्री रामनाथ 'सुमन'

श्री गुप्त जी की हीरक जयन्ती

गत १२ अगस्त को काशीनागरी प्रचारिणी सभा ने बाबू मैथिली शरण गुप्त की हीरक जयन्ती मनाकर हम हिन्दी प्रेमियों और साहित्यकारों को एक प्रकार की नई विभूति, नई आशा के अनुभव का अवसर दिया है। परतन्त्र राष्ट्र में साहित्य और

सरस्वती के पुजारी कब सम्मान पाते हैं ? भूखी और अन्धी जनता को गौरव के... का अवसर और अवकाश कहाँ मिलता है ?

फिर भी गुप्त जी की यह जयन्ती मनाई गई । इसका सीधा यही अर्थ है... हम अब अपने उन्नायकों की ओर देखने लगे हैं । सम्भवतः हमारे दिन अब फिरे... हैं जिसके पूर्व लक्षण इस जयन्ती सरीखे आयोजन हैं । श्रीगुप्त जी इस युग... इस देश के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं । उनसे राष्ट्र जीवन, राष्ट्र वाणी और राष्ट्र चेतना... गति मिली है ।

जयन्ती के अवसर पर गुप्त जीने अपने विनम्र भाषण में पूर्वजों का... स्वीकार किया है और हमारी आने वाली पीढ़ी के लिए मंगल कामना भी व्यक्त कि... है । भूत और भविष्यत की सन्धिबेला ही तो वर्तमान है । केवल वर्तमान पर... जीने वाले जो भूत और भविष्यत् दोनों को अस्वीकार करते हैं—ध्वंस चाहे जि... कर लें, निर्माण नहीं कर सकते । गुप्त जी की रचना में आज भी भारतीय जीवन... के अनुरूप हैं । जिस युग में हम अपने सारे गुण पश्चिम से माँग रहे हैं गुप्त... हिमालय की तरह शान्त, अडिग और दृढ़ हैं । वाल्मीकि और कालिदास की प्रकृत... गुप्त जी के छन्दों से सुनाई पड़ती है । इसीलिए अभी हम जीवित हैं हमारी पर... भी जीवित है ।

'जो पीछे आरहे उन्हीं का,
मैं आगे का जय जय कार'

अपने भाषण के अन्त में इतना यह भी कह कर श्री गुप्त जी ने भावी साहि... कारों को आशीर्वाद देते हुए कर्तव्य का भार भी दे दिया है । देखना है हमारे साहि... की दिशा अब भी मुड़कर देश की संस्कृति के अनुकूल होती है या नहीं । पूर्वजों... ऋण स्वीकार करने में गुप्त जी कितने पटु हैं गुप्त जी का ऋण हम उसी पटुता... साथ स्वीकार करें हमारी यही कामना है । हमारे राष्ट्र कवि चिरायु हों । उनसे हम... आँखों को तेज और वाणी को ओज अभी युगों तक मिलता रहे और उनके सम्मान... हमसे और भी आयोजन बन पड़ें भगवान से हमारी यही प्रार्थना है ।

जातक

[प्रथम तथा द्वितीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं, मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुकाबला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान है।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या २४०—२१; डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४—२४ डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अभूतपूर्व प्रकाशन

प्रेमघन-सर्वस्व

(प्रथम भाग)

'दो शब्द'-लेखक, माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन

परिचय-लेखक, स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल

आधुनिक हिन्दी के एक निर्माता, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति स्वर्गीय उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का विशाल संग्रह-ग्रंथ। हिन्दी में प्रथम और अपूर्व काव्य। लेखक के चित्र से सुसज्जित और सजिल्द।

मूल्य ४॥)

साहित्य मंत्री—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पु

(१) सुलभ साहित्यमाला

१ भारत-गीत ≈)
२ राष्ट्रभाषा ॥)
३ शिवाबावनी ≈)
४ पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १।)
५ सूरदास की विनयपत्रिका ≈)
६ नवीन पद्यसंग्रह १।)
७ बिहारी-संग्रह ≈)
८ सती करुणकी ॥)
९ हिन्दी पर फारसी का प्रभाव ॥≈)
१० ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार १।)

(२) साधारण पुस्तकमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था ३)

(३) वैज्ञानिक पुस्तकमाला

१ सरल शरीर-विज्ञान ॥), ।॥)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल-साहित्य माला

१ बाल नाटक-माला
२ बाल-कथा भाग २
३ बाल विभूति
४ वीर पुत्रियाँ

(५) नवीन पुस्तकें

१ सरल नागरिक शास्त्र
२ कृषि प्रवेषिका
३ विकास (नाटक)
४ हिंदू-राज्य शास्त्र
५ कौटिल्य की शासन-पद्धति
६ गावों की समस्यायें
७ मीराँबाई की पदावली
८ भट्ट निबंधावली
९ बंगला-साहित्य की कथा
१० शिशुपाल बध
११ ऐतिहासिक कथायें
१२ दमयन्ती स्वयंवर

नयी पुस्तकें

१—मैथिली लोकगीत—रामइकबालसिंह 'राकेश', भूमिका लेखक—पण्डित अमरनाथ झा
२—गोरखबानी—स्व० डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
३—दीवाली और होली—(कहानी संग्रह) श्री इलाचन्द्र जोशी
४—महावंश—भदन्त आनन्द कौसल्यायन
५—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—श्री नन्ददुलारे बाजपेयी
६—स्त्री का हृदय—(एकांकी नाटक) श्री उदयशंकर भट्ट
७—राजस्थानी लोकगीत—स्व० सूर्यकरण पारीक
८—सामान्य भाषाविज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना
९—काव्यप्रकाश—मम्मटाचार्य, अनुवादक स्व० हरिमंगल मिश्र
१०—समाचार-पत्र शब्दकोष—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०

प्रकाशक—श्रीरमाप्रसाद घिल्डियाल, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।
मुद्रक : श्रीगिरिजाप्रसाद श्रीवास्तव, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की मुख-पत्रिका

आश्विन २००२

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग

सम्पादक—श्री रामनाथ 'सुमन'

विषय-सूची

सूरदास क्या जाट थे ?

ले० श्री चन्द्रबली पाण्डे

का उत्तर आप की ओर से जो मिलेगा उसे हम भलीभाँति जानते हैं पर आप जान नहीं सकते कि हमारे मन में यह प्रश्न क्यों उठा है और फलतः हम इसका उत्तर भी क्या देने जा रहे हैं। सुनिए, कहीं से कोई पुकार कर कह रहा है—

"हरि जू, हौं यातैं दुख-पात्र।
श्री गिरिधरन-चरन-रति ना भई तजि विषया-रस मात्र।
हुतौ आढ्य तब कियौ असद्व्यय, करी न व्रज-बन-जात्र।
पोषे नहि तुव दास प्रेम सौं, पोष्यौ अपनौ गात्र।
भवन सँवारि, नारि-रस लोभ्यौ, सुत, बाहन, जन, भ्रात्र।
महानुभाव निकट नहिं परसे, जान्यौ न कृत-विधात्र।
छल-बल करि जित-तित हरि पर-धन, धायौ सब दिन-रात्र।
सुद्धासुद्ध बोझ बहु बह्यौ सिर, कृषि जु करी लै दात्र।
हृदय कुचील काम-भू-तृष्ना-जल-कलिमल है पात्र।
ऐसे कुमति जाट सूरज कौं प्रभु बिनु कोउ न धात्र ॥२१६॥"

'सूरसागर' के अध्ययन में इस 'जाट' की जानकारी से जो सहायता मिलेगी उसे कोई भी सूर का भक्त भलीभांति समझ सकता है। परन्तु इसे यदि नहीं समझ सकता है तो वह जो 'वार्ता' का उपासक और 'सूरवंश' का सम्पादक है। कोई कहता है जो सूरदास सारस्वत ब्राह्मण थे तो कोई कहता है कि सूरज[illegible]द ब्रह्मभट्ट थे। प्रमाण अपना अपना सभी देते हैं और कुछ सूर का भी। कहना चाहें कि 'सारस्वत' का पक्ष उठ गया तो अब कह नहीं सकते क्योंकि 'वार्ता साहित्य' के प्रताप से ऐसी वार्ता नहीं तो उसकी टीका भी निकल आई जिसमें जन्म और जाति के साथ ही सूर का जीवन भी कुछ निकल आया। सूर-संसार इसके लिये काँकरोली के 'विद्याविभाग' का ऋणी है। पर साहित्य [illegible] के उस घाल के पद को क्या कहा जाय जिसके अथ तथा इति में 'प्रथ जगात' की ही दुहाई दी गई है और उल्लेख भी किया गया है 'विप्र कुल' का ही किसी व्यक्ति [illegible]

नहीं। वह तो सूर का है न ? हाँ, पर किस 'सूर' का अन्धे का, कह नहीं सकते। सागर-कवि सूरदास का तो वह है नहीं फिर चाहे जिस कुल-सरदार का हो, सूर का सूर तो अन्यत्र भी उसी (काशी ना० प्र० सभा संस्करण) में कहता है—

"हौं तौ जाति गँवार, पतित हौं, निपट निलज; खिसिआनौ।
तब हँसि कह्यौ सूर-प्रभु सो तौ, मोहूँ सुन्यौ घटानौ" ॥११६॥

'प्रभु' ने क्या कहा और 'सूर' ने क्या धरा इसे तो अभी दूर ही रखिए। देखिए यह कि वास्तव में इस 'जाति गँवार' और उस 'कुमति जाट' का रहस्य है। संभव है इस लक्षण के टेढ़े युग में आप को यह सीधी बात न रुचे पर कीजि क्या सूर ने 'गँवार' के साथ 'जाति' और 'जाट' के साथ 'कुमति' की जोड़ी लगा है जो नट जाती है कि इसका अर्थ यही है। वह मानती नहीं कि 'गँवार' और में अभिधा नहीं लक्षणा है। 'गँवार जाति' में 'जाट' की गणना नहीं होती इसे कह सकता है और कौन नहीं कह सकता कि वस्तुतः भाषा में 'जाट' गँवार ही जाते हैं। अस्तु, इस 'जाति गँवार' और इस 'कुमति जाट' के आधार पर सहज उत्तर है—हाँ। और नहीं तो क्या दरिद्र सारस्वत ब्राह्मण अथवा ब्रह्मभट्ट जो लोग कहते हैं उन्हें कहने दो पर भूल न जाओ कि हिन्दी संसार में सूर तुलसी को लेकर जाल भी कम नहीं बना है। 'वार्ता' भी इस क्षेत्र में कुछ कम है। उसकी कुछ लीला 'विचार विमर्श' के वैष्णवन की वार्ता शीर्षक लेख में आ है और हिन्दी सा० सम्मेलन प्रयाग से प्राप्त भी हो सकती है। शेष कुछ सुनने प

वररुचि और शकटार

ले० श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

भारतीय इतिहास में नन्द वंश का प्रमुख स्थान है। पौराणिक प्रसिद्धि है कि शिशुनाग वंश के अन्तिम सम्राट् महानन्दि का एक शूद्रा स्त्री के साथ भी सम्बन्ध हो गया था। उसी से महापद्म (नन्द) नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। यह महापद्म परशुराम की भाँति क्षत्रिय राजाओं का घोर शत्रु था। इसने अपने समय के समस्त क्षत्रियों को निर्वीर्य करके भूमंडल पर अठासी वर्षों तक एकच्छत्र राज्य किया था। उसके सुकल्प आदि आठ पुत्र हुये, जिन्होंने उसके बाद कुल मिलाकर केवल बारह वर्ष तक राज्य किया। इस प्रकार कुल एक सौ वर्षों तक नन्द वंश का राज्य इस भारतवर्ष में रहा। इसके बाद चाणक्य ने नन्दों का समूल नाश कर राज गद्दी पर चन्द्रगुप्त मौर्य को बिठाया। नन्दों के राज्यकाल में भारत की दशा बहुत अच्छी थी। सारे देश में प्रतिद्वन्द्वी शक्ति के अभाव में शान्ति थी। किंतु अधिकारच्युत क्षत्रिय राजाओं में विद्रोह के स्फुलिंग बुझे नहीं थे। महापद्म के दीर्घ शासन काल में हिंदू संस्कृति का सर्वतोन्मुखी विकास हुआ। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य में नन्दवंश का बहुत अधिक यशोगान हुआ। प्रायः सभी पुराणों में नन्द का वर्णन आया है। चाणक्य के महान् व्यक्तित्व ने नन्दवंश की ख्याति को और अधिक विस्तृत किया। यही कारण है कि जैन, बौद्ध एवं विदेशीय ऐतिहासिक ग्रंथों में भी नन्द वंश का विस्तार पूर्वक वर्णन आया है।

कथासरित्सागर में नन्द का जो वर्णन आया है, उसमें इतिहास एवं गाथा का ऐसा विचित्र संमिश्रण हो गया है कि उससे पुराणों के ऐतिहासिक तथ्यों की एकरूपता नहीं मिलती। कथासरित्सागर के अनुसार अन्तिम नन्द (योगानंद) का पुत्र हिरण्य गुप्त था, जिसे पूर्व वैर भावना से महामात्य शकटार (शकटाल) ने मार डाला था और उसके स्थान पर चन्द्रगुप्त मौर्य को गद्दी पर बिठाया था। मत्स्य, विष्णु एवं वायुपुराण में नंद वंश का उन्मूलक और चंद्रगुप्त (मौर्य) को गद्दी पर बिठाने वाला चाणक्य बतलाया गया है। कथासरित्सागर के अनुसार चाणक्य ने कृत्या (मारण का आभिचारिक प्रयोग) का प्रयोग कर नन्द को मार डाला केवल इतना ही वर्णन आया है। जो हो, पुराणों एवं कथासरित्सागर दोनों के अनुसार नंद वंश का उन्मूलक चाणक्य ही था। उक्त पुराणों में वररुचि और शकटार का वर्णन नहीं आया है। कथासरित्सागर में नन्द के प्रसंग में उक्त दोनों महामात्यों की चर्चा बहुत अधिक आई है। किंतु कथासरित्सागर के अतिरिक्त संस्कृत के अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी नंद

के प्रसङ्ग में वररुचि और शकटार का वर्णन आया है। सम्भवतः मत्स्यादि पुराणों में वररुचि एवं शकटार के वर्णन इसलिए नहीं आ पाये हैं कि उनमें केवल राजवंशों की नामावलि तथा उनके राज्यकाल का वर्णन मात्र किया गया है, किसी विशेष राजा के विषय में कुछ विस्तारपूर्वक नहीं कहा गया है। केवल ब्रह्माण्ड पुराण में नंदों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। किंतु उससे इन पुराणों की कुछ बातों की संगति नहीं मिलती। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार नंदवंश के नवम राजा के राज्यकाल में वररुचि और शकटार का विद्यमान होना पाया जाता है। और उस नवम राजा का राज्यकाल यद्यपि परिगणित कर निश्चित नहीं किया गया है; पर अनुमान से पचास साठ वर्ष से ऊपर ही का निश्चित होता है क्योंकि उसने वररुचि और शकटार की मृत्यु के बाद बहुत अधिक दिनों तक राज्य किया था। दूसरी असङ्गति यह है कि नंद के सामने ही वररुचि और शकटार का अन्त हुआ था। इन सब असंगतियों के होते हुए भी नंद का उन्मूलक चाणक्य इसमें भी बतलाया गया है। वररुचि और शकटार की बुद्धिमत्ता, नीतिज्ञता, सत्यसन्धता एवं धीरता का जो वर्णन कथासरित्सागर में है, ब्रह्माण्ड पुराण की कथाओं में भी उनकी पुष्टि होती है। आगे हम इन दोनों महामात्यों की एक मनोरंजक किन्तु उपदेशप्रद एक पौराणिक लघुकथा का प्रारम्भ कर रहे हैं।

नन्द वंश के आदिम राजा नन्द के राज्य काल में पाटलिपुत्र में कल्पक नामक एक परम निःस्पृह सत्यवादी एवं सर्वशास्त्रपारङ्गत विद्वान ब्राह्मण रहते थे। जैसा ऊपर कह चुके हैं नन्द की उत्पत्ति शूद्रा के गर्भ से हुई थी अतः समाज में उसका विशेष सम्मान नहीं था। क्षत्रियद्वेषी होने पर भी नन्द गुणग्राही था। उसके मन में बड़ी लालसा थी कि यदि पंडित कल्पक जैसे महामात्य मुझे मिल जाते तो राज्य व्यवस्था को स्थिर एवं शान्त करने में कोई कठिनाई न होती। अंततः एक दिन दरबार में कल्पक को बुलाकर नन्द ने महामात्य का पद स्वीकार करने का विशेष अनुरोध किया। किन्तु निर्लोभ एवं स्वाभिमानी कल्पक ने न केवल अनुरोध को अस्वीकार किया वरन् उसे कड़ी फटकार भी बतलाई। अपमानित होने पर भी गुणज्ञ नन्द ने कल्पक को कोई हानि नहीं पहुँचाई थोड़े दिन बाद नन्द ने कल्पक को बाध्य करने का एक उपाय सोचा। कल्पक के ग्राम में जो धोबी उनका वस्त्र धोता था; उसे बुलाकर नन्द ने आदेश दिया कि अब की बार कल्पक के वस्त्रों को कम से कम एक वर्ष तक तुम अपने घर पर ही रखे रहना और माँगने आने पर भेंट ही मत करना। तुम्हें इस कार्य के लिये जो भी हानि उठानी पड़ेगी मैं उसे पूर्ण करूँगा। सम्प्रति सौ मुद्रा तुम्हें दिलाने की व्यवस्था कर दी गई है।' धोबी को इस सरल काम के स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं हुई।

धोबी भी सामान्य धोबी नहीं था। राजा ने एक वर्ष के लिए यदि आज्ञा दी थी तो क्या वह एक वर्ष भी और न लगता। दो वर्ष पूरे बीत गये धोबी ने कपड़ा नहीं दिया। बेचारे निःस्व कल्पक का बाहर निकलना भी बन्द हो गया। नग्न होने की स्थिति आ गई। ब्राह्मणी ने बहुत परेशान किया। दिन में बीसों बार की फटकार से उनका गम्भीर मानस भी उद्वेलित हो गया। चन्दन से आग निकल पड़ी अन्ततः एक दिन सवेरे ही उठकर गये तो धोबी से भेंट हो गई। पुरुषार्थी कल्पक के तलवार की एक लघु चोट से धोबी का शिर भूमि पर नाचने लगा। सारे ग्राम में हो हल्ला मच गया। अभागिनी धोबिन ने भरी भीड़ में यह रोते रोते स्वीकार किया कि मेरे सौभाग्य को राजा ने लूटा है। उन्हीं की आज्ञा थी कि कपड़े न दिये जायँ। धोबिन के करुण क्रन्दन से कल्पक को बड़ी ग्लानि हुई; पर अब कर ही क्या सकते थे।

राजदरबार में अपराधी कल्पक ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। राजा ने अपने विशेषाधिकार से कल्पक को क्षमादान किया और पुनः अनुरोध किया कि' मेरा ही सब किया धरा है। आप मन्त्रिपद स्वीकार कर लें। मेरी ओर से अथवा प्रजावर्ग की ओर से कोई कठिनाई न होने पावेगी। आप अपनी इच्छा के अनुसार राज्य का सारा प्रबन्ध कीजिये।' इस बार कल्पक से राजा का अनुरोध टाला नहीं जा सका। किन्तु कल्पक के महामात्य हो जाने पर पुराने महामात्य को बड़ी जलन हुई। उसने किसी प्रकार कल्पक को अपमानित करने का मौका ढूंढ़ने का निश्चय कर लिया।

संयोगतः कल्पक के पुत्र का विवाह होनेवाला था। उनकी विशेष इच्छा हुई कि उत्सव समारोह में राजानन्द को अपने घर में बुला कर सम्मानित किया जाय। अतः राजा की प्रतिष्ठा के अनुकूल उन्होंने अपने मूल्य से नवीन छत्र, चमर, मुकुट आदि प्रस्तुत करने समारम्भ किया। दासी द्वारा कल्पक के इस निश्चय का पता पुराने मन्त्री को चल गया। उसने राजा से यह कहा कि 'कल्पक स्वयं राजा बनने की चेष्टा में हैं। यदि महाराज को विश्वास न हो तो गुप्तचर द्वारा जाँच करा के हमारे कथन की परीक्षा ले सकते हैं'। नन्द ने गुप्तचर भेजे। गुप्तचरों नें आकर राजा से निवेदन किया कि 'महाराज! कल्पक ने छत्र चमर मुकुट सिंहासनादि ऐसे अवश्य बनवा लिये हैं जो किसी राजा के योग्य हो सकते हैं। नन्द के मन में सन्देह की पुष्टि हो गई। उसने तुरन्त परिवार समेत कल्पक को अन्धकूप कारागार में बन्द करवा दिया और प्रतिदिन सब के भोजन के लिये कोदो देने का आदेश किया। थोड़े ही दिनों में निराहार रहने से कल्पक के पुत्रादिकों का देहान्त हो गया। किसी प्रकार वह जीवित शेष रह सका। इधर थोड़े ही दिनों में सामन्तों ने नन्द को पराजित कर पाटलिपुत्र पर अधिकार जमा लिया। उस भीषण विपत्ति में राजा ने अपराधी कल्पक का स्मरण

किया। कूप कारागार से निकल कर कल्पक राजा के सामने लाया गया। राजा ने कल्पक से विशेष रूप से क्षमा याचना की और पुनः मन्त्रिपद अंगीकार करने की प्रार्थना की। निष्कपट कल्पक को राजा की अविवेकिता का पूरा पता था। वे जानते थे कि मेरे बन्दी बनाने में पुराने मन्त्री का हाथ था। राजा का अपराध केवल इतना था कि वह बिना विचार किये ही उसकी बातों में आ गया था। कारागार की यातनाओं एवं पुत्रादिकों के दयनीय मरण को भूल कर वे पुनः सैन्य संगठन एवं राज्य के पुनः स्थापन में दत्तचित्त हो गये। थोड़े ही दिनों में विद्रोही सामन्त राज्य छोड़कर भाग गये। नन्द अपने साम्राज्य का पूर्ववत् पुनः एकच्छत्र शासक बना।

कूप कारागार से निकलने के बाद कल्पक के अन्य कई पुत्र उत्पन्न हुए। नन्द ने उन सब के लिए पुत्रवत् पालन पोषण एवं अध्ययनादि की व्यवस्था की।

तदनन्तर नन्दवंश के नवम राजा के शासनकाल में कल्पक का ज्येष्ठ शकटाल महामात्य पद पर प्रतिष्ठित हुआ। शकटार के स्थूलभद्र और श्रीयक दो पुत्र तथा यक्षा, यक्षदत्ता, भूता भूतदत्ता, एणिका, वेणा और रेणा नामक कन्यायें थीं।

नवम् सम्राट नन्द की सभा में संस्कृत के सुविख्यात प्रकाण्ड विद्वान् एवं वररुचि भी रहते थे। वे प्रतिदिन एक सौ आठ नवीन श्लोक बनाकर राजा को सभा में सुनाते थे। महामात्य शकटार बहुत ही स्वाभिमानी एवं गम्भीर प्रकृति के थे। वररुचि की कविता यद्यपि सम्राट को बहुत अच्छी लगती थी; पर शकटार ने उसकी प्रशंसा नहीं की। इसीलिए सम्राट प्रसन्न होने पर भी पुरस्कार आदि देने की कभी बात भी न करता। वररुचि अपनी निर्धनता से बहुत परेशान हो गये थे। में उन्होंने शकटार की स्त्री से उपालम्भ देने की बात सोची। शकटार के घर में वररुचि का आवागमन होता था, इसलिए इस कार्य में उन्हें कोई कठिनता नहीं हुई। ऐसे कार्यों में स्त्रियों की स्वाभाविक करुणा बहुत अधिक कारगर हो जाती है। शकटार की पत्नी ने न केवल महामात्य से उनका कार्य कराने का बचन ही दिया, उसने प्रचुर पुरस्कार देकर कभी कभी आते रहने की अभ्यर्थना भी की। वररुचि को आशा की किरण दिखाई पड़ने लगी।

दूसरे दिन सभा में वररुचि के श्लोकों की महामात्य ने बड़ी प्रशंसा की, यद्यपि वे अन्य दिनों जैसे ही थे। सम्राट् ने भी बड़ी प्रशंसा की सारी सभा में प्रशंसा की लहर दौड़ गई। वररुचि गद्गद् होकर कृतज्ञता भरे नेत्रों से चारों ओर देखने लगे। सम्राट् ने कोषाध्यक्ष को एक सौ आठ सुवर्ण मुद्राएं पुरस्कार रूप में देने की आज्ञा दी। इस प्रकार वररुचि को प्रतिदिन एकसौ आठ दीनार मिलने लगे।

दरिद्रता दूर हो गई। आनन्द के साथ उनका शास्त्र चिन्तन अबाध रूप से चलने लगा। एक दिन महामात्य ने सम्राट से पूछा—'महाराज! अब आप प्रतिदिन वररुचि को पुरस्कार देते हैं, किन्तु पहले बहुत दिनों तक कुछ भी नहीं देते थे। इसका क्या कारण था?' सम्राट ने उत्तर दिया— 'सौम्य! अब तुम भी उसकी कविता की प्रशंसा किया करते हो, इसीलिए देता हूँ। पहले तो तुम बिल्कुल चुप रहते थे, इसीलिए नहीं देता था।'

महामात्य को भरी सभा में वररुचि की प्रशंसा अच्छी नहीं लगती थी। वह अपनी स्त्री से बाध्य हो गया था। किन्तु इधर वररुचि की समृद्धि को देखकर वह और अधिक ईर्ष्यालु बन गया था। उसने कहा—'महाराज! उधर की कविताएँ वररुचि की बनाई होती थी; उनमें कोई काव्य सौन्दर्य नहीं होता था, अतः मुझे वे पसन्द नहीं आती थीं। इधर जब से वह दूसरों की बनाई कविताएं सुनाने लगा है, तबसे मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। और इसीलिए मैं प्रशंसा किया करता हूँ। इसका कोई दूसरा कारण नहीं था, राजा को बड़ा विस्मय हुआ। वररुचि की विद्वत्ता प्रतिभा एवं कवित्व शक्ति से वह पूर्ण परिचित था। महामात्य की बातें उसे अच्छी नहीं लगीं। उसने रोष के स्वर में कहा—'तुम्हें यह कैसे विदित हुआ कि वररुचि दूसरे की कविताएं सुनाया करता है। इसका प्रमाण देना होगा। कूटनीतिज्ञ शकटार ने कहा—'महाराज! मैं यह तो नहीं जानता कि वररुचि किस कवि की कविताएं सुनाता है किन्तु इतना जानता हूँ कि वह जिन कविताओं को सुनाता है, ठीक उन्हीं को मेरी पुत्रियाँ भी सुनाया करती हैं। यदि महाराज को प्रतीति करनी हो तो मैं उन्हें बुलाकर सत्य कर दूं।' समाट ने शकटार का अनुमोदन किया।

शकटार की उपर्युक्त सातों कन्यायें विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न थीं। उनमें सबसे बड़ी जो यक्षा थी, उसकी धारणा शक्ति तो इतनी अद्भुत थी कि एक बार भी जिस विषय को सुन लेती थी उसे ग्रहण कर के सुना देती थी। इसी प्रकार दूसरी यक्षदत्ता दो बार में ग्रहण कर लेती थी। तीसरी तीन बार में और चौथी चार बार में। इसी प्रकार सातवीं सात बार सुनकर ग्रहण कर लेती थी। दूसरे दिन वररुचि को बिना सूचना दिये ही शकटार अपनी कन्याओं को साथ लेकर सभा में उपस्थित हुआ। नित्य के क्रम से वररुचि ने उस दिन जिन एक-सौ आठ श्लोकों को पढ़कर सुनाया, उन्हें शकटार की प्रेरणा से उसकी ज्येष्ठा पुत्री यक्षा ने दुहरा दिया। यक्षा के बाद यक्षदत्ता ने भी उसे सुना दिया। इसी क्रम से शकटार की उन सातों पुत्रियों ने वररुचि के श्लोकों को सभा में सुनाकर सब को आश्चर्य चकित कर दिया। स्वयं सम्राट हतप्रभ हो गया। वररुचि की मनोदशा का अनुमान पाठक स्वयं कर सकते हैं। बेचारे

पर घड़ों पानी पड़ गया। सभा में चारों ओर से शर्म शर्म की आवाज कसी जाने। अपने इस कृत्य की वे क्या सफाई दे सकते थे ? स्वयं आश्चर्य दुःख एवं अपमान इतने आकुल हो गये कि दरबार से उठकर चले आये। और दरबार में जाना बन्द कर दिया।

कुछ दिनों बाद वररुचि का शोक जब कुछ कम हो गया तब उन्होंने उपाय सोचा। सुवर्ण की मुद्राएँ पास में थीं ही। एक यन्त्र में एक सौ आठ मुद्राएँ रखकर गुप्त रीति से सायंकाल के समय गङ्गा में रख आते थे। दूसरे दिन प्रातः सब के सामने जब सन्ध्या वन्दन के अनन्तर गंगा की स्तुति करने लगते तो यन्त्र में गई एक सौ आठ सुवर्ण मुद्राएँ उनकी अञ्जलि में आ पड़तीं। और इस प्रकार मुद्राओं को लेकर वे प्रसन्न मन घर को चल देते। थोड़े ही दिनों में इस घटना की चर्चा सर्वत्र फैल गई। वररुचि ने भी अपनी ओर से इसे प्रचारित करने में कुछ कोर कसर नहीं रखी। सभा के अनेक सभ्यों से उन्होंने कहा कि यदि सम्राट अब मुद्राएँ नहीं देते तो हमारी कोई हानि नहीं होती। गंगा स्वयं हमारे स्तवन से प्रसन्न होकर हमें उतनी मुद्राएँ प्रदान करती हैं।'

सम्राट् नन्द को जब यह बात मालूम पड़ी तो उन्होंने शकटार को बुलाकर कहा कि तुम इस बात की स्वयं परीक्षा करो, नीति निपुण शकटार को वररुचि की चतुरता का तभी से पता चल गया था जब से वह उसकी स्त्री के पास उपाय लेकर आया था। उसने कहा—'महाराज ! मुझे तो यह बात बहुत आश्चर्य जनक प्रतीत हो रही है। किन्तु बिना परीक्षा किये अभी मैं कुछ भी नहीं कह सकता। आज ही पता लगाता हूँ।' दरबार से वापस लौटकर शकटार ने वररुचि के पीछे गुप्तचर बैठा दिये। सांयकाल के समय स्त्री वेशधारी गुप्तचरों ने वररुचि की अभिसन्धि का पता लगा लिया। दूसरे दिन शकटार की आज्ञा से उन गुप्तचरों ने गंगा में सन्ध्या के समय एक सौ आठ दीनार रखकर वररुचि के चले आने के बाद दीनारों को उठा लिया और लाकर शकटार को निवेदित किया। उसी रात में शकटार ने सम्राट से जाकर कहा—'महाराज ! कल प्रातःकाल वररुचि के कथन को सत्य प्रमाणित करने के लिए आप को गंगा तट पर चलना होगा। अन्य सभ्यों की उपस्थिति भी वहाँ आवश्यक प्रतीत होती है। सम्राट ने 'तथास्तु' कहकर सभासदों के नाम दूसरे दिन प्रातःकाल गङ्गा तट पर उपस्थित होने की सूचना निकालने का आदेश किया। वररुचि प्रातःकाल गङ्गा तट पर पहुँचे ही थे कि सम्राट् ने सभासदों के साथ पहुँच कर उनका सम्मान किया और कहा—'कविवर ! हम सब आपके अद्भुत कार्य को देखने के लिए यहाँ आये हुए हैं। बड़ा अनुग्रह होगा यदि आप हम सब के कुतूहल को शान्त करें।

वररुचि ने स्वाभिमान प्रकट करते हुए विश्वास के स्वर में कहा—'महाराज ! गुणज्ञों की कमी संसार में नहीं है। यदि कमी है तो केवल गुणियों की। यदि महामात्य के षड्यन्त्र से अपाने पुरस्कार देना बन्द कर दिया तो क्या जगज्जननी का मातृहृदय भी न पसीजता। ठहरिये। स्नान तथा सन्ध्या से निवृत्त हो लूँ तब आप लोगों की उत्कण्ठा शान्त करूँ।'

गङ्गा के पावन तट पर दर्शकगण कुतूहल में डूब उतरा रहे थे। सम्राट भी वररुचि की शक्ति पर आश्चर्य चकित हो रहा था। किन्तु महामात्य शकटार की मुखमुद्रा पूर्ववत् गम्भीर संयत और स्वाभाविक थी। थोड़ी ही देर में कविवर वररुचि स्नान तथा सन्ध्याचन्दन से निवृत्त हो गये और अपना स्तवन सुनाने लगे। दर्शकों की मण्डली में काना-फूसी बन्द हो गई। सब निर्निमेष नेत्रों से खड़े होकर वररुचि का स्तवन सुनने लगे। दर्शकों के लिये एक-एक पद के उच्चारण में कविवर की शक्ति स्वरों के साथ फूट फूट कर निकल रही थी। किन्तु स्वयं कविवर एक ओर तो स्तवन पढ़ता था दूसरी ओर यन्त्र की बाट देखता था। 'जगज्जननी' के 'मातृहृदय' से बढ़कर उसे अपने 'कृतित्व' पर भरोसा था। यह क्या हुआ ? स्तवन समाप्ति पर आ गया; पर यन्त्र के अभी तक दर्शन ही नहीं हुए। देखते-देखते स्तवन समाप्त भी हो गया; पर जगज्जननी ने अपने अभिमानी पुत्र की खबर नहीं ली। दर्शक मण्डली निस्तब्ध एवं निर्निमेष होकर गङ्गा जीके 'मातृ हृदय' की परीक्षा ले रहा था। स्तवन समाप्ति के बाद भी कविवर दर्शकों के असंख्य नेत्रों का दयनीय लक्ष्य बनकर गङ्गा की वेगवती धारा में खड़ा रहा। और उसकी 'जगज्जननी' अपने प्रवाह की ध्वनि से मानों यह कहती हुई कि 'मेरे अबोध बच्चे ! अभिमानी का कहीं भला नहीं होता।' बहती चली जा रही थीं। क्षण भर के लिए भी उनका रुकना सम्भव नहीं हुआ। कविवर निराश हो गया। उसकी बची खुची कीर्ति भी आज न जाने किस द्वेषाग्नि की हवि बन गई थी। अब वह क्या करता। कुछ सोच नहीं पा रहा था।

इतनी बड़ी भीड़ में लज्जित होने का उसका यह दूसरा अवसर था वह सब के सामने चुपचाप शिर नीचा किये हुए खड़ा था कि महामात्य ने यंत्र समेत एक सौ आठ दीनारों को दिखाते हुए, परिहास के स्वर में उस से कहा—'कविवर ! ये लो। तुम्हारे दीनार यंत्र समेत तुम्हारे हाथों में जाने के लिए छटपटा रहे हैं। जितनी बुद्धि तुम इन सब छलपूर्ण कार्यों में लगाते हो उतनी ही यदि सत्य कार्यों में लगाते तो भी भोजन का घाटा न होता। ब्राह्मण जानकर तुम्हारे प्राण छोड़े जा रहे हैं। अन्यथा नन्दवंश का वर्तमान् सम्राट ऐसे पाषण्डियों का सहज शत्रु है।

वररुचि चुप रहने के सिवा क्या करता। धीरे धीरे सम्राट के समेत सारे दर्शक

मण्डली उस हत भाग्य को छोड़कर यथास्थान चली गई। चारों ओर सन्नाटा
वह भी चुपचाप अपने घर को चला आया, मट्टी की तरह उसका बदन
गया था; और हृदय में द्वेष की अग्नि धधक रही थी। तीन दिन रात वह
चारपाई से नहीं उठ सका। इस बीच में ब्राह्मणी के अनुरोध, विनत
सान्त्वना का भी कोई फल नहीं हुआ। चौथे दिन सबेरे उठकर उसने ब्राह्म
अपने निश्चय की सूचना दी कि, अब मेरे शेष जीवन का यही ध्येय है कि जिस
से भी सम्भव होगा उस दुष्टात्मा शकटार का सर्वनाश करूँगा।'

जनापवादों के बीच जीवन अत्यन्त दुर्बल बन जाता है। चार छ दिनों तक
नगर में जिस ओर वररुचि जाता, उसी ओर एक लहर सी दौड़ जाती। बाल
स्त्री, पुरुष सभी उसके आलोचक थे। ऐसी विषय परिस्थिति में उसे यदि कोई
मिला था तो वही अपना निश्चय। वही एक आशा का दीपक था, जो अपमान
अप्रतिष्ठा के घोर अन्धकार से आच्छन्न जीवन को कुछ गति दे सकता था। धीरे
जनता के मनोभाव भी बदल गये। कुछ वृद्धों ने अपनी उदारता दिखाई सहानु
एवं समवेदना प्रकट करने वाले उन नागरिक वृद्धों से वररुचि को बहुत बल मि
विद्वान् एवं नीतिनिपुण तो वह था ही धीरे धीरे नगर के अधिकांश नागरिकों के
में भी उसने अपना पूर्व स्थान प्राप्त कर लिया। इस अनुकूल परिस्थिति में
अपने ध्येय को कार्यरूप में परिणत करने का अच्छा अवसर मिल गया।

शकटार के गम्भीर एवं अभिमानी व्यक्तित्व के कारण नगर में
प्रशंसकों की कमी तो पहले ही से थी, वररुचि ने शत्रुओं की संख्या में वृद्धि क
रात दिन उसके कार्यों की वह ऐसी व्याख्या करता कि जनता की दृष्टि में
कार्य केवल हानिप्रद दिखाई पड़ते। यों भी राज्य के उच्च पदाधिकारियों के
जनता की भक्ति भावना जितनी सरल होती है उतनी ही कठिन भी। एक छोटे
कार्य में भी यदि जनता के स्वार्थ की कुछ हानि हुई तो राम-सा शासक
रावण बन जाता है। उन दिनों दैव दुर्विपाक से महामात्य के ज्येष्ठ पुत्र
विवाहोत्सव था। स्वाभिमानी शकटार ने नगर के सम्मानित जनों का
समादर करने से साफ इनकार कर दिया था। सारे नगर में उसके
सामान्यकार्य की अनर्थकारी आलोचना हो रही थी। उपयुक्त समय एवं प
से तैयार की गई भूमि में वररुचि ने अपने पूर्ववैर का बीजारोपण कर दिया।
के सौ मूर्ख लड़कों को बुलाकर उसने एकान्त में मिष्ठान्न वितरण किया और उन्हें
भली भाँति रटा दिया कि 'सम्राट् को यह विदित नहीं है कि शकटार क्या कर
वह नन्द का समूल नाशकर अपने पुत्र श्रीयक को गद्दी पर बिठाना चाहता है।

ऊधमी लड़कों को नित्य मिष्ठान्न देने का जब वचन दिया गया था तो वे सारे नगर में घूम घूम कर नाच नाच कर उक्त वाक्य का प्रचार क्यों न करते ? एक दिन दस-बीस धृष्ठ बालकों ने राजमहल के सामने दिन भर गाते रहने का बीड़ा लिया। वररुचि की तदबीर सध गई। अविवेकी एवं भीरुनन्द के कानों में लड़कों की बातें पड़ गईं। उसी दिन सारे नगर के सम्भ्रान्त नागरिकों ने भी, जो शकटार से जले बैठे थे, आकर सम्राट् को इस अनिष्ट की सूचना देने का अच्छा अवसर समझा। उन्होंने कहा—'महाराज। लड़कों की बातें झूठी नहीं हो सकतीं। आजकल महामात्य का मस्तिष्क सचमुच ठिकाने नहीं है। इसकी जाँच होनी चाहिये। और यदि बात सच हो तो कठोर से भी कठोर दण्ड देना चाहिये।' भीरु सम्राट का मानस उद्वेलित हो गया। उसने तुरन्त प्रधान सेनापति को बुलाकर यह आज्ञा दी कि 'कल सबेरे महामात्य का घर घेर लो और उसे बन्दी बना लो।'

जैसे कि ऊपर कहा जा चुका है, शकटार ने ज्येष्ठ पुत्र के विवाहोत्सव के समारोह में विविध प्रकार के शस्त्रास्त्र भी सम्राट को उपहार स्वरूप देने के लिए प्रस्तुत करवाये थे। इसी प्रकार दो उत्तमोत्तम सिंहासन भी बनवाये थे। यदि तलाशी ली जाती तो अविवेकी नन्द से यह कहने का उसे अवसर न मिलता कि ये सब सामान आप को भेंट करने के लिए ही बनवाये गये हैं। तुरन्त वंश समेत उसको कत्ल कर देने की आज्ञा वह दे देता! शकटार जैसे कूटनीतिज्ञ को इस समाचार के सुनने में देर नहीं लगी! थोड़ी ही देर में उसने देखा कि उसके महल को चारों ओर से गुप्तचरों ने घेर लिया है। इस आकस्मिक भीषण परिस्थिति का सामना करने के लिए वह तैयार हो गया।

अपने प्रियपुत्र श्रीयक को बुला कर उसने कहा—'वत्स! हम लोगों' की मृत्यु इतनी आसन्न है कि कुछ विचार करने का अवसर भी नहीं है। इसलिए मैं जो कुछ भी आज्ञा करूँ, उसका बिना विकल्प के तुम्हें पालन करना होगा। मैंने अपनी आयु का बहुत भाग सुखपूर्वक बिता लिया है। तुम लोगों को अभी अच्छे दिन देखने हैं। इसलिए यदि मेरी मृत्यु से तुम सब की प्राणरक्षा हो जाय तो उससे बढ़कर और अच्छा क्या हो सकेगा। कल प्रातःकाल होते ही तुम मेरे साथ तलवार लेकर राजदरबार में उपस्थित होओ जिस समय मैं राजा के समीप जाकर अभिवादन करने के लिए मस्तक झुकाऊँ उसी समय तुम तलवार से एक चोट में मेरा मस्तक अलग कर दो। क्योंकि इसके सिवा अब अन्य कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे तुम लोगों की रक्षा हो सके। मेरे विरोधी वररुचि ने जनमत को भी मेरे विपरीत कर दिया है। मेरा विश्वास न केवल सम्राट से ही प्रत्युत जनता से भी उठ गया है ऐसी स्थिति में तुम

लोगों के कल्याण का कोई अन्य मार्ग मुझे नहीं सूझता ।

श्रीयक शकटार की इन बातों को सुनकर संज्ञाहीन रह गया । कहाँ विवा... उत्सव समारोह और कहाँ भीषण विनाश । उसकी किशोर बुद्धि कुण्ठित हो... अश्रु के अविरल प्रवाह से सारा मुखमण्डल एक ही क्षण में आभा हीन हो ग... कण्ठ गद्गद हो गया वह किसी प्रकार भी अपने को सँभाल नहीं सका । शक... विशाल बाहें यदि उसे थाम न लेतीं तो वह पृथ्वी पर गिर पड़ता । थोड़ी दे... चुप रहने के बाद वह बोला—'मेरे तात ! क्या तुम इतना अधिक प्यार ह... करते थे कि मैं तुम्हें तलवार की एक चोट से चिर शान्ति दूँ । ऐसा कठोर का... चाण्डालों से भी नहीं हो सकता जो नित्य के अभ्यासी होते हैं । आप की गो... अपना शिर रखकर मृत्यु को प्राप्त कर लेने में मुझे जो सुख मिलेगा, वह आपके... सारे त्रैलोक्य के साम्राज्य पाने से भी मुझे कहाँ मिलेगा ? ऐसा कठोर आदेश... मत दीजिये । अपने जीवन में मैंने कभी अपका आदेश टाला नहीं है ? रात... लिए कृपया ऐसा मत करिये । यह निश्चय समझ लीजिये कि श्रीयक आपके... के सामने त्रैलोक्य का सिंहासन भी नहीं चाहता ।

कठोर हिमवान् के निगूढ़ अन्तर्प्रदेश से स्रोतस्विनी की अविरल धारा फूट... शकटार का गम्भीर एवं संयत हृदय श्रीयक की निरीहता से आन्दोलित हो... मृत्यु की भीषण विभीषिका का तो उसने अब तक स्मरण ही नहीं किया था किन्तु... विरह के कठोर सत्य को कैसे नकारता । अश्रुजल से उसकी मूँछें और दाढ़ी ए... भींग गईं । स्वर को कुछ कठोर एवं संयत बनाकर उसने बोलने की चेष्टा की । '... कापुरुषता तुम्हारे लिए होगी—ऐसा मैंने कभी अनुमान भी नहीं किया था । ... संसार में जन्म लेकर कौन अमर हुआ है ! जिस प्रेम की तुम दुहाई दे रहे हो... स्वार्थ पर आधारित है । यहाँ कौन किसका पिता और कौन किसका पुत्र ? मनुष्य ... और मृत्यु के समय अकेला ही रहता है । शरीर भी साथ छोड़ देता है । इतने दि... तक हम दोनों का साथ रहा, अब नहीं रह सकता । परमात्मा को अब हमारी सं... अभिप्रेत नहीं है, अन्यथा ऐसे अप्रत्याशित अकाण्ड ताण्डव की सृष्टि किस प्रका... जाती । अब कुछ नहीं हो सकता । मैं जो कुछ कह रहा हूँ, तुम्हें करना होगा । ... मेरी अन्तिम इच्छा है । मेरी इच्छाएँ तुमसे कभी विफल नहीं हुई हैं । अब मैं... विषय में कुछ अधिक नहीं सुनना चाहता ।

श्रीयक चुप हो गया । सारे परिवार में किसी दूसरे प्राणी को इसकी सू... नहीं दी गई । दूसरे दिन प्रातःकाल शकटार ने यथासमय सम्राट् को अन्तिम ... वादन किया । यन्त्र की तरह देखते ही देखते श्रीयक ने अपने पूज्य पिता की ...

इच्छा पूरी की। सम्राट् आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने देखा कि सामने महामात्य का शरीर दो खण्डों में विभक्त होकर अपना अन्तिम अभिवादन कर रहा है। और फिर अन्त में मुख पर वही अन्तिम हँसी। अतिशय भय से विकम्पित होकर सम्राट् ने पूछा—अरे श्रीयक! यह क्या हो गया? कहीं तुम पागल तो नहीं हो गये हो।' पितृभक्त श्रीयक ने दृढ़ एवं स्वाभाविक स्वर में पिता का सिखाया हुआ वचन दुहराया। 'महाराज! सेवक होकर जो अपने प्रभु के अनिष्ट की चेष्टा करता है वह पिता ही क्यों न हो इसी तरह मारने योग्य है।' सम्राट् नन्द श्रीयक की राजभक्ति को देखकर आश्चर्य में आ गये। उन्हें विश्वास हो गया कि महामात्य उत्तम गजराज की भाँति मरकर हमें एक अनुपम मुक्ता दे गया है जो मूल्य में उससे कहीं अधिक है।'

भरी सभा में सम्राट् नन्द ने श्रीयक को महामात्य पद प्रदान करने की घोषणा की, किन्तु अपने बड़े भाई स्थूलभद्र के रहते हुए श्रीयक ने उक्त पद स्वीकार करने में असमर्थता प्रकट की। तब बाध्य होकर सम्राट् ने स्थूलभद्र से महामात्य का पद स्वीकार करने की अभ्यर्थना की। स्थूलभद्र अवसाधु प्रकृति के महापुरुष होगये थे। उनके मन में ऐहिक ऐश्वर्यों के प्रति कोई राग नहीं था। उन्होंने साफ जवाब दे दिया। तब श्रीयक ने अपने पिता का पद अंगीकार किया।

इधर शकटार की मृत्यु के उपरान्त कविवर वररुचि का प्रवेश राज सभा में पुनः हो गया। सभासदों में अनेक उनके प्रशंसक थे ही, सम्राट् भी उनका पूर्ववत् सम्मान करने लगे। शकटार की मृत्यु हो जाने से वररुचि अपने उद्देश्य में सफल हो गये। उनकी सारी तितिक्षा एवं विरक्ति जो अपमान के कारण उत्पन्न हुई थी, अब बीत गई। एक नये जोश एवं नये उत्साह को लेकर वे प्रतिदिन सभा में सफलता के साथ साथ यशोवृद्धि प्राप्त करने लगे। किसी प्रति द्वन्दी के अभाव में उनकी सारी चिन्ताएँ बीत गई थीं। शकटार के साथ साथ हृदय का काँटा सर्वदा के लिए निकल गया था।

पितृभक्त युवा श्रीयक अपने पिता के अन्तिम वाक्यों को कैसे भूलता? राज-सभा में उत्तरोत्तर बढ़नेवाले वररुचि के सम्मान को वह देख-देखकर मनही मन मसोस कर रह जाता। वररुचि से वैर का प्रतिशोध करने के लिए उसने ठान ली।

श्रीयक का बड़ा भाई स्थूलभद्र अपने यौवन के प्रारम्भिक दिनों में सामन्तों के बिगड़े राजकुमारों की संगति से बहुत भ्रष्ट हो गया था। यही कारण था कि शकटार ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी उसे प्यार नहीं करता था। पाटलिपुत्र की परम सुन्दरी वेश्या कोशा पर वह इतना आसक्त था कि रात दिन उसी के भवन में पड़ा रहता। पिता की इस आकस्मिक मृत्यु ने ही उसको विरक्त बना दिया था। जब श्रीयक ने माहामात्य का पद स्वीकार किया। तभी वह भी वैरवानसी वृत्ति स्वीकार कर वन को

चला गया। उसके वियोग से कोशा भी बहुत दुःखी थी। एक दिन रात्रि के
श्रीयक कोशा के पास गये और उससे रोते हुए बोले—'भद्रे ! मेरे बड़े भाई पिता
आकस्मिक मृत्यु से इतने शोकाकुल हो गये कि सब कुछ छोड़-छाड़कर वन को
गये। दुष्ट वररुचि ही मेरे पूज्य पितृदेव की मृत्यु का कारण है। भाई साहब के
जाने से हम सभी लोग दुःखी हैं। अतः उस दुष्ट से बदला लेना हम सबों का
है।' कोशा को श्रीयक की बात ठीक लगी। उसने सान्त्वना देते हुए कहा—'सौम्य
आप चिन्तित न हों। मैं उसकी खबर लूंगी। आप इस ओर के एकदम निश्चिन्त
मुझे अब तक इस बात का पता नहीं था अन्यथा उसे कभी इसका फल मिल जाता

राजसभा में पूर्ववत् सम्मान प्राप्त कर लेने तथा शकटार के मर जाने के
वररुचि निश्चिन्त होकर विलासिता की ओर झुक पड़ा। कोशा की छोटी बहिन
कोशा पर वह ऐसा आसक्त हो गया कि उसको बिना देखे हुए उसे चैन ही
मिलता था। कोशा को यह बात विदित थी। उसने एकान्त में ले जाकर उपको
को यह सिखला दिया कि तुम वररुचि को आज शराब पिला दो।

रात्रि में वररुचि ने आकर उपकोशा को जब प्रसन्न करना चाहा तो
मान प्रकट करते हुए कहा कि—'मुझे शराब के बिना तनिक भी आनन्द नहीं आ
अतः जब तक आप शराब न पीयेंगे, तब तक मैं हृदय से आपको प्यार न कर सकूं

वररुचि का ब्राह्मण अभी इतना पतित नहीं हुआ था। दूसरे राजसभा में
तो उसे जाना था, जहाँ शराब की बू आने पर ही सम्राट् सभासदों को शीशा
करके पिलाने का आदेश देता था। धर्म मर्यादा ही नहीं जाती वरन् प्राण भी
में पड़ते। उसने स्पष्ट कहा—'मानिनि ! ऐसा करना तो मेरे लिए असम्भव है
तुम्हारी आज्ञा से मैं अपने प्राणों को त्याग सकता हूँ, तुम्हारी एक मुस्कान पर
धन सब निछावर कर सकता हूँ, पर इसके लिए तुम फिर से मत कहो।

उपकोशा ने मुस्कराते हुए कहा—'मेरे प्रियतम ! मैं जानती हूँ कि तुम
कितना प्रेम करते हो ! मैं भी तुम्हारे बिना देखे बेचैन रहती हूँ। जब तक तुम
आते, तुम्हारी राह देखती रहती हूँ।

इतना कहकर उपकोशा ने अपनी शिथिल भुजा-लता को वररुचि के
में डाल दिया। वररुचि का ब्राह्मण उस सुन्दरी के एक कटाक्ष की चोट भी नहीं
सका। वह प्रेमोन्मत्त हो गया। अमृत सिन्धु में डूबते हुए की तरह बोला—'प्रिय
यदि ऐसा ही है तो लाओ, तुम्हारे लिए मैं विष पान कर सकता हूँ। यह तो सुरा
है। इसके पान करने में कोई निषेध भी तो नहीं है। सम्राट् नहीं जान सकेंगे तो
कर सकते हैं।'

वराङ्गना उपकोशा ने एक नीलम के चषक में जिस क्षण मुस्कराते हुए वारुणी को देने के लिए अपना हाथ फैलाया, उस क्षण वररुचि को ऐसा मालूम पड़ा मानों साक्षात् लक्ष्मी उसे सुधा कलश दे रही हैं। बिना कुछ सोचे विचारे ही उसने तीन पात्र रिक्त कर दिये। सारी रात आनन्द के साथ बीत गई। केवल मदिरा की अस्पष्ट लेखा आंखों पर अब तक दौड़ती रही।

प्रातःकाल कोशा ने यह भेद श्रीयक को बतला दिया। राजसभा में सम्राट ने वररुचि की अङ्गभंङ्गी एवं निश्चेष्टता को देखा तो सही पर वे कुछ अनुमान नहीं कर सके। इतने ही में सम्राट् की प्रेरणा से महामात्य ने एक तीव्र गन्धी पुष्प की माला कविवर के कण्ठ में डाल दी। उसकी तीक्षण गन्ध से उसका मन मतला उठा। दो एक हिचकी के साथ भरी सभा में वररुचि ने अपक्व मदिरा की कै कर दी। उसके मुख से शराब की भीषण दुर्गन्ध निकल निकल कर सारी राज सभा में व्याप्त हो गई।

पूर्व प्रथा के अनुसार सम्राट् ने अपने कठोर आदेश का तुरन्त पालन करवाया और सभासदों के सामनेही वररुचि को गरम गरम शीशा पिलाया गया। देखते ही देखते कविवर ने ऐहिक लीला संवरण की। पितृभक्त श्रीयक ने अपने पूज्य पिता का वैर चुका लिया।

———

'प्रसाद' जी के कहानी साहित्य में रहस्यवादी तत्व

[त्रिलोकीनारायण दीक्षित बी० ए०, आनर्स एम० ए०, रिसर्च स्कालर,

हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय]

हिन्दी काव्य में, 'प्रसाद', 'निराला' तथा 'पन्त' रहस्यवाद के प्रवर्तक माने जाते है। काव्य के अतिरिक्त कहानी, नाटक, उपन्यास तथा निबन्ध इत्यादि साहित्य के अंगों में भी 'प्रसाद' जी की प्रतिभा चमकती है। प्रसाद जी एक रहस्यवादी तथा भावुक साहित्यिक थे। उनकी ये दोनों विशेषताएँ साहित्य के प्रायः सभी अंगों में दृष्टिगोचर होती हैं। उनकी कहानियाँ भावुकता के लिए तो प्रसिद्ध हैं हीं, साथ ही साथ उनमें प्रस्तुत रहस्यवादी तत्व भी उल्लेखनीय हैं। प्रसाद की अत्यधिक भावुकता के कारण उनकी रचनाओं में रहस्यवादी तत्वों का आ जाना स्वाभाविक है। उनके

कहानी साहित्य के रहस्यवादी तत्वों के विवेचन के पूर्व यह समीचीन होगा कि रहस्यवाद के प्रति निर्धारित उनके दृष्टिकोण का भी निरीक्षण कर लें।

रहस्यवाद नामक अपने लेख में प्रसाद जी ने यह सिद्ध किया है कि रहस्य भारतवर्ष के लिए कोई नवीन वस्तु नहीं है। रहस्यवादी अनुभूतियाँ वेदों में उपलब्ध होती हैं। रहस्यवादी अनुभूतियों का जन्म शैवों के अद्वैत मूलक आनन्द में हुआ था। हमारे पूर्वज आर्य आनन्द, शान्ति तथा सदाचार के सच्चे उपासक अज्ञात, अनादि तथा अनन्त में स्थापित दृढ़ तथा शुद्ध सम्बन्ध की मूल अक्षय आ में निहित रहती है। शैवों की वह आनन्दमूलक अनुभूति रहस्यवाद का प्रारं स्वरूप थी। अद्वैत की भावना अक्षय और क्षयवान् मानव में ऐक्य स्थापित क आनन्द को अनुभव करने का एक प्रयत्न था। "वह भक्ति का आत्मिक स्वरूप आ के अद्वैत की भूमिका पर ही संगठित हुआ...।" इन आगमों के अनुयायी सिद् प्राचीन आनन्द मार्ग को द्वैत की प्रतिष्ठा के साथ अपनी साधना में प्रचलित र और वे इसे रहस्य सम्प्रदाय कहते थे।" प्रसाद जी के रहस्यवाद में अद्वैतवाद त आनन्दवाद स्पष्ट रूप से झलकता है। उनकी रहस्यवादी अनुभूति भावात्मक उसका मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय से अधिक सम्बन्ध है। प्रसाद जी के आनन्द और शैवों के अद्वैतमूलक आनन्दवाद में भिन्नता है। उनकी इस आनन्द अनुभूति वेदना का प्रभुत्व है। इस दृष्टि से उनका आनन्दवाद शुद्ध आनन्दवाद नहीं था परन्तु उस निराशा तथा वेदना के अन्तर्गत भी आनन्द अपनी दृढ़ सत्ता के स वर्तमान है। प्रसाद जी की इस अनुभूति में वैष्णवों की माधुर्य-भावना का सामञ्जस्य उपलब्ध होता है। भावुकता के रंग में अनुरंजित उनका हृदय प्रत्येक व को सौन्दर्यमय ही देखना चाहता था। 'रमला' तथा 'समुद्र संतरण' में तो जैसे माधुर्य-सौन्दर्य से युक्त रहस्यवाद साकार हो उठा है। उस अज्ञात के अखण्ड, अन तथा अनादि सौन्दर्य का आभास पाकर इन दोनों कहानियों के पात्र उससे अ अटूट सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इसी प्रकार 'कला' कहानी में रसदेव की रहस्या अनुभूति माधुर्य तथा सौंदर्य से प्रभावित है।

'समुद्र-संतरण' कहानी का नायक 'सुदर्शन' अपने नाम के अनुसार आ-श्यक गुणों की प्रतिमा है। वह 'सु दर्शन' तथा 'सुदर्शन' दोनों ही है। उसे सत्य शिवं सुन्दरं के साक्षात दर्शन हो गये हैं। वह राजकुमार होते हुए भी सांसारि ऐश्वर्य से घृणा करता है। एक उत्कृष्ट भावुक के समान वह एकान्त-प्रिय तथा आ-म्बरहीन जीवन व्यतीत करना चाहता है। इस कहानी की धीवर बाला तो सौंदर्य देवी है।

राजकुमार की दृष्टि उधर घूम जाती है। 'संध्या कालका समुद्रतट उसकी आंखों में दृश्य के उस पार की वस्तुओं का रेखाचित्र खींच रहा था। जैसे वह जिसको नहीं जानता था उसको कुछ कुछ समझने लगा। और वही समझ, वही चेतना एक रूप रख कर सामने आ गई।" प्रसाद जी के इन शब्दों को पढ़ कर पाठक सोचने लगता है यह कौन सी समझ थी? सम्भवतः यह वही सरल और स्वाभाविक सौंदर्य जिनका अनुमान उसे अभी तक नहीं हुआ था, वही हो सकती है। उसी सत्य तथा सौन्दर्य की अनुभूति उसे आज सहसा होने लगी जिसकी साकार मूर्ति धीवर बाला है। उसके सहज सौन्दर्य को देख कर वह कह उठता है—"सुन्दरी!...तुम्हें देख कर मेरी सोई हुई सौंदर्य तृष्णा जाग गई।" धीवर बाला की रूप माधुरी ने जैसे उसे स्वप्न जगत से जाग्रतावस्था में ला खड़ा किया हो। संसार सौन्दर्य और आनन्द से ओत प्रोत प्रतीत होने लगा। प्रकृति भी हंसती हुई और प्रसन्न दृष्टिगोचर हुई। यह 'सत्यं शिवं सुन्दरं' का आभास पाजाने का परिणाम था। धीवर बाला से परिचय होते ही समस्त रहस्य उद्‌घाटित हो गया। वाह्य तथा अभ्यन्तरिक प्रकृति में साम्य तथा ऐक्य स्थापित हो गया और "अपने में और सब में फैली हुई उस सौन्दर्य की विभूति को देखकर सुदर्शन की तन्मयता उत्कण्ठा में बदल गई...इच्छा होती थी कि वह समुद्र बन जाय। उसकी उद्वेलित लहरों में चन्द्रमा खेला करे और वह हँसा करे।" 'प्रसाद' जी के 'सुदर्शन' का यह 'सागर' 'रस और भावना' का गम्भीर सागर है। भावुकता और अनुभूति की तीव्रता के कारण सुदर्शन ने प्रकृति और अपने में भेदका अभाव पाया। एक बार सत्य तथा सौंदर्य का आभास पाजाने वाले सुदर्शन का हृदय राज्य; धन, ऐश्वर्य से कोसों दूर भागता है। राजकर्मचारी उसे प्रासाद की ओर लौटालाना चाहते हैं। यहां पर कर्मचारी माया 'धन' ऐश्वर्य इत्यादि प्रलोभनों के प्रतीक हैं। सत्य को अनुभव करने वाला असत्य की ओर मुख किस प्रकार घुमाए? त्याग से प्रेरित सुदर्शन भावना के सागर में निमग्न होता हुआ जीवन की अभीप्सित वस्तु को पालेता है और धीवर बाला द्वारा नौका विहार के समय बजाई हुई मुरलिका की मधुमय कर्णप्रिय तान सुन रहा है। भावना के सागर में निमग्न होने से पहले धीवर बाला उधर से अपनी नौका लेकर निकली और पूछने लगी "आओगे"? सुदर्शन के हृदय से सहसा प्रश्न होता है "कहां ले चलोगी? पृथ्वी से दूर जल राज्य में; जहां कठोरता नहीं केवल शीतल कोमल और तरल आलिंगन है, प्रवंचना नहीं सीधा आत्म विश्वास है, वैभव नहीं सरल सौंदर्य है।" फिर "धीवर बाला ने हाथ पकड़ कर सुदर्शन को नाव पर खींच लिया। दोनों हँसने लगे। चन्द्रमा और जलनिधि भी।"—दुखों के बादल कट जाने पर तथा उस के सम्पर्क से

आत्मा प्रफुल्लित हो गई। सारे संकट नष्ट हो गए। तभी प्रकृति भी प्रफुल्लित हो
'वैरागी' में भी रहस्यवादी तत्व उपलब्ध होते हैं। इस कहानी
अस्पष्टताएं रहस्योद्घाटन करती हैं—"इस कुटी का मोह तुमसे नहीं टूटा।
समभागी होने का भय तुम्हारे लिए न उत्पन्न करूँगी" तथा "मुझे कोई पुकार
तुम इस कुटी को देखना" कह कर वैरागी अंधकार में विलीन हो गया।
पुकारना, अंधकार इत्यादि रहस्यवादी तत्वों की ओर संकेत करते हैं। वैरा
आत्मा अनन्त में मिल जाने की इच्छुक थी। वह उसी ओर अज्ञात शक्ति द्वारा
भी जा रहा था। यही सब रहस्य का आभास है।

'कमला' कहानी में हमें अज्ञात सौंदर्य का आभास मिलता है।
को प्रकृति के सौंदर्य में अनन्त का सौंदर्य प्रतिबिम्बित प्रतीत होता है।
उसी पर अपने को न्योछावर कर देता है। "प्रशान्त रमला में एक चमकीला
खिलने लगा; साजन ने आँख उठा कर देखा—पहाड़ी की चोटी पर एक
रमला के उदास गाल पर सौभाग्य चिन्ह सी चमक उठी थी देखते देखते हो
का वृक्ष नक्षत्रों के हार से सुशोभित हो उठा" यहाँ पर युवती रमला ही स्वयं
में प्रतिबिम्बित दृष्टिगोचर होती है। वास्तव में यहाँ रमला प्रकृति की प्रतीक मात्र

प्रसाद जी की 'ज्योतिष्मती' कहानी में भी रहस्यवादी तत्वों का
स्पष्ट रूप मे मिलता है। वनमाला कहती है "सुनो, सुनो जिससे चन्द्र
ज्योतिष्मती रजनी के चारो पहर बिना पलक लगे प्रिय की निश्चल चिन्ता
बिताये हो उसे ज्योतिष्मती न देनी चाहिए।" ज्योतिष्मती के लिए इतना
क्यों करना पड़ता यह एक विचारणीय बात है और जब ज्योतिष्मती पर अदृश्य
की छाया पड़ती है तो रहस्य अपनी सीमा तक पहुँच जाता है।

अज्ञात तया अनन्त के प्रति अद्वितीय लगन का सुन्दर उदाहरण हमें
जी की 'गुदड़ सांई", कहानी में मिलता है। पूछे जाने पर गुदड़ सांई कहता है
चीथड़े को लेकर भागते हैं भगवान् और मैं उनसे लड़कर छीन लेता हूँ, रखता हूँ
उन्हीं के छिनवाने के लिए उनके मनोविनोद के लिए। सोने का खिलौना तो सब
छीनता है पर चीथड़ों पर भगवान ही दया करते हैं।" गुदड़ सांई छोटे-छोटे
ही भगवान का प्रतीक मानता है। बालकों से गुदड़ी की छीना-झपटी का
सांई के लिए कितना महत्वपूर्ण है। अबोध बालकों का सरल हृदय सत्यं शिवं
से, वास्तव में, कभी भी दूरत्व नहीं रखा वरन् चिर नैकट्य है।

उनकी 'प्रलय' कहानी में 'आत्मा' तथा 'परमात्मा' के अद्वैत की
अभिव्यंजित है। इस कहानी में उस आत्मा का चित्रण है जिसने यह जान

कि 'मैं' और 'वह' भिन्न-भिन्न नहीं हूँ और जिसकी आत्मा से 'अहम् ब्रह्मास्मि' का कल्याणकारी राग फूट चुका है।

रेडियो विरोधी दिवस

[लक्ष्मीनारायण मिश्र]

गत १६ सितम्बर १९४५ को संयुक्तप्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आदेश से सारे प्रान्त में रेडियो विरोधी दिवस व्यापक रूप में मनाया गया। प्रयाग, काशी और लखनऊ की संस्थाओं और विद्यालयों में तो रेडियो की भाषा-नीति के बारे में नेताओं और विद्वानों के भाषण हुए ही, प्रान्तीय सम्मेलन के कार्यालय की सूचना के अनुसार प्रान्त में कोई भी ज़िला या कस्बा नहीं छूटा है जिसमें कि यह रेडियो विरोधी दिवस न मनाया गया हो। लखनऊ के रेडियो स्टेशन के सामने हिन्दी-प्रेमियों ने काले झण्डे का भी प्रदर्शन किया।

रेडियो की भाषा-नीति का विरोध यही नहीं कि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन श्री सम्पूर्णानन्द श्री पराडकर और श्री कमलापति त्रिपाठी शास्त्री जैसे नेताओं ने किया है बल्कि इस विरोध में, सर सीताराम, श्री प्रकाशनारायण सप्रू और राजा महेश्वरदयाल सेठ जैसे उदार व्यक्तियों ने भी कहा है। रेडियो के अधिकारी हिन्दी साहित्य सम्मेलन और हिन्दी के सभी यशस्वी साहित्यकारों के दृष्टिकोण की उपेक्षा अब तक करते आये हैं। बहुत सम्भव है वे सर सीताराम जैसे व्यक्तियों के मत की भी उपेक्षा करें। किसी भी रूप में हमें हिन्दी का अधिकार अधिकारियों की भीख के रूप में नहीं लेना है। अधिकारी हमारी भाषा की जितनी ही अधिक उपेक्षा करेंगे हमारी भाषा का बल बढ़ता ही जायेगा। हमारा आन्दोलन चलता ही रहेगा। अधिकारियों के न मानने से अन्याय न्याय नहीं हो जायगा। हिन्दी का अहित अधिकारियों की निरंकुशता से कम होगा और हमारी शिथिलता से अधिक। इसलिए सभी हिन्दी-प्रेमियों और हिन्दी भाषी लाइसेन्सदारों का कर्तव्य है कि इस आन्दोलन को तनिक भी शिथिल न होने दें। हमारे नैसर्गिक अधिकार से हमें कोई भी शक्ति अधिक दिनों तक वञ्चित न रख सकेगी।

हमारे गुरुजन

जिनके आशीर्वाद से हिंदी पनप रही है!

हमारे साहित्य के मानसिक यात्रा-पथ में एक दुखद सत्य का अनुभव बराबर होता है, और वह यह कि हम अपने गुरुजनों को भूलते जा रहे हैं जि आशीर्वाद ने हिन्दी की प्राण-प्रतिष्ठा की है और जिनकी तपस्या की भूमि पर हमने अपना भवन खड़ा किया है। हिंदी की नई पीढ़ी तो उन्हे भूल ही गई साहित्य के प्रौढ़ सेवक भी उनके प्रति किंचित् उदासीन हैं। हमें यह ज्ञात ही होता कि उन वृद्ध गुरुजनों का स्वास्थ्य कैसा है, वे कैसे जी रहें हैं, क्या कर वे जिन्होंने अपनी हड्डियों से और अपने रक्तमांस से हमारे साहित्य को रूप दिया।

स्पष्ट है कि हिंदी पाठकों, कार्यकर्ताओं से उनके जीवन का सम्बन्ध की आवश्यकता है वे क्रियात्मक रूप से साहित्य के निर्माण में अब भाग न सकते हों तो भी उनके आशीर्वाद और पथ-दर्शन से हमारा पथ मङ्गलमय होगा

इसी उद्देश्य से मैंने कुछ सम्मानित गुरुजनों से उनके वर्तमान जीवन स्वास्थ्य आदि की जानकारी प्राप्त कर यहाँ रखने की चेष्टा की है, और आशा हूँ, यह क्रम चलता रहेगा।

श्री रामनाथ 'सुमन'
साहित्य मन्त्री

[३]

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय

सदावर्ती,
आजमगढ़
१८।६।४५

प्रियवर !

आशीर्वचनानि ।

पत्र मिला, कृपा और स्मरण के लिए धन्यवाद ! सम्मेलन पत्रिका का जो एक अंक, विशेष, आप निकाल रहे हैं उसकी प्रशंसा मैं हृदय से करता हूँ । उसकी सहायता मैं बराबर करता आया हूँ और बराबर करता रहूँगा । आजकल स्वास्थ्य अच्छा नहीं है इस कारण मैं इस समय कोई लेख नहीं भेज रहा हूँ । इसके लिए क्षमा कीजिएगा । विशेष विनय ।

शुभैषी
हरिऔध
अ० सि० उपाध्याय

[श्री उपाध्याय जी इस वृद्धावस्था में भी उपासक की निष्ठा के साथ हिंदी की साधना में रह रहे हैं । ईश्वर उन्हें शीघ्र नीरोग करे और अभी बहुत दिनों तक उनका आशीर्वाद और पथप्रदर्शन हमें प्राप्त रहे । संपा०]

---

[४]

श्री गौरीशंकर हीराचंद ओझा

रोहेरा
२० ६।४५

मान्यवर सुमन जी,

आपका कृपापत्र ता० १५।६।४५ का मुझे यहाँ मिला । इस समय मेरी अवस्था ८२ वर्ष की है और प्रायः अस्वस्थ रहता हूँ । नेत्र-ज्योति भी क्षीण होती जाती है । मेरी दिनचर्या इस प्रकार है—

१. मैं प्रायः दिन भर खाट पर लेटा रहता हूँ और अस्वस्थ होने से 'पू
जाह्नवीतोय'' के अनुसार थोड़ा सा ले लेता हूँ । ऐसी दशा में भी 'वीर अ
(दैनिक पत्र) को नित्य सरसरी तौर से देख लेता हूँ । मकान के चौक के कम
पकड़कर थोड़ा बहुत प्रतिदिन भ्रमण भी करता हूँ और आवश्यक पत्रों के
लिखवा देता हूँ । बाकी कुछ समय बच्चों के साथ मन बहलाव कर लेता
लिखने का कोई कार्य नहीं होता । भोजन में केवल दो फुलके, कुछ दूध और
यही लेता हूँ ।

नीचे अपने रेडियो-संबंधी विचार प्रकट करता हूँ —

रेडियो की भाषा अरबी फारसी शब्दों से पूर्ण होने से किसी प्रकार हि
नहीं कही जा सकती । उसे हिन्दुस्तानी या हिन्दी कहकर बलपूर्वक हिन्दी भाषियों
गले के नीचे उतारने का रेडियो विभाग का प्रयत्न अत्यन्त अवांछनीय है । जिस
को रेडियो विभाग हिन्दी या हिन्दुस्तानी कहता है उसमें उर्दू या अरबी फारसी
केवल वे ही शब्द प्रयुक्त होने चाहिएँ जो दैनिक व्यवहार में आ चुके हों । तभी
हिन्दी-भाषियों को मान्य हो सकेगी । रेडियो की हिंदी-विरोधिनी नीति के वि
अधिक से अधिक क्रियात्मक आन्दोलन होना चाहिए ।

भवदीय,
गौरीशंकर ही० ओझा

[महामहोपाध्याय रायबहादुर डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा हिन्दी
अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वानों में हैं । अनेक वर्षों तक वे राजपूताना म्यूजियम
क्यूरेटर रह चुके हैं और राजपूत कालिक भारतीय इतिहास के जीवित विशेषज्ञों
अन्यतम हैं । वे अत्यन्त वृद्ध हो चुके हैं । क्या ही अच्छा हो कि राजस्थान-हि
साहित्य-सम्मेलन अथवा कोई दूसरी संस्था उनके जीवन-काल में उनसे संस्मरण लि
ले । आधुनिक हिंदी के विकाश के इतिहास की अत्यन्त बहुमूल्य स्मृतियाँ उनके जी
से सम्बद्ध हैं । प्रभु उन्हें स्वास्थ्य प्रदान करें । — संपादक]

सम्पादकीय

सम्मेलन के भावी सभापति

उदयपुर में होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन अधिवेशन के तथा तत्सम्बन्धी परिषदों के अध्यक्षों के चुनाव का परिणाम घोषित हो चुका है। अधिवेशन के अध्यक्ष इस बार बम्बई के श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी गुजराती के शीर्ष स्थानीय कलाकार में हैं। उनके उपन्यासों में हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति का इतिहास सजीव होकर बोलता है। वे न केवल साहित्यकार हैं बल्कि राष्ट्र के एक नेता तथा समाज-परिष्कारक भी हैं। उनमें साहित्यकार, राष्ट्र सेवक तथा समाज परिष्कारक तीनों के एकत्र दर्शन होते हैं। वे राष्ट्र भारती के प्रति श्रद्धालु हैं। उनमें समग्र भारतीयता की संस्कृति का स्वप्न भरा है। हम सम्मेलन के मंच पर उसके साथ उनका क्रियात्मक सम्बन्ध होने के लिये स्वागत करते हैं। हमें आशा है कि उनके रूप में हमें एक कर्मठ सभापति प्राप्त होंगे। सम्मेलन की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हमें अधिक से अधिक समय देने वाले कर्मठ तथा अनुभवी व्यक्तियों का सहयोग मिले और हिन्दी वास्तविक अर्थ में राष्ट्र की आत्मा की वाणी के रूप में प्रकट हो। इस अवसर पर हम परिषदों के अध्यक्षों (१. साहित्य—श्री रामकुमार वर्मा, २. विज्ञान-श्री मेघनाद साहा, ३. दर्शन—श्री बलदेव उपाध्याय, ४ समाज शास्त्र—श्री सत्याचरण-शास्त्री। ५. राष्ट्रभाषा—श्रीमती सावित्री दुलारेलाल) का भी कार्य क्षेत्र में स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि इनकी अध्यक्षता में परिषदों को उनका वास्तविक महत्व प्राप्त होगा।

रेडियो विभाग की भाषा नीति

रेडियो की भाषा नीति के सम्बन्ध में जनता का विरोध, दिन-दिन, उग्र होता जा रहा है। युक्त प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन ने जो रेडियो की भाषा के सम्बन्ध में विरोधी दिवस मनाया उसमें आशातीत सफलता इस बात का निर्देश है कि हवा का रुख किधर है। देश की बहुसंख्यक पठित जनता इस ज़बर्दस्ती को कभी सहन न करेगी। सर सुल्तान-अहमद वायसराय की कार्य कारिणी से इस्तीफा देकर अलग हो

रहे हैं। हमें आशा करनी चाहिए कि दूसरे सदस्य अपने उत्तरदायित्व को समझें परन्तु कोई सदस्य हो। हमें तब तक आन्दोलन चलाते रहना होगा जब तक उचित माँगें सरकार-द्वारा स्वीकार न कर ली जायँ। हमें हिन्दी जनता को जगाना है; जिस दिन वह जगेगी रेडियो विभाग उसकी हुंकारों से कम्पित और प्रकम्पित होगा।

—श्री रामनाथ 'सुमन'

जातक

[प्रथम तथा द्वितीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं; मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में इनका मुक़ाबला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५४०—२२; डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४—२४ डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अभूतपूर्व प्रकाशन

प्रेमघन-सर्वस्व

(प्रथम भाग)

'दो शब्द'-लेखक, माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन

परिचय-लेखक, स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल

[आधु]निक हिन्दी के एक निर्माता, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, [साहित्]य उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं [का वि]शाल संग्रह-ग्रंथ। हिन्दी में प्रथम और अपूर्व काव्य। लेखक के चित्रों से सुसज्जित और सजिल्द।

मूल्य ४।)

साहित्य मंत्री—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

रजिस्टर्ड नं० ६१२

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्त[कें]

(१) सुलभ साहित्यमाला

१ भारत-गीत ≡)
२ राष्ट्रभाषा ।।)
३ शिवाबावनी ≡)
४ पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १।)
५ सूरदास की विनयपत्रिका ≡)
६ नवीन पद्यसंग्रह १।)
७ बिहारी-संग्रह ≡)
८ सती करुणाकी ।।)
९ हिन्दी पर फारसी का प्रभाव ।।≡)
१० ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार १।)

(२) साधारण पुस्तकमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था ३)

(३) वैज्ञानिक पुस्तकमाला

१ सरल शरीर-विज्ञान ।।), ।।।)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल-साहित्य माला

१ बाल नाटक-माला
२ बाल-कथा भाग २
३ बाल विभूति
४ वीर पुत्रियाँ

(५) नवीन पुस्तकें

१ सरल नागरिक शास्त्र
२ कृषि प्रवेषिका
३ विकास (नाटक)
४ हिंदू-राज्य शास्त्र
५ कौटिल्य की शासन-प[द्धति]
६ गावों की समस्यायें
७ मीराँबाई की पदावली
८ भट्ट निबंधावली
९ बंगला-साहित्य की [कथा]
१० शिशुपाल वध
११ ऐतिहासिक कथायें
१२ दमयन्ती स्वयंवर

नवीन पुस्तकें

१—मैथिली लोकगीत—रामइकबालसिंह 'राकेश', भूमिका लेखक—पण्डित अमरनाथ झा
२—गोरखबानी—स्व० डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
३—दीवाली और होली—(कहानी संग्रह) श्री इलाचन्द्र जोशी
४—महावंश—भदन्त आनन्द कौसल्यायन
५—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
६—स्त्री का हृदय—(एकांकी नाटक) श्री उदयशंकर भट्ट
७—राजस्थानी लोकगीत—स्व० सूर्यकरण पारीक
८—सामान्य भाषाविज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना
९—काव्यप्रकाश—मम्मटाचार्य, अनुवादक स्व० हरिमंगल मिश्र
१०—समाचार-पत्र शब्दकोष—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०

प्रकाशक—श्रीरमाप्रसाद [illegible], हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, [प्रयाग]
मुद्रक—श्री[illegible], हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्र[याग]

सम्मेलन-पत्रिका

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की मुख-पत्रिका

फाल्गुन-चैत्र-वैसाख २००१-२००२

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन

प्रयाग

सम्मेलन-पत्रिका : फाल्गुन-चैत्र-वैसाख २००१-२००२

सम्पादक—श्री रामनाथ 'सुमन'

विषय-सूची

भाग ३२, संख्या ७-८-९ :: फाल्गुन चैत्र २००१ वैशाख २००२

सम्मेलन-पत्रिका

प्रकाशित "माधवानल कामकन्दला"

ले० प्रोफेसर राजनाथ पांडेय एम० ए०, "साहित्यालङ्कार"

"हिन्दी के कवि और काव्य" नामक ग्रन्थ की तीसरी जिल्द में "माधवानल काम कन्दला'' का प्रकाशन हुआ है। इस ग्रन्थ को सर्व प्रथम प्रकाशित करने का श्रेय हिन्दुस्तानी ऐकाडेमी को है। एक समय वह भी था जब कि "माधवानल कामकन्दला" के लेखक "आलम" और "आलमशेख" वाले "आलम" एक ही व्यक्ति समझे जाते थे। किन्तु "माधवानल कामकन्दला" की हस्तलिखित प्रतियों के प्राप्त हो जाने पर यह भ्रम दूर हो गया। जहाँ तक मुझे स्मरण है सन् १९३४ ई० में श्री सत्य जीवन वर्मा ने एक लेख इस संबंध में प्रकाशित कराया था जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट किया था कि यह "आलम" सम्राट अकबर के समकालीन थे और "आलमशेख" वाले रसिक "आलम" से भिन्न थे। संभव है किसी विद्वान ने इसके पूर्व भी इस भ्रान्ति के निवारण का प्रयत्न किया हो।

विद्वान सम्पादक ने भूमिका में इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि अमुक अमुक हस्तलिखित प्रतियों का अवलोकन करके यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि पूर्णतया एक ही प्रति को आधार माना गया है। दुर्भाग्यवश वह प्रति खंडित रही है। इसी कारण प्रस्तुत संस्करण में कई स्थल पर भूलें रह गई हैं। जिससे ग्रंथ के प्रकाशन का उद्देश्य बहुत कुछ विफल हो जाता है। अन्य प्रतियों से मिलान न हो सकने के कारण तथा समुचित रूप से हस्तलिखित पुस्तक का अवलोकन न होने से या सावधानी से प्रूफ़ न पढ़ा जाने के कारण अनेक ऐसी अशुद्धियाँ भी आ गई हैं जिनसे संबंधित अंश का कुछ अर्थ ही नहीं निकल पाता; जैसे पृष्ठ १९६ में यह पद :—

> सम दुग भीर होइ जौ थाहाँ।
> गंगा पच्छिम करै प्रवाहा ॥

इसमें "सम दुग भीर" होने से पहिली पंक्ति का कुछ भी अर्थ नहीं लगता। वास्तव में "सम दुग भीर" के स्थान पर "समुद गंभीर" होना चाहिये। निम्नलिखित शुद्ध पाठ में इस संशोधन से अर्थ एक दम स्पष्ट हो जाता है।

> समुद गँभीर होई जौ थाहाँ।
> गंगा पश्चिम करै प्रवाहा ॥

पंख लागि कै सिला उड़ाहीं।
पाहन फोरि कमल विहसाहीं॥
जौ इतनी विपरीत चलावै।
तऊ न कर्म सौं छूटन आवै॥१॥

पृष्ठ १६६ में निम्नलिखित दोहा इस प्रकार है :—

मधु कुरल विध्यो मदनरस, को ये पवन मदनेसु।
नैन प्रान तन मन फट्यौ, छिन न प्रेम कै प्रेम॥२॥

बहुत संभव है हमारे कोई साहित्यिक "डॉन क्विक्ज़ट" इस दोहे का भी [अर्थ] लगा डालें परंतु "मधु कुरल विध्यों" अशुद्ध पाठ है। यथार्थ पाठ है "मधु[कर] लुबिध्यों" और इस परिवर्तन से अर्थ स्पष्ट हो जाता है किन्तु "को ये पवन मदने[सु]" में भी इसी प्रकार की त्रुटि है। वास्तव में होना चाहिये "कीये (या किये) पान म[धु] पेम।" हमने जिस हस्तलिखित प्रति के आधार पर इस संस्करण की इस प्रकार [की] भयङ्कर त्रुटियों का संशोधन किया है उसके पाठ और इस संस्करण के पाठ में इ[स] प्रकार की त्रुटियों के अतिरिक्त बहुत से पाठान्तर भी हैं। जैसे उपर्युक्त प्रथम उद्धर[ण में] "एकॉडेमी" के प्रकाशन में "पश्चिम" शब्द आया है। पर "अवधी" या व्रज भा[षा] के काव्य में इस शब्द की इस रूप में कल्पना ही नहीं की जा सकती। दूसरा श[ब्द] "विहसाहीं" है। हमारी प्रतिमें यह शब्द "बिगसाईं" है। इसी प्रकार "उड़ाहीं" औ[र] गंगा "पश्चिम करै प्रवाहा" के स्थान में हमारी प्रति में क्रमशः "उड़ाईं" और "[गंगा] पछिम दिसि करै प्रवाहा" है। इसी भाँति दूसरे दोहे में "प्रान" के स्थान में "बान" "फट्यौ" के स्थान में "बिध्यौ तथा "छिन न प्रेम कै प्रेम" के स्थान में "छिनहु [न] चूक्यौ नेम" है।

मधुकर लुबिध्यो मदन रस, किये पान मधु पेम।
नैन बान तन मन बिध्यौ, छिनहु न चूक्यौ नेम॥

हम समस्त पाठांतर लिखें तो यह लेख ग्रंथ संपादन जैसा बड़ा तथा कठि[न] बन जायगा।

जहाँ तक हमें ज्ञात है "माधवानल कामकन्दला" की एक प्रति काशी नाग[री] प्रचारिणी सभा के पास भी है। एक प्रति हमारे पास भी है जो सम्वत् १८१[?] ... सुदी बृहस्पतिवार को संपूर्ण की गई थी। यदि कई प्रतियों के मिलान से इस ग्रंथ [को] सम्पादित करके ही प्रकाशित करना संभव न था तो, अच्छा होता यदि यह अब त[क] अप्रकाशित ही रहने दिया गया होता। जो अशुद्धियाँ, छूटें और पाठ भेद इस ग्रं[थ]

में रहने दिए गए हैं उनके कारण यह प्र० मा० का०[1] खंडित, अशुद्ध और दुरूह हो गया है।

प्र० मा० का० में पृष्ठ १६४ में एक दोहे का पूर्वार्ध इस प्रकार है :—

"अस्ट राग ये सकल संग, रागनीय गनितीस"

राग आठ नहीं छः ही होते हैं। हमारी प्रति में "षष्ट" है। इस "षष्ट" का "अस्ट" होना देख हम प्र० मा० का० में भूमिका (पृष्ठ १४ की टिप्पणी) में लिखे हुए विद्वान् सम्पादक के इस वाक्य से उत्तरार्ध कि "हिंदी में तो जितने साहित्य के स्रष्टा नहीं हैं उनसे अधिक इतिहास लेखक हो रहे हैं और नकल से बढ़कर आसान कोई काम होता भी नहीं" से सहमत नहीं हो सकते। वास्तव में नकल से बढ़कर कठिन कोई काम नहीं होता। अस्तु।

इस लेख में हम केवल तीन कोटि की टूटों का उल्लेख कर रहे हैं। वे इस प्रकार हैं:—

(क) छूट;

(ख) भयङ्कर भूल;

(ग) पाठान्तर

(क) छूटः—

(अ) प्र० मा० का० में १० स्थलों में छूटे हैं। जो स्थान इस छपी पुस्तक में रिक्त छोड़े हुए हैं उनकी जगह निम्नलिखित होना चाहिए:—

[2](प्र० मा० का०)

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	रिक्त स्थान की पूर्ति[3]
१६३	१४	(गुन बिन पुरिष पत्र ज्यों) डोलै।
		गुन बिन दीन बचन मुख बोलै ॥१॥
१६४	२७	(जफकत फफकत लाल तरंगहि [4]।)
		फकुट भुकुट फंफनक तरंग ॥२॥

---

[1]इस लेख में प्र० मा० का० सर्वत्र "ऍकाडेमी" द्वारा प्रकाशित माधवानल कामकन्दला का अर्थ देता है।

[2]प्र० मा० का० = प्रकाशित माधवानल कामकन्दला।

[3]कोष्टक में दिये हुये शब्द प्रकाशित संस्करण में हैं। जो कोष्टक के बाहर हैं वे प्र० मा० का० में छोड़ दिये गये हैं।

[4]हमारी हस्त लिखित प्रति में इस प्रकार है—झभकत झभकत झभेक सुरंग।

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	रिक्त स्थान की पूर्ति
१९५	१६	(दुरि दुरि देखैं मुरि) मुरि देखा। मन लागी पाहन की रेखा ॥३॥
१९७	६	नेह (जैस खांड़े की धारा)। दहुं दिस पैन छुवै को पारा ॥४॥
२००	१०	वच (न) जु काम (कन्दला कहई)। (रजनी बीति अल्प ह्वै रहई ॥) ५॥
२००	११	(ऐसा कछु कीजै) उपचारा। (बाढ़ै रैनि न होई सकारा ॥)[1]६॥
२००	१२	(तव माधव बीना कर लीन्हा।) विधुरथ मृगी (नयननि सुचि लीन्हाँ ॥)७[2]
२००	१४	सरवर चक्रवाक भ्र (कुलानै)। (बाढ़ी रैनि न होई बिहानै ॥) ८॥
२००	१५	रहौ (स) दा अधिराति (राहु जाइ सूरज गिलहु
२००	१६	(चलन कहत पिय प्रात, रैनि क्ष) मासी करहु (विधि)।[3]

(ब) प्रकाशित "माधवानल कामकन्दला" में कुछ अप्रत्यक्ष छूटें भी यह कि दीघ वाली[4] हस्तलिखित प्रति में कुछ चौपाइयाँ और दोहे ऐसे हैं जो नहीं हैं। 'दीघ' वाली प्रति में प्रथम दो पृष्ठ नहीं हैं जिससे यह नहीं कहा जा कि ग्रंथ की प्रारंभिक पंक्तियाँ क्या हैं ? प्रकाशित माधवानल कामकन्दला की ५ पंक्तियाँ तथा उनके बाद वाले दोहे को विनय खण्ड कहा जायगा। उसके "जगपति राज कोटि जुग कीजै। सहज लाल छाजै थिति कीजै ॥" आ जात दीघ-वाली प्रति में "जगपति......" १६ वें दोहे के बाद आया है। जगपत चौपाई के पूर्व "अदलीक है बखान, जस प्रकटै चहु खण्ड में। विद्या अरथ

---

[1] अब जु कछू कीजे उपचारा। बाढ़ै रैनि न होई उजियारा ॥

[2] विधु रथ मृगी श्रवन सुनि लीना

[3] चलन कहत परभात, रैनि छमा सी करहु विधि।

[4] हमारे पास जो हस्त-लिखित प्रति है वह दीघ (भरतपुर) में लिखी गई उसके अन्त में सन् संवत् देकर इस प्रकार लिखा है—"लिख्यतं गोपीराम दीघ पठनार्थ राम कृष्ण जी।" अब यह हस्तलिखित पुस्तक हमने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को संग्रहालय के लिए प्रदान कर दी है।

साहि अकब्बर जगत गुरु ॥" एक सोरठा दीघवाली प्रति में है किन्तु प्रकाशित "माधवानल कामकन्दला" में नहीं है। प्रकाशित "मा० का०" में चौथे दोहे के उपरान्त निम्नलिखित है :—

पुहुपावति नग्र इक सुनौ। गोपीचन्द राज वह गुनौ ॥
धर्म पंथु दिन प्रति पगु धरई। पुहुमी पवित्र पापु नहिं करई ॥

किन्तु दीघ वाली प्रति में यह अंश १२६वें दोहे के पश्चात् आता है। तब तो निश्चय ही ग्रंथ का एक महत्व पूर्ण अंश छूट गया है। इसके अतिरिक्त भी छोटी छोटी कई छूटें इस प्रकार हैं :—

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	छूटा हुआ अंश।
१६३ '	१४	(गुन बिनु पुरिष पत्र ज्यौं) डोलै। गुन बिन हीन वचन मुष बोलै ॥ जौ गुन होय तौ धन रहै, अदिन परे धन जाय। जौ गुन होय सरीर मैं, बहुरि मिलै धन आय ॥ बोली काम कन्दला नारी। आयो चतुर विचच्छन भारी ॥ राज मन्दिर नित औसर होई। गुन अवगुन समझै नहिं कोई ॥ यह आयौ सूरज की कला। ताल गान सुर जानै भला ॥
१६३		अब गुन लैके दूरि न करौं। सपत भेद गुन तें संचरौ ॥ फेरि सिंगार कन्दला कीना। अंग अंग आभूषन लीना ॥ वंदत है कर जोरि, भूपति मिस द्विज प्रान पति। सभा सकोच सब छोरि, मुख उघटत संगीत रस ॥ १॥
१६६	४	वस्त्र पहिरि आभूषन लीनै। मुकुर देखि चष अंजन दीनै ॥ मन विचारि कंदला बोली। माधव विना धरा महि डोली ॥ येकै मंत्र करौ सब कोई। जिमि कर आज न न्यारौ होई ॥

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	छूटा हुआ अंश
		कर छूटे पाइये नहिं सोई।
		नदी नाव कौ लेखौ होई ॥
		कहै सखी सुनि हो कंदला।
		तेरे सुखी हमारौ भला ॥
		कहा तुम्हार परकास सोई, जिहि विधि सुख तो होय।
		वैरागी माधव तहाँ, रहै नैन मधि जोय॥
		बात कहत यह धामहि आई।
		माधौनवल सौ बात जनाई ॥
		तोहि दास बिनु भयौ उदासा।
		मों मन कहै तजौं नहि पासा ॥
		भई सुबुधि मन माहि विचारी।
		तव सखियन संग लीन हँकारी ॥
		सरवर तजि चरनन चलि आई।
		मुख अमृत बौले चतुराई ॥
		कौने छवि रही कह मन वाता।
		हम तुम है पूरबिलौ नाता।
		यह जग मिलै न कोय पूरविला सनमंध बिना।
		विधि भावै सो सोय, तू जिन बिछुरै माधवा ॥२॥
२०६	३३	पर दुख कातर विरद बुलाऊँ।
		पर उपकार सरग चढ़ि धाऊँ ॥३॥[1]
२०७	२७	ताकी सपत मानि मुष बोला।
		बिरह संताप हिरदै का षोला ॥४॥
२०६	२	सब दुख विप्र पीर जब कही।
		सुनि सब सभा चकित होई रही ॥५॥
२०६	१३	जब लग दृष्टि प्रान पुनि सासा।
		तब लगि जीव न छोंड़ै आसा ॥६॥
२१०	३	नेह की देह अमर जग रहई।
		जल नहि भीजै अगिन नहिं दहई ॥७॥
२१४	४	अभरन सब उतारि लै आई।
		कहत वैद तुम खेऊ गुसाँई ॥८॥

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	छूटा हुआ अंश
२२२	४	दौरि पौरिआ जाइ जनावा।
		राजा काहू दूत पठावा ॥४॥[1]
२२२	२७	उठहु बसीठ विक्रम के नेगी।
		कहौ राहू सो आवै वेगी ॥१०॥

(ख) भयङ्कर भूलें :—

दूसरी कोटि की त्रुटियाँ वे हैं जिनके कारण अर्थ का अनर्थ हो जाता है। ये निम्न प्रकार से हैं।

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	(क्या है और) क्या होना चाहिये।
१८७	७	(जगपति राज कोटि जुग कीजै।
		सहज लाल छाजे थिति कीजै ॥)
		जगपति राज कोटि जुग कीजै।
		साह जलाल छत्रपति जीजै ॥१॥
१८८	१०	(गावै सरस बजावै बीना।
		नर नारी मोहे भ्रम बैना ॥)
		गावै सरस बजावै बैना।
		नर नारी मोहे म्रग अैना ॥२॥
१८८	१६	(करैं राग मोहन के वेसा।
		ज्यों ठग मूर करै वर वेसा ॥)
		करै राग मोहन के बेसा।
		ज्यों ठगऊरि कियो परवेसा ॥३॥
१८६	८	(तब सुनि कै उठि चल्यो रिसाई।
		नगर लोग सत्तवै बुलाई ॥)

[1]जायसी ने "पद्मावत" में सात-सात पांती चौपाइयों के अनन्तर एक एक दोहे का क्रम रखा है, किन्तु आलम ने पाँच पाँच चौपाइयों के बाद। जित प्रसंगो की यह छूटें है वहाँ प्रकाशित "माधवानल कामकन्दला" में पाँच नहीं चार चार पांतियाँ ही छपी हैं।

जो कोष्टक में है वह प्रकाशित मा० का० में है। जो उसके नीचे बिना कोष्टक का पाठ दिया है वह शुद्ध पाठ है।

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	छूटा हुआ अंश
		तब सुनि कै उठि चल्यो रिसाई ।
		नगर लोग सब लिये बुलाई ॥४॥
१८६	२१	(माधौनल चिंता करी, मन मैं भयौ उदास ।
		माघो धारि बीना चल्यौ आयौ राजा पास ॥)
		माधौ नल चिंता करी, मन में भयौ उदास ।
		काधें धरि बीना चल्यौ, आयौ राजा पास ॥५॥
१६०	२१	(मीन मधुर पञ्जर मृग हारै ।
		निरखत लोचन जुगम डरारे ॥)
		मीन मधुप पंजन मृग हारे ।
		निरखत लोचन जुगम दरारे ॥६॥
१६०	२५	(तिल प्रसंहि वीव तुषारा ।
		छिनु छिनु दारिज नु माछिनि हारा ॥)
		तिल प्रसून पर बुन्द तुषारा ।
		मानहु दारिम की छविधारा ॥७॥
१६०	२७	(मृगमद तिलक रहै अति मानौ ।
		निखंत अलि बिन्दु नीयर जानौ ॥)
		मृगमद तिलक रहै अति मानौ ।
		निखंत अलक बदन पर जानौ ॥८॥
१६०	३१	(पल्लव बिंब वंधूक लजाहीं ।
		आस्वास रस भौंर लुभाहीं ॥)
		पल्लव बिंब बंधूक लजाहीं ।
		अधर वास रस भौंर लुभाहीं ॥६॥
१६१	१०	(कनक बरन दुइ बाँह सुहाई
		देखे नीति संगीत सुहाहीं ॥)
		कनक बरन दुइ बाँह सुहाहीं ।
		देखी अति संगीत सुधाई ॥१०॥
१६१	१२	(भुज सवल अरु सनि कटाही ।
		लगी फूली सुघरी जु सुहाई ॥)

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	
		(क्या है और) क्या होना चाहिये ।
		भुज अस्थूल अरु छीन कलाई ।
		लगी नाल विद्रुरी सुहाई ॥११॥
१६२	४	(उहिठाँ माधौ पँवरि दुआरा ।
		राजा मंदिर होइ अरवारा ॥)
		उहिठाँ माधौ पँवरि दुआरा ।
		राजा मंदिर होइ अखारा ॥१२॥
१६३	६	(चन्दन खौरि तिलक सरसाखैं ।
		पोथी काँख उपरना कांधैं ॥)
		चन्दन खौरि तिलक सिर साधैं ।
		पोथी काँख उपरना कांधैं ॥१३॥
१६४	१५	(अष्ट राग ये सकल सँग, रागिनीय गनि तीस ।)[१]
		षष्ट राग ये सकल सँग, रागिनीय गनि तीस ।१४।
१६५	१७	(जब पारखी नाद मुख गावैं ।
		सुनतहि मृग हिय मोहित ह्वै आवैं ॥)
		जब पारधी नाद मुख गहै ।
		तब मृगि रीझि थकित ह्वै रहै ॥१५॥
१६५	२२	बैन करत बलि विक्रमा दियौ न ऐसो दान ।)
		बैन करन बलि विक्रमा दियौ न ऐसो दान ।१६।
१६६	८	बोलहिं क्रोध न बाल, बेगि निकारहु नम्रते ।)
		बोलहि क्रोध नृपाल बेगि निकारहु नम्रते ।१७।
१६६	१७	सम दुग भीर होइ जौ थाहीँ ।)
		समुद गंभीर होइ जौ थाहीँ ।१८।
१६८	१	(जोई कछु कोकिल की रीती ।
		तैसिय रीत रची विपरीती ॥)

[१]देखिये पृष्ठ १९३ पंक्ति १६ प्रकाशित "माधवानल कामकन्दला"—"बहुरि अलापै राग षट पंच पंच संग बाल ।" इस प्रकार अष्ठ और षष्ट दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनमें से एक अवश्य ही अशुद्ध है ।

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	छूटा हुआ अंश	पृ० संख्या
		जो कछु केलि कला की रीती ।	
		तैसिय रीत रची विपरीती ॥१६॥	१६६
१६८	२	परसन लालन वै पतन, त्रिया पुरुष सुख लीन	
		फुटक बदन उमगे रहैं, भये पंचसर हीन ॥)	
		परम लालची ब्यापतन, त्रिया पुरुष सुख लीन	२००
		चुक्यो मदन रह्यो अंध ह्वै भये पंचसर हीन ॥	
१६८	१४	उरझे बार हारनि न निवारहिं ।	
		सब अंग भूषन सखी सुधारहिं ॥)	
		उरझे हार बार निरवारहिं ।	२११
		सब अँग भूषन सखी सवारहिं ॥२१॥	
१६८	२६	(अंगन बूद चुवहिं धर जोती ।	
		जनहु भुवराम् उगि लहिं मोती ॥)	
		अंगन बूँद चुवहिं धर जोती ।	२०२
		जनहु भुवगंम उगिलहिं मोती ॥२२॥	
१६६	७	(गवनम राज मंद की नाईं ।	
		छिन एक मांझ मन्दिर मैं आई ॥)	
		गवन मराल मंद की नाईं ।	२०३
		छिन एक मांझ मन्दिर मैं आई ॥२३॥	२०४
१६६	१२	वह कलंक की कला दिखावहिं ।	
		पून्यो चन्दस सवानहिं आवहिं ॥)	
		वह कलंक की कला हिखावहि ।	
		पून्यो चन्द न सरवरि पावहिं ॥२॥	२०५
१६६	१३	(तू गंभीर सहस रस काला ।	
		समता लै ऊरर कै पाला ॥)	
		तू गंभीर सहस रस कला ।	
		समता लये अपर को भला ॥२॥	२०७
१६६	१७	(मधु कुरल विध्यों मदन रस, को ये पवन मदं	
		मधकर लुविध्यो मदन रस, किये पान मधु पे	

पृ० संख्या	पंक्ति संख्या	छूटा हुआ अंश
१९९	२९ ३०	(राजा, त्रिया सुनारि, विटिया, रोकप आगि जाल । पाँसा, साँपिनी, हारि, ए दस होइ न आपने ॥) राजा, त्रिया, सोनार वटपारौ, कपि आगि जल । पाँसा, साँप. कलाल, ए दस होई न आपनो ॥२७॥
२००	२९	(मारि कहा रिनि मेटौं दाहू । ता पाछैं तुम पर भुमि जाहू ॥) मारि कटारिनि मेटौं दाहू । ता पाछै तुम परभुमि जाहू ॥२८॥
२०१	३६	बिनु गुन नाउ लगहि नहि तीरा । करि हा हीन झकोरहि नीरा ॥ बिनु गुन नाउ लगहिं नहिं तीरा । करिया हीन झकोरहि नीरा ॥२९॥
२०२	२६	तजि सनेह हम धौंन लगायौं । कामकन्दला बहु दुख भयौ ॥ तजि सनेह माधौनल गयौ । कामकन्दला बहु दुख भयौ ॥३०॥
२०३	१२	(लंक टेक माधौ मग जोवैं ।) इक टक माधौ नल मग जोवै ॥३१॥
२०४	९	(बुधि बल स्यै कोइ पार न पावै । जो नर सप्रँग, गुन चढ़ि धावै ॥) बुधिबल स्यै कोउ पार न पावै । जो नर सप्त गगन चढ़ि धावै ॥३२॥
२०५	३०	(करि अहारु माधौनल गयौ । नदी तीरक उदक जो भयौ ॥) करि अहारु माधौनल गयौ । नदी तीर कौतुक जो भयौ ॥३३॥
२०७	२३	ज्यों जोगी करि ज्ञान, स्रवन सुनत नवगति मुखहि ॥) ज्यों जोगी करि ज्ञान, स्रवन सुनत न बकत मुखहि ॥३४॥

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	छूटा हुआ अंश
२११	८	(बोला राउ नैन कत भरहू । देखौ नाचर हंस जिय करहूँ ॥) बोला राउ नैन कत भरहू । देखौ नाच रहस जिय करहू ॥३५॥
२१३	३५	(सुनत कंदला, विस भरि गयऊ । धरिन पछार खाइ मरि गयऊ ॥) सुनत कंदला विसँभरि भयऊ । धरिन पछार खाई मरि गयाऊ ॥३६॥
२१४	१८	(विरह तेज मुछित तन नारी । लै आयउ गरु रुधि हँकारी ॥) विरह तेज मुछित तन नारी । लै आयउ गारुड़ी हँकारी ॥३७॥
२२०	१७	(चातक मोदनि परिय सताई । दामिनि दमकि प्रान लै जाई ॥) चातक मोर हुँकरि संताई । दामिनि दमकि प्रान लै जाई ॥३८॥
२२१	१४	(रन मंडन खंडन दवन, आनदै सब सूर । चलेति चंचल चाउ करी डरै ठकाइर क्रूर । रन मंडन खडन दवन, आनंदै सब सूर । चल अति चंचल चाउ करि डरपै कायर कूर
२२५	१६	(जोगिनी फिरैं भूतनी साना । बैठि करैं लोहुअ कर पाना ॥) फिरैं जोगिनी भूत मसाना । बैठि करैं लोहू असनाना ॥४०॥

ग पाठान्तर :—

पहिले हम कह आये हैं कि प्रकाशित "माधवानल-कामकन्दला" वाली प्रति में बहुत पाठान्तर हैं । वे कुछ पाठान्तर जो निश्चय रूप से दीप… के अनुसार सार्थक हैं प्रकाशित माधवानल कामकन्दला के निरर्थक सन्… पाठों के सामने दिये जा रहे हैं ।

पृष्ठ	प्रकाशित "मा० का०" का पाठ	"दीघ" वाली प्रति का पाठ
१८७	सहल लाल छाजे थिनि कीजै ।१।	साह जलाल छत्रपति जीजै ।१।
१९०	जो निसि बसै पतंग ।२।	जो निसि बधै पतंग ।२।
,,	चंचल नैकु न थिर रहै ।३।	चंचल नैन न थिर रहै ।३।
,,	दीपक पुष्प करन कौ चहहीं ।४।	दीपक पुहप करन कौ चहहीं ।४।
,,	मानहुँ चारा चोंच ते अहिसुत लेत छुड़ाइ ।५।	जनु चारा सुक चोंच ते अहि सुत लेत छुड़ाइ ।५।
१९०	सेत असेत अरुन के धीरा ।६।	सेत असेत अरुन गंभीरा ।६।
१९१	दहुँ सुरमध्य जु सुरसरि वहहीं ।७।	दहुँ सुमेर विच सुरसरि बहहीं ।७।
,,	अति कठोर कुचतन उठे सबलैं समेत सुभाइ ।८।	अति कठोर दोउ कुच उठे सम स्यामता सुभाइ ।८।
,,	कनक टाड कर कर कंकन चलिया ।९।	कनक टाड कर कंकन बलिया ।९।
,,	नाभि निकट स्यौं नागिनि चली ।	नाभि निकट स्यौं नागिनि चली ।
	जनु कुच कमल नलिन इक भली ।१०।	जुग कुच कमल, नाल इक भली ।१०।
,,	कुंकुम चंग तुरंग भरि मिलि परसै इक संभु ।११।	कुंकुम तिलक सुरंग भरि मिलि परसै मनु संभु ।११।
१९२	तंत गिरा गाइन बहु भाँती ।१२।	तंतकार गाइन बहु भाँती ।१२।
१९३	राय रंक सब बीच लै जो रँपेट गुन होय ।१३।	राय रंक सब बीच लै जोरे पेट गुन होय ।१३।
१९४	दीपक दीवती चले बहु भाँती ।१४।	दीवट दीप बरे बहु भाँती ।१४।
१९५	जा राजा तू मारै मोही ।	जो राजा तू मारे मोहीं ।
	कला रूप ह्वै व्यापौ तोहीं ।१५।	काल रूप है व्यापौ तोहीं ।१५।
१९६	जो दक्खिन ध्रुव अस्तवै तपत अगिन सिवराइ ।१६।	जो दक्खिन ध्रुव ऊगवै तपत । अग्नि सियराइ ।१६।
,,	मधुकर आहि कमलन गुन जानै ।	मधुकर होइ कमलन गुन जानै ।
	दादुर कहा पीउ पहिचानै ।१७।	दादुर कहां बेद पहिचानै ।१७।
१९७	उठि फूलन कै मालु रतन जतित कुँडल दियै ॥१८॥	उर फूलन कै माल रतन जटित कुण्डल दियै ।१८।

पृष्ठ	प्रकाशित "मा० का०" का पाठ	"दीच" वाली प्रति का पाठ
,,	सोचे छिरकि बेन सौं भीनो ।१६।	सोचै छिरकि तेल सौं भीनो ।
,,	दये न लेइ दग ओर करि अञ्जन ।२०।	लै दरपन दग दीनौं अञ्जन ।
,,	कोक कला हौं ही कहौं, सब विधि	कोक कला हौं ही कहौं सब वि
	अरच बखान ।२१।	अरथ बखान ।२१।
१६८	सिथिल गात कंचुकि पहिरि	सिथिल गात कंचुकि सरकि,
	बिछुरि माँग लट छूटि ।	बिछुरि माँग लट छूट।
	अधर निरखि औ नख निरखि, गये	अधर दंत उर नखनिरखि कु
	कंचुकि बंध फूटि ॥२२॥	बल कीन्ह बहूत ॥२२॥
,,	बोलहिं सखी चलहु मगुरंजन ।२३।	बोलहि सखी चलहु मन रञ्जन ।
,,	सजल ओस अलकैं घुघराली ।	सजल ओस अलकैं घुघरारी।
	ऊपर दलति कन्दला डारी ॥२४॥	ऊपर उलटि कन्दला डारी ॥
,,	कुटिल स्याम चिहुँरा घुघरारे ।	कुंतल स्याम चिकुर घुंघुरारे।
	डालै मधर जनहुँ मतवारे ॥२५॥	डोलै मधुप जनहुँ मतवारे ॥
१६६	रास बचन जब माधौ कहई ।	ऐस बचन जब माधौ कहई।
	भुज भरि काम कन्दला गहई ॥२६॥	भुज भरि काम कन्दला गहई ॥
२००	कहति काम ये मीत बताऊ ।	कहति काम हे मीत बटाऊ।
	कैं जु चले मन मोर लुभाऊ ॥२७॥	कैं जु चले मन मोर लुटाऊ ॥
	लै सुख दै दुख संग्रहु जोगी ।२८।	दै दुख लै सुख संगति चोरी ।
२०१	आलम प्रीतम के मिले अङ्ग अङ्ग	आलम प्रीतम के मिले अङ्ग अङ्ग
	सुख होई ।	सुख होइ ।
	पलक ओट जग लागतैं रहौं सकल	पलट ओट जुग सै लगत रहे स
	सुख होई ॥२९॥	सुख होई ॥२९॥
२०२	चन्दन जान नहिं पीर, तादिन	चन्द न जानहि पीर, जानै विरह
	भरहि चकोर दुख ।३०।	चकोर दुख ।३०।
	ऐसे दुख करि रैन विहावैं ।	ऐसे दुख करि रैन विहावै।
	कोटि जतन बासर नहिं पावै ॥३१॥	कोटि कमट करि बासुर आवैं ॥
२०३	कर मीजैं, बस्तर धुनै; गहै	कर मीजै, मस्तक धुनै गहै
	अंगुरिया दंत ।३२।	अँगुरिया दंत ।३१।

पृष्ठ	प्रकाशित "मा० का०" का पाठ	"दीघ" वाली प्रति का पाठ
२०३	पलक वाह नहिं रहहिं नियारे ।	पलक वोट नहि रहहिं नियारे ।
	मंगन भये नैन के तारे ॥३३॥	मगन भये नैनन के तारे ॥३३॥
	पुनि पुनि विरह विया तन तावहि ॥४॥	पुनि पुनि विरह विथा तन तावहि ॥३४॥
	अकुलाई तन विरह के, रस संजोग रसु लीन ।	अकुलाइ तन परसि रस, संजोगिनि सुख लेहि ।
	ते सब काम वियोगि निसि वासर दुख दीन ॥३५॥	ते सब कन्त वियोगिनि निसि वासर दुख देहि ॥३५॥
२०४	सूखे गात अगिनि जनु लावै ॥३६॥	सूखे काठ अगिनि जनु लावै ॥३६॥
	अन्तर घर संबर बरै, स्वास प्रकट भई धूम ॥३७॥	अन्तर जरि पंजर जरयौं स्वास प्रकट भई धूम ॥३७॥
२०४	स्वासा वेग नैन भरि पानी ।	स्वासा बेग नैन भरि पानी ।
	सानल गत बिरहा की जानी ॥३८॥	सो गति नारि विरह की जानी ॥३८॥
२०५	कहूँ मरल विह्वल भिरहिं ।	कहूँ मल्ल द्वै भिरत हैं
	कहूँ नाद कहुँ गीत ॥३८॥	कहूँ गीतकहुँ नाद ॥३८॥
२०६	एक चलैं घूंघट पट डारैं ।	एक चलैं घूंघट पट डारैं ।
	चंदन बंदन तप अङ्गारैं ।	चन्द्र वदनि जनु ठटीं अखारैं ॥४०॥
२०६	द्रग पूरन की तारिका मूरति रही समाइ ।४१।	द्रग पुतरिन की तारिका मूरति रही समाइ ।४१।
२०७	चित उदास मन चटपटी, विरह उदोग उदास ॥४२॥	चित उदास मन चटपटो विरह उदेग उदास ॥४२॥
	विरही बात सखी सब थापी ॥४३॥	विरह की ताप सखी सब तापी ।४३।
२०८	धृक ते पाहन हीय, नीदन भिदहिं पषान मैं ॥४४॥	धृक ते पाहन हीय, नीर न भिदहि पषान मैं ॥४४॥
	विद्या पढ़ेउँ करन संगीता ।	विद्या पढ़ेउँ व्याकरन गीता ।
	सामुद्रिक जोतिक गुन गीता ॥४५॥	सामुद्रिक जोतिस संगीता ॥४५॥

पृष्ठ	प्रकाशित "मा० का०" का पाठ	"दीघ" वाली प्रति का पाठ
	ज्यौं दादुर बस कूप,	ज्यौं दादुर बस कूप,
	निकसत परहि जु बिरह बस ॥४६॥	निकसत मरहि जु बिरह बस ॥
	अंपन रही ते अंपन लागीं ।	आँखन रही ते आँखियाँ लागी ।
	जिहि निरखत सुख संपति त्यागी ॥४७॥	जिहि निरखत सुख संपति त्यागी ॥४७॥
	हिरदै नाहिं जु कियौ निवासा ॥४८॥	हिरदै माँहि जु कियौ निवासा ॥
२०९	देखि विप्र मुख रह्यो बिनानी ॥४९॥	देखि बिप्र मुख आव न बानी ॥
२१०	जिहि कारन हम तन मन खोदब ।	जिहि कारन हम तन मन खोआ ।
	रकत धार निसि बासर रोयब ॥५०॥	रकत धार निसि बासर रोआ ॥
२११	नैन निकट कर सब मन मोहै ॥५१॥	नैन निरखि करि सब मन मोहै ॥
२११	करन कपोल विषै धरि हाथा ।५।	करन कपोल विप्र धरि हाथा ॥
	जिहि जहँ नेह पसारा कीन्हा ॥५३॥	जिनि यह नेह पसारा कीन्हा ॥
२१२	बहुत दीप दीपक उजियारा ॥५४॥	पुहुप धूप दीपक उजियारा ॥
	गनिका गृध सौं काज,	गनिका गथ सौं काज,
	ऊँच नीच चीन्है नहीं ।	ऊँच नीच चीन्है नहीं ।
	बोलहि बचन जै लाज,	बोलहि कचन निलाज ।
	बस करि राखै पर पुरिष ॥५५॥	बस करि राखै पुरिष को ॥५५॥
२१३	कैधौं बरस मदन कौ भयऊ ॥५६॥	कैधौं दरस मदन को भयऊ ॥५६॥
	यहि विधि विक्रम भयौ उदासा ।	यहि विधि विक्रम भयौ उदासा ।
२१४	नारि उठि चल्यो निरासा ॥५७॥	नारि मारि उठि चल्यो निरासा ॥
	गृथ गँवाइ ज्यौं चलै लुवारी ।५८।	गथ गँवाइ ज्यौं चलै जुवारी ।५८।
	मन महँ झींतय जुरत ही,	झंखत झूरत पचत ही
	सोचय भयौ बिहान ॥५९॥	मन महँ भयौ विहान ॥५९॥
२१५	ओषधि मूर मंत्र करि थाके ।	ओषधि मूर मंत्र करि थाके ।
	फरे न एक जियहि गुन ताके ॥६०॥	फुरे न एक जो गुनियन हाके ॥६०
२१६	जग समुद्र सुख दुख करम,	जग समुद्र सुख दुख करम,
	नातिहि मेटन पार ।	नर तिय मरैं अपार ।
	राज मरन व्यापहि सकल	राज मरन व्यापहि सकल
	जिहिं पृथिवी को भार ॥६१॥	जिहिं पृथिवी को भार ॥६१॥

२१७	आलम उत्तर सोइ,	आलम उत्तम सोइ
	अपजस तँकर का करहिं।	अपजस तैं संका करहिं।
	रहत न लज्जा होइ,	रहैं ते जीवन खोइ
	आपु बुराई कान सुनि ॥६२॥	आपु बुराई कान सुनि ॥६२॥
२१८	सनसुख आवत देखि कै,	सनमुख आवत देखि कै,
	सखी रही सब चाहि ॥६३॥	सखी रही सब चाहि ॥६३॥
	बैठि सखी सों बोलहि गाता ।६४।	बैठि सखी सों बोलहि बाता ।६४।
	अमत बैद हाथ करि लीन्हा ॥६५॥	अमृत बैद हाथ धरि लीन्हा ॥६५॥
२१९	लछमन को संकट पर्यौ,	लछमन को संकट कढ्यो,
	आनि सजीवन मूरि ॥६६॥	आनि संजीवन मूरि ॥६६॥
	गुन संकर बैगुन तै रहिये ॥६७॥	गुन संग्रह अवगुन कत गहिये ॥६७॥
	उठि चरन कंदला गहई ॥६८॥	उठि दोउ चरन कंदला गहई ॥६८॥
२२०	नैम रहै तब मारग लागी॥६९॥	नैन रहै तब मारग लागी ॥६९॥
	सुनत न भावै नाद विस्तारा ॥७०॥	सुनत न भावै नींद अहारा ॥७०॥
२२१	इहि की प्रीति इही जग जानी ॥७१॥	इहि की प्रीति दुई जग जानी ॥७१॥
२२२	येहिलैं राजा पात जनाई ।७२।	पहिलैं राजा बात जनाई ।७२।
२२३	चली चूम चतुरंग ॥७३॥	चली चमू चतुरंग ॥७३॥
	कुंभ विदारन गज दलन,	कुंभ बिदारन गज दलन,
	अब रन मंडै जाइ ॥७	अब रन मंडै जाइ ॥७४॥
२२३	परी रोइ नगरी उकत ॥७५॥	परी रौल नगरी उकताइ ॥७५॥
२२४	सो हर जन की ध न,	सो दुरजन की हाक सुनि,
	रहे न मंदिर माहिं ॥७६॥	रहे न मन्दिर माहिं ॥७६॥
"	दहुँ दिसि जुद्ध राज भल बाजा ७७	दहुँ दिसि जुद्ध राग भल बाजा ॥७७॥
२२५	जीवत मैं मुख भागहीं,	जीवत मैं सुख भोगहीं,
	मरै त सुरपुर जाहिं ॥७८॥	मरै त सुर पुर जाहिं ॥७८॥
२२६	दुउ संताप लै गंग बहावा ॥७९॥	दुख संताप लै गंग बहावा ॥७९॥
"	कथा चौपही आलम कीन्हीं ॥८०॥	कथा चौपई आलम कीन्हीं ॥८०॥

[इत्यादि]

इस प्रकार हमने पर्याप्त समय और ध्यान देकर प्रकाशित "माधवानल कामकन्दला" की मुख्य मुख्य त्रुटियों के संशोधन का यह प्रयत्न मात्र उन पाठकों की सहायता की इच्छा से किया है जिन्हें इस ग्रन्थ के पढ़ने में स्थल स्थल पर अड़चनों का सामना करना पड़ता होगा। केवल इसी मन्तव्य को ध्यान में रखकर यदि ऐसे पाठकों का इस निबन्ध से कुछ लाभ होगा तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा। "माधवानल कामकन्दला" के काव्य की समीक्षा हमने जान-बूझ कर नहीं की है। यह विषय भी प्रस्तुत लेख के उद्देश्य से भिन्न है।

हिन्दी विभाग
सेन्ट ऐन्ड्रूज़ कालेज, गोरखपुर।

तुलसीदास और उनकी देन[1]

[श्री रामनाथ सुमन]

माननीय जस्टिस विश्वास और भाइयो,

सबसे पहले तो मैं बङ्गाल हिंदी मण्डल का धन्यवाद करता हूँ जिसके द्वारा मुझे आप सब गुरुजनों और बन्धुओं की सभा में सम्मिलित होने और उसमें बोलने का अवसर प्राप्त हुआ है। बंगाल हिंदी मंडल ने अपने कार्य की जो दिशा चुनी है, वह महत्वपूर्ण है। हमारे अभागे देश के सम्मुख इतनी समस्याएँ इस समय खड़ी हैं कि साधारण जन-सेवक घबड़ा जाता है—ऐसा जान पड़ता है कि समस्याएँ ही समस्याएँ रह गई हैं और हल सुदूर क्षितिज के उस पार किसी दूर देश में रह गया है। पर हमारी जितनी भी समस्याएँ हैं उनमें हमारे सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की समस्या सब से अधिक महत्वपूर्ण और अनिवार्य है। एक दृष्टि से वह राजनीतिक स्वतन्त्रता की साधना से भी अधिक महत्वपूर्ण है। आज हम अपनी संस्कृति बिल्कुल भूल गये हैं—अपने प्रति असीम आत्मविस्मृति हममें भर गई है। जातीय भावनाओं को तथा उनके पीछे जो मुख्य सन्देश और प्राण था उसको हम भूल गये हैं। जिस समय हमारे पूर्वजों ने मानवता के शाश्वत तत्वों और सत्यों की खोज करके संस्कृति का सन्देश समस्त विश्व को दिया था—सब को अमरता का मंत्र दिया था—श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः—उसकी वाणी रुद्ध है, हृदय रुद्ध है, आत्मा विवश है, प्राण शिथिल है। हम में अपना जो कुछ था उसे हम भूल गये हैं। जो वस्तु ...

---

[1] बंगाल हिन्दी मण्डल कलकत्ता में 'सुमन' जी का भाषण।

के अगणित बन्धनों और कठिनाइयों के बीच हमें बचाये हुए थी, जो अनेक जातियों, वर्गों, सम्प्रदायों, प्रान्तों के होते हुए भी भारतीय राष्ट्र के शरीर में आत्मा की भाँति व्याप्त थी, आज टुकड़े-टुकड़े हो गई है। देश के एक सन्त पुरुष ने सीकचों के भीतर से उसके निर्माण की दीक्षा तो हमें दी पर उसके साथ भी हमने खिलवाड़ किया। फलतः आज हम विश्रृंखल हैं और बिलकुल संकुचित दृष्टिकोण से प्रत्येक समस्या पर विचार करते हैं।

एक निजी जातीय संस्कृति के बिना राष्ट्र की समस्या सन्तोष जनक रूप से कभी सुलझ नहीं सकती। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द ने अपने में विश्वास रखने को सब से अधिक आवश्यक बताया था। भारतीय संस्कृति की इस एकता को मध्य युग के सन्तों ने प्रकट किया है और वह देश के साहित्य में सर्वत्र अपने अपने ढंग पर फैली हुई है। साहित्य के माध्यम से उस उदार दृष्टि और मूर्च्छित संस्कृति को पुनः जीवन दान देने के शुभ उद्देश्य से बंगाल हिंदी मंडल प्रेरित है और इसके लिए कलकत्ता से अच्छा स्थान भी मिलना कठिन है जो बंगाल में होते हुए भी मानो समस्त भारत का है और जहां भारत अपने छोटे से रूप में उपस्थित है—सब प्रान्तों, सब धर्मों, सब वर्गों, सब विचारों के लोग यहाँ हैं। इसलिए मैं बंगाल हिंदी मंडल और उसके कार्यकर्ताओं का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ और अपने विषय पर आता हूँ।

जब मुझे तुलसीदास पर बोलने को कहा गया है तो मुझे ऐसा जान पड़ता है, मानो एक महासागर के सामने खड़ा करके मुझे उसका रहस्य बताने की आज्ञा की गई हो। तुलसीदास की विराटता, विविधता, अनेक रूपता और व्यापकता को देखते हुए थोड़े समय या स्थान में उनका परिचय देना भी अत्यन्त कठिन है। उनका नाम स्मरण करते ही हृदय में एक अपूर्व रसोद्रेक होता है, और अगणित उत्कट भाव, लहरों की भाँति, एक पर एक मन में उठते हैं। किन्हें लूं, किन्हें छोड़ दूं। विराट के सामने वामन-जैसी स्थिति है। तब भी कहना ही है इसलिए तुलसीदास की देन और विशेषताओं के ऊपर संक्षेप में, प्रकाश डालूंगा। यहाँ मैंने कवि और साहित्यकार के रूप में उनकी लोक मंगल की जो साधना है, उसी को विशेष रूप से ग्रहण किया है, भक्त तुलसीदास का मैंने यहाँ गौणरूप से ही वर्णन किया है।

मैं मानता हूँ कि साहित्य न केवल युग का सन्देश वाहक है वरन् संस्कृति का अग्रदूत भी है। साहित्य की साधना मानवता में मृदुल एवं उदात्त प्राणों की प्रतिष्ठा की साधना है। जीवन की स्थूल माँगों के बीच यह उसके सनातन सत्यों की एक परम्परा स्थापित करती है। मनुष्य में जो पशुत्व है उसे लेकर उसका दैनिक व्यापार है; मनुष्य में जो देवत्व है, उसे लेकर उसका आत्माराधन है। हमारे अंतर में सदैव यह संघर्ष चल रहा है। इस युद्ध में कविता धीरे धीरे हमारे प्राणों के अतल में डूबती

है और वहाँ जो चेतना सुप्त और संकुचित है, उसे जगा देती है, विकसित क
है मनुष्य में जो चिरन्तन सत्य मूर्च्छित हैं, सौन्दर्यानुभव द्वारा उनका जागरण
वस्तुतः कविता है। मैं शास्त्र की भाषा में इसे ही देवोत्थान कहता हूँ।

आध्यात्मिक साधना से साहित्य या काव्य की साधना भिन्न है; पर अभिन्न
है। भिन्न यों कि दोनों मानव अन्तःकरण को अलग-अलग ढंग पर स्पर्श करती
अभिन्न यों कि दोनों की परणति एक ही जगह—आत्मानन्द—में जाकर होती
कविता का स्पर्श मृदुल, लगभग अज्ञात, होता है। वह अपने में डूबी, अपने में
ओत प्रोत, चारों ओर रस की फुहियां बरसाती हुई आती है—सलज्जा नई व
समान जिसकी वाणी मौन है; और जिसकी पगध्वनि मानो इतनी ही है कि ध्वनि
आभास है प्रेम की भांति, अनजान में, हृदय के सीपियों में मोती बखेरने वा
आध्यात्मिक साधना का स्पर्श किञ्चित कर्कश है—अन्धकार में एकाएक फैल
वाले प्रकाश की भाँति। आध्यात्मिक साधना सत्य—सापेक्ष है; काव्य-साधना सौ
सापेक्ष है। परम पुरुष जैसे महाप्रकृति में व्यक्त और क्रीड़ित है वैसे सत्य सौन्
वृद्धिमान है।

परन्तु संसार में कुछ, बहुत थोड़े, ऐसे भी कवि हुए हैं जिनमें साहित्य
अध्यात्म की दोनों साधनाएँ मिलकर एक हो गई हैं। सत्य और सौन्दर्य मिल
शिव हो गया है। जीवन को अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई है। प्राण न केवल श्रेष्ठ सं
से आन्दोलित वरन् प्रकाशमान सत्य की अनुभूतियों से मुखरित भी हुए हैं। तुलसी
का स्थान इनमें अन्यतम है।

एक विशिष्ट वर्ग के शिल्पियों के लिए, किसी कला समीक्षक ने लिखा है
They conceived like giants and finished like gewell
तुलसीदास के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। उन्होंने अपने लिए मानव
एक अत्यन्त विशाल 'कनवास' चुना है और इस पर जीवन की संस्कृति और विकृ
आलोक और छाया के जो चित्र उन्होंने खींचे हैं उनमें न केवल सौन्दर्य का रहस्य
जीवन का सन्देश भी बोलता है। विकृति पर संस्कृति, मरण के अन्धकार पर अ
के प्रकाश की विजय के संदेश से उनका काव्य पूर्ण है। दार्शनिक जो कुछ वि
विश्लेषण और जिज्ञासा से प्राप्त करता है, कवि या साहित्य-शिल्पी उसे रसो
हार्दिक सानिद्ध्य और अन्तः सौन्दर्यानुभूति से प्राप्त करता है। दार्शनिक जिसे
के माध्यम से प्राप्त करता है उसे ही कवि सौंदर्य के माध्यम से पर कवि तुलसी
सत्य और सौंदर्य दोनों का ऐसा सामञ्जस्य हो गया है कि संसार में अन्यत्र दु
है। इसीलिए वह न केवल सत्य और सुन्दर हैं, प्रकाश और रस से भरे हुए हैं

सर्वत्र शिव हैं, सर्वत्र शुभ हैं।

जिस युग में वह हुए, उस युग की पार्श्वभूमि पर उनको रख कर देखिए। उनका जन्म भारतीय सभ्यता के एक अत्यन्त संकट ग्रस्त काल में हुआ था। आज की भांति ही, उस समय भी भारतीय, विदेशी शासन और सभ्यता के प्रभाव से आत्मानुभव शून्य हो रहे थे; चरित्र का तल नीचे गिर गया था; धर्म या तो व्यक्तिगत हो गया था; या फिर एक व्यवसाय हो रहा था। राष्ट्र की आत्मा मूर्च्छित थी; हिन्दू संस्कृति विकृत हो गई थी; आत्मनिष्ठा का लोप हो गया था; स्वार्थ और लोभ की धर्म पर विजय हुई थी। हिन्दू धर्म का मूल अनुबन्ध और शुद्ध स्वरूप भूल गया था और नाना पंथों एवं सम्प्रदायों का जन्म हो रहा था, जो यद्यपि अपने स्थापकों की दृष्टि में शुभ थे, किन्तु समाज-विज्ञान की भारतीय धारणा और उसमें धर्मानुभूति के मूल तत्त्व को भूल गये थे। श्रुतिपंथ त्यागने वाले ही ज्ञानी वैरागी थे—

निराधार जे श्रुतिपथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी वैरागी।
विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी।

केवल संन्यासी का वेश धारण करके जनता को ठगने वालों की भर मार थी ज्ञान की गरिमा का लोप हो गया था। थोथे तार्किक पंडित रूप में पुज रहे थे। भक्ति विलासिनी बन गई थी। कृष्ण-काव्य ने लोगों में एक अनुराग भावना, एक आनन्दानुभूति एक रस तो उत्पन्न किया पर राष्ट्रीय चरित्र की शिथिलता के कारण श्रेष्ठ आलंबन भी विकृत रूप में स्वीकार किये गये। कृष्ण—जैसे जीवन के रहस्य के व्याख्याता और अनासक्ति तथा उच्च प्रेम की महिमा के गायक अवतार-पुरुष केवल क्षुद्र वासनाओं के आलंबन रूप में रह गये; भक्ति काव्य में भी आग्रह और बंधन का ही स्वर भर गया; मुक्ति के गान कंठ के भीतर ही सिसकते रहे। मुक्ति का स्थान आसक्ति ने ले लिया था, प्रेमानुभव श्रृंगारिकता एवं विलास के रूप में बदल रहा था। वीरावेश तथा ओज का राष्ट्र के पौरुष अतः साहित्य से भी लोप हो रहा था, फलतः जाति के अन्तःकरण पर गहरी मूर्च्छना का धुआं छा गया था। व्यथा और अनुताप को दूर करने के लिए या तो राधाकृष्ण के श्रृंगारिक आलंबनों से एक शिथिल रस सृष्टि की और उसी में अपने को भुला रखने की चेष्टा की गई, या फिर संसार से भाग कर वैराग्य के विकृत रूप का आश्रय लिया गया। जातीय जीवन के रुद्ध कपाट के बाहर नाना प्रकार की प्रति क्रियाओं का कोलाहल रो रहा था, और भीतर त्रस्त शिथिल अर्ध मूर्च्छित आत्मा अभिव्यक्ति के अभाव में तड़प रही थी।

ऐसी मूर्च्छा के काल में, प्रभु कृपा से, हमारे देश और साहित्य में तुलसी का अवतार हुआ। उन्होंने वर्णाश्रमधर्म, लोकाचरण, नीति, वेदोक्त कर्म, शुद्ध ज्ञान तथा

भक्ति का समन्वय करके, मर्यादा पुरुष राम के लोक रंजक कल्याणकारी रूप
आलम्बन ले हमारी मूर्च्छा दूर की। राम के आदर्श चरित्र के सहारे, अपनी लोक
प्रतिभा से उन्होंने धर्म का कल्याणकारी पर साथ ही अत्यन्त सरल रूप जन
के सामने रखा और हमारी जातीय संस्कृति को अधिक छिन्न-भिन्न होने से
लिया। यह उन्हीं की कृपा है कि अपढ़, अशिक्षित, अथवा अपेक्षाकृत बहुत
शिक्षित जनता में हिन्दू धर्म का मूल सन्देश और प्रेरक शक्ति आज भी रक्षित
उत्तर भारत के ग्राम राम मय हो गये हैं और शास्त्र की जटिल बातें रामायण
जिह्वा से उनके सामने अत्यन्त सरल रूप में आती हैं। सामाजिक दृष्टि से तुलसी
की एक दूसरी महान सेवा यह है कि उत्तर भारत के हिंदी प्रान्तों को उन्होंने, अपने स
में फैलते हुए धार्मिक विप्लव से बचा लिया। उस समय शैवों और वैष्णवों
झगड़ा सर्वत्र बढ़ रहा था। उन्होंने दोनों के प्रति भक्ति और निजत्व की दीक्षा
जनता की संकुचित धर्म-भावना का संस्कार किया और क्षुद्र साम्प्रदायिक ईर्ष्या
हमें ऊँचा रखा। यह उन्हीं की कृपा है कि उत्तर भारत में शैवों और वैष्णवों
बीच एक सुखद सम्बन्ध वर्तमान है और दक्षिण का शैव-वैष्णव भेद यहाँ कहीं दि
नहीं देता। अधिकांश हिंदू दोनों को जीवन के चरम आदर्शों का प्रतीक मान
अपनाते हैं।

गोस्वामी जी को हुए शताब्दियाँ बीत गई हैं—काल के अमित प्रवाह
जाने हम कहाँ से कहाँ पहुँच गये हैं। हमारी आँख बदल गई है। तुलसी की बहुत
बातें, सम्भव है, हमें, आज उस सीमा तक, रुचिकर न लगती हों पर हमें अपने
काल और परिस्थिति में रखकर उनको देखना चाहिए। सम्भव है, आज कि
हिन्दू धर्म में दिये गये, और तुलसी समर्थित ब्राह्मण के अतिरिक्त अधिकार—Ext
teritorial rights—ठीक न जँचे पर यह याद रखना चाहिए कि ब्राह्मण
महत्त्व किसी अधिकार के बल पर नहीं, त्याग और तप के बल पर स्थापित हुआ था
लोक-कल्याण में अपना समस्त जीवन देकर भी वे अपने को ऐहिक सुख के
साधनों से अलग रखते थे, दूसरों के लिए ऐहिक सुख की व्यवस्था करके अपने लि
उसे उन्होंने त्याज्य रखा था। इस अनासक्त दृष्टि एवं तपःपूत जीवन के कारण
उन्हें लोक-श्रद्धा और लोक-नेतृत्व प्राप्त हुआ था। इसी प्रकार क्षत्रिय को जहाँ
के शासन का अधिकार था तहाँ समस्त प्रजा की रक्षा के लिए सब से पहले अ
सिर कटाने के धर्म की व्यवस्था थी। प्रजा के दुखी होने पर राजा नरकगामी हो
था (जासु राजु प्रिय प्रजा दुखारी। सोनृप अवसि नरक-अधिकारी)। उत्तरदा
की गुरुता जिस पर जितनी थी, उतना ही त्याग का अंश उसके जीवन में

रखा गया था। समस्त पद्धति वर्ग-भेद या वर्गीय अधिकारों पर नहीं वरन् लोक-कल्याण की शक्ति और क्षमता पर निर्भर थी। स्पष्ट है कि हिन्दू जाति के जीवन की यह संघटना दीर्घ अनुभव, मनन और चिन्तन का परिणाम थी। खण्ड दृष्टियों से देखने वाले इसमें बहुत से दोष देख सकते हैं परन्तु लोक मर्यादा और समाज शक्ति का संघटन और पथ-प्रदर्शन करने वाले महात्माओं को सामूहिक एवं दृष्टि से जीवन की मुख्य धारा की अक्षुण्णता का विचार पहले करना पड़ता है। तुलसीदास ने देखा कि नाना सम्प्रदायों एवं नवीन मत-मतान्तरों के प्रचलन से हिन्दू धर्म का वह दृढ़ आधार टूट जायगा जिस पर उसका सारा ढाँचा खड़ा है। इसीलिए उन्होंने गोरख इत्यादि महात्माओं द्वारा प्रचारित जटिल धर्म-सम्प्रदायों का विरोध किया और अपनी अन्तर्दृष्टि, असाधारण काव्यशक्ति एवं भक्ति से उन्होंने जातीय जीवन की अन्त:सलिला को न केवल सूखने से बचा लिया वरन् उसे सरल समतल मैदानों पर बहाकर उसका लोकमङ्गलकारी रूप भी प्रकट किया।

पर जिस साधन से तुलसीदास को अपने उद्देश्य में अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई वह उनका काव्य था। इस काव्य के द्वारा उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम का प्रमल, मंजुल पर साथ ही प्रति पग पर लोक मर्यादा और कर्त्तव्य बंधन में बँधा ऐसा मनोहर रूप सामने रखा कि लोक मानस से मोह का परदा हट गया—उसे सच्ची भक्ति, सच्चे जीवन की दीक्षा मिली। इस दिशा में जिस ग्रन्थ ने सब से अधिक सफलता प्राप्त की, और जो कदाचित् संसार की सबसे लोकप्रिय रचना है—अगणित संस्करण, अगणित अनुवाद, टीकाएँ और संग्रह इसके साक्षी हैं—वह रामचरित मानस या रामायण है। यह वही अद्‌भुत ग्रंथ है जिसे गांधी जी भक्ति मार्ग का सर्वोत्तम ग्रन्थ कहते हैं, जिसे फ्रेंच लेखक 'शेतो ब्रियाँ' ने 'मानवमात्र की बाइबिल' कहा है; स्वर्गीय सत्य मूर्ति जिसे 'हमारा संजीवन अमृत' कहते थे, जिसे लाला हरदयाल 'भारत का राष्ट्रीय काव्य' कहते हैं और जिसके विषय में श्रीयुक्त हीरेन्द्रनाथ दत्त का कथन है कि रामायण के समान समस्त भारतीय साहित्य में एक भी ग्रन्थ नहीं है और उसे जानने का अर्थ है कि जानने योग्य सारी बातें जान ली गईं, उसके विषय में और क्या कहा जा सकता है? मैं तो भारतीय कला के पुनरुद्धारक श्रीअवनीन्द्र बाबू के शब्दों में यही कहूँगा कि इस पुस्तक ने समूचे भारत को स्वर प्रदान किया है।[1] यदि यह कहा जाय कि पिछले तीन सौ वर्षों से सभी शास्त्रों और दर्शनों का काम केवल मानस ने उत्तर भारत की साधारण जनता के लिए किया है

---

[1] श्रीराजेन्द्र प्रसाद

तो इसमें ज़रा भी अत्युक्ति नहीं।" यहाँ भक्ति की विमल मन्दाकिनी में अवगाहन कर प्राण तो तृप्त होते ही हैं, नीति का सरल और क्रियात्मक पथ-दर्शन तो प्राप्त है ही है पर काव्य-कला के उत्कर्ष और रसानुभूति की दृष्टि से भी यह विश्व साहित्य का मुकुट मणि है। जैसा कि राजेन्द्र बाबू कहते हैं, "जो भक्त नहीं हैं उनके लिए इसमें इतना काव्य है, इतनी मधुरता है, रसों का इतना सुन्दर मिश्रण है और रस का इतना विकास है कि संसार के बड़े से बड़े काव्यों से यह टक्कर ले सकता है।"

आदर्श महाकाव्य न केवल जातीय जीवन का एक विशद चित्र होता है वरन् वह जातीय जीवन का पथ प्रदर्शक और संस्कारक भी होता है। शास्त्रीय पद्धति से काव्य में कोई चमत्कार पूर्ण पद मैत्री को, कोई रसात्मक वाक्य को, कोई अलंकार विधान को, कोई भावानुभूति को, कोई ध्वनि को महत्त्व देते हैं पर तुलसी के काव्य को काव्य या महाकाव्य की चाहे जिस परिभाषा पर तौला जाय, उसका मूल्य स्थिर रहेगा। तुलसी स्वयं तो कवि एवं कविता को इन सब परिभाषाओं से ऊँचा स्थान देते हैं। उन्होंने स्वयं ही कहा है, और इस कहने में ही कविता का आदर्श भी निरूपित ही कर दिया है—

कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कर हित होई॥

'कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही प्रशंसनीय है जिससे गंगा जी की तरह सब का हित हो।' ऐसा कहकर उन्होंने न केवल कवि का गौरव बहुत ऊँचा कर दिया है बल्कि उसके लोक मङ्गलकारी पक्ष पर ही उन्होंने अधिक ज़ोर दिया है। श्रेष्ठ कविता की एक और महती कसौटी निर्धारित करते हुए वह कहते हैं—

सरल कवित, कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बैर बिसराय रिपु, जो सुनि करहिं बखान।

'शत्रु भी सहज वैर भूलकर जिसकी प्रशंसा करे, वह कविता है।' सच्चे काव्य का यही महत्त्व है। सच्ची रस-सृष्टि में, आनन्दानुभूति से, हृदय उच्च भूमिका पर उठ जाता है अतः उसे द्वेष क्यों होगा? तुलसी ने काव्य की जो कठिन कसौटी निर्धारित की थी, उस पर वह बहुत खरे उतरे।

राम चरित मानस एक प्रबन्ध काव्य है। वह महाकाव्य है। वह न केवल महाकाव्य की शास्त्रीय विशेषताओं और व्यञ्जनाओं से पूर्ण है वरन् जीवन की उदात्त कल्पना का भी श्रेष्ठ चित्र है। उसकी कथा, मानव जीवन की एक परम आवश्यक और महान समस्या को लेकर उठती है। धर्म का लोप हो गया है; पाप बढ़ गया है; लोग कर्तव्य भूल गये हैं; समाज विवेक भ्रष्ट है; पृथ्वी असुरों के वश में है।

वे पशुबल से उन्मत्त हो गये हैं; ईमानदारी का जीवन असम्भव हो गया है। चरित्र या नीति का अनुशासन न वे मानते हैं, न किसी को मानने देते हैं। सच्चे ज्ञान, तप, त्याग तथा अन्य सात्त्विक प्रवृत्तियों का दलन हो रहा है। देवत्व का लोप हो गया है; आसुरी शक्तियों का बोल-बाला है। मानवता की प्रतिनिधि सहनशील पृथ्वी असहाय, निरवलम्ब होकर त्राहि त्राहि कर रही है। जगत् के सनातन नियमों के अनुकूल, भक्त के शब्दों में नियन्ता प्रभु के आश्वासन—'धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे'—के अनुकूल, इस कष्ट से मानव समाज को मुक्ति देने के लिए समष्टि शक्ति राम के रूप में अवतीर्ण होती है। वह मर्यादानुकूल—समाज में धर्म की, कर्तव्य की, मर्यादा स्थापित करते हैं आसुरी शक्तियों को नष्ट कर पशुबल के स्थान पर धर्म बल, तप बल और पशुता प्रधान राज्य के ऊपर धर्म प्रधान राज्य की स्थापना करते हैं। भगवान् राम का जीवन, यहाँ, कोई ऐन्द्रजालिक चमत्कार का जीवन नहीं है। वह व्यक्तिगत सुख-स्वार्थ पर लोकहित की प्रधानता का जीवन है। वह अपने कष्ट, अपने यश, अपने कौटुम्बिक सुख की परवा न कर अन्याय और पाप की आसुरी शक्तियों की चुनौती—चैलेंज स्वीकार करते हैं। उसके लिए स्वयं त्याग का जीवन अंगीकार करते हैं। तपस्वियों के आशीर्वाद, जनता के संकल्प, और तदनुकूल संघटन—द्वारा इस संघर्ष में सत्य की विजय होती है। दंभ और पाखण्ड का अन्त होता है। कैसी दिव्य है यह कल्पना! कैसा दिव्य है राम का यह रूप—लोक कल्याण के लिए सदा तैयार; निजी कष्टों की परवा न करने वाले, स्वयं दुःख उठाकर भी लोक मर्यादा की स्थापना के आदर्श से अनुप्राणित। युरोपीय महाकाव्यों की तरह इसमें राजाओं या राजकुमारों का युद्ध नहीं है; यहाँ धर्म के अवतार का अधर्म की प्रतिमूर्ति से संग्राम है। सत्शक्तियाँ ही इस संग्राम के वास्तविक अस्त्र हैं, जैसा बाह्य साधनों से हीन, रथहीन भगवान् स्वयं कहते हैं—

सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ धुजा पताका।
बल विवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर विग्यान कठिन कोदंडा।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद विप्र गुर पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।

गांधी प्रवर्तित जीवन नीति का रहस्य इन थोड़ी चौपाइयों में, शताब्दियों

पूर्व कवि हमें बता गया है। संसार में यही एक ऐसा काव्य है जो लोक
कारी भगवान् की सहायता एवं पथ-प्रदर्शन के आधार पर पाशविकता पर मा
के विजय का सन्देश देता है। इसमें प्रसाद और ओज, प्रेम और कर्तव्य, सौन्द
सत्य का ऐसा समन्वय है जो साहित्य के इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है।

और आश्चर्य तो यह है कि जीवन के इस विराट चित्र में कहीं दु
क्लिष्टता या बनावटी पन नहीं है—सौन्दर्य और शक्ति की एक ऐसी व्यञ्जना जो
अतरंग के अगणित आंशिक चित्रों में भी पूर्ण है, और सब अंश मिलकर एक
कृति का निर्माण भी करते हैं। होमर की रचना-सृष्टि के लिए कहा गया है—
प्रबन्ध जिसमें कोई प्रयास नहीं है, वह अनुभूति जो प्राणों को गुदगुदा कर दिव्य
के रूप में फूट निकली है।' यह कथन मानस पर इससे भी अधिक च
होता है।

विशेषता तो यह है कि सारी रामायण की संघटना जीवन की प्रकृत
समानान्तर है। शैशव में कुतूहल, क्रीड़ा फिर जिज्ञासा, किशोरावस्था में सौन्द
भूति, योवन में प्रेम, फिर कर्तव्य की गुरुता, उत्तरदायित्व, संघर्ष, कष्ट तथा
में सिद्धि। रामायण का भी यही क्रम है। काव्य-कला की दृष्टि से देखें तो बाल
का उत्तरार्द्ध समस्त अयोध्या काण्ड और उत्तरकाण्ड पुष्ट एवं श्रेष्ठ काव्य के उ
हैं। अयोध्याकाण्ड माला का सुमेरु है। इसमें एक भी शिथिल पंक्ति नहीं।
की भाँति कवि की कविता इसमें रस और सौन्दर्य से भर उठी है। करुण र
वह प्रवाह, जो रुकना नहीं जानता और जिसमें हृदय का सब कल्मष धुल जाता

महाकाव्य में साधारणतः दो प्रकार के चित्रण होते हैं: बाह्यजगत का चि
अन्तर्जगत का चित्रण। बाह्य जगत् के चित्रण की दृष्टि से महाकाव्य में सू
चन्द्रोदय, ऋतुएँ, नदी, सरोवर, बन, नगर, संग्राम, विवाह, शरीर सौन्दर्य, रा
इत्यादि के वर्णन आवश्यक हैं। रामायण में इन सब के वर्णन विस्तार से हु
और बहुत सुन्दर हुए हैं। अन्तर्जगत के चित्रण में करुणा, प्रेम, विरह, क
मानसिक संघर्ष, अनुभूति का प्राधान्य होता है। प्रेम और विरह के विविध
के चित्रणों से रामायण भरी है। इसमें सन्तान प्रेम, पितृ प्रेम, सब प्रकार के
प्रेम के चित्र हैं। काव्य कला के भी दो उपादान हैं: बाह्य और आन्तर।
बाह्य गुणों में छन्द, तुक, लय, प्रवाह, प्रसाद गुण, अलंकार, संवाद इत्यादि
हैं। इन्हें काव्य का अनुबंध या शरीर कहेंगे। आन्तर गुणों में रस सृष्टि, स
अनुभूति एवं आदर्श या प्रेरक भावना को लेते हैं। शास्त्र की भाषा में यह चीज़
या काव्य शरीर में प्रच्छन्न सन्देश या संकेत से मिलती-जुलती है। यह भाव

अशरीरी सृष्टि काव्य की आत्मा है। इन दोनों दृष्टियों से तुलसीदास सच्चे महाकवि थे। उनके काव्य का सबसे बड़ा चमत्कार तो यह है कि जहाँ वह बाह्य जगत् का चित्रण करते हैं तहाँ भी उसके पीछे उनका अन्तर्जगत् झाँकता है। सूर्योदय है तो चन्द्रोदय है तो उसमें अन्तर्जगत की झाँकी है। अलंकार-विधान से पीछे नीति के दर्शन होते हैं। मतलब एक साथ देह, प्राण, और आत्मा तीनों का सामाञ्जस्य कर एक पूर्ण मानव-सृष्टि के सौन्दर्य का दर्शन कराते हुए चलते हैं। कुछ थोड़े से, संक्षिप्त उदाहरण यहाँ पर्याप्त होंगे—

राज सभा में राजा बैठे हुए हैं। गुरु की आज्ञा से रामचंद्र धनुष तोड़ने के लिए उठ रहे हैं। तुलसीदास इसी को लेकर सूर्योदय का रूपक बाँधते हैं—

उदित उदय गिरि मंच पर, रघुबर बाल पतंग,
विकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन भृङ्ग।
नृपन्ह केरि आसा-निसि नासी। बचन नखत अवलीन प्रकासी।
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने।
भये विसोक कोक मुनि देवा। इत्यादि।

इसी प्रकार प्रकृति और ऋतु-वर्णन में भी देखिए—

लछिमन देखहु मोर गन, नाचत वारिद पेखि।
गृही विरतिरत हरष जस, विष्णु भगत कहुँ देखि।
दामिनि दमकि रह न घन माँही, खलु कै प्रीति जथा थिर नाहीं।
बरसहिं जलद भूमि नियराये। यथा नवहिं बुध विद्या पाये।
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे।
छुद्र नदी भरि चलि उतराई। जनु थोरेहुँ धन खल बौराई।
सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहँ आवा।
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ।
सस सम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै संपत जैसी।
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रकट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि, पाइ कुसंग, सुसंग।

शरत:

उदित अगस्त पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखै संतोषा।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।

इन उदाहरणों में आप देखिए, काव्य का शरीर और उसकी आत्मा साथ-साथ

चल रही है। कवि एक ही साथ कई कर्तव्यों का निर्वाह कर रहे हैं। सूर्योदय वर्णन द्वारा महाकाव्य की एक आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। पर सूर्योदय भी राम मय है। इस रूपक में भी, एक कथा चल रही है; उनका अंगीकृत कार्य होता जा रहा है। मंत्र रूपी उदयाचल पर रघुबीर रूपी बाल सूर्य के उदय (अर्थात् रामचंद्र के धनुष भंग करने के संकल्प से खड़े होते ही) सन्त सज्जन कमल खिल गये और उनके लोचन रूपी भौंरे प्रसन्न हो गये। राम के खड़े होते राजाओं की आशा पर पानी फिर गया— उनकी आशा-निशा बीत गई। उनकी बन्द हो गई जैसे नक्षत्रों का प्रकाश नष्ट हो गया हो। घमंडी राजा कुमुद की संकुचित हो गये। कपटी उल्लू की भाँति छिप गये। इत्यादि। वर्षा के वर्णन भी यही बात है। बादल घिरे हैं, मोर नाच रहे हैं, बिजली चमक चमक जाती है। बादल पृथ्वी के निकट झुककर बरस पड़ते हैं। पहाड़ों पर बूँदें गिरती छोटी छोटी नदियाँ उफन चली हैं। वर्षा का जल चारों ओर से आकर तालाब एकत्र हो रहा है। यह वर्षा का सामान्य वर्णन हुआ। उसकी रूप रेखा हुई पर साथ जो अलंकार-विधान हैं उनके द्वारा वह न केवल वर्षा का वर्णन करते हैं धर्म नीति की झाँकी भी देते चलते हैं। बादलों को देखकर मोरों को आनन्द होता है। एक प्राकृतिक तथ्य है। पर कैसा है वह आनन्द? जैसा भगवद् भक्त को ज्ञानवान गृहस्थ को होता है। यह भी एक वस्तु स्थिति है। एक वस्तुस्थिति से ऐसी वस्तुस्थिति का संकेत करते चलते हैं जिससे नीति के अमृत बिन्दु झरते हैं। इसी प्रकार बादलों में बिजली चमकती तो है पर ठहरती नहीं, मानों दुर्जन प्रीति की अस्थिरता की याद दिलाती हो। बादल पृथ्वी पर झुककर बरस पड़े विवेक गन विद्या पाकर नम्र हो जाता है। पहाड़ों पर बूंदें कैसी पड़ रही हैं जैसे पुरुष खल के वचनों को चुपचाप सह लेते हैं। धान्यपूर्ण पृथ्वी कैसी लगती है, उपकारी की सम्पति. (उपकारी की भाँति पृथ्वी भी सब कुछ दे देने के लिए उद्यत है।) दिन में कभी घटाओं के छा जाने से अँधेरा हो जाता है, कभी सूर्य निकल आते हैं, जैसे जीवन में कुसंग पाकर ज्ञान नष्ट हो जाता है और अच्छी संगति से फिर उत्पन्न हो जाता है।

शत-शत उदाहरण ऐसे और उपस्थित किये जा सकते हैं। यहाँ अलंकार न केवल काव्य की शोभा मात्र हैं वरन् उसके लिए उपयोगी भी हैं—उसके आन्तरिक उद्देश्य में उनकी कुछ सार्थकता है। वे कवि के मनोभावों के व्यक्त करने में सहायक हैं।-कवि के मानस में क्या मंथन हो रहा है, इसकी एक झाँकी हमें देते चलते हैं।

चरित्र-चित्रण को लें तो राम-भरत इत्यादि के चित्रण में कवि अपने

राम काव्य के सम्पूर्ण कवियों के आगे निकल गया है। वाल्मीकि रामायण तथा अध्यात्म रामायण में जो दुर्बलताएँ तथा शिथिलताएँ हैं वे यहाँ नहीं हैं। अध्यात्म रामायण में कौशल्या राम को भय दिखाती हैं कि यदि वे उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर वन जायँगे तो वह जीवन का अन्त कर लेंगी (अध्यात्मः अयो० (४) १२-१३)। इसी प्रकार लक्ष्मण, सीता, निषादराज, भरत जिसे देखो वही अपनी उद्देश्य-सिद्धि के लिए, अपनी बात मनवाने के लिए आत्म हत्या की धमकी देता है। जीवन तथ्यों के प्रति यह कैसा खेल है! कैसा व्यामोह है। दशरथ, लक्ष्मण आदि अधिकांश पात्रों में गंभीरता, दृढ़ता एवं कर्तव्य-बुद्धि की अपेक्षा भावावेश की अधिकता है। तुलसी के चरित्रों में यह बात नहीं है। वे परिस्थितियों का आघात सहते हैं, उनसे वीरतापूर्वक बढ़ते हैं; कहीं उनसे भागते नहीं। लड़खड़ाते हैं पर फिर उठ कर बढ़ते हैं। वे नियुक्त कर्तव्य के पालन में बराबर तत्पर हैं।

किसी जाति के उत्थान तथा धर्म-संस्थापन में सहायक होने के लिए राम-सा नायक किसे मिलेगा? मानवता में जितने उदात्त गुणों की कल्पना की जा सकती है तुलसी के राम उन सबके समष्टि-प्रतीक हैं। उच्च वंश, शरीर-संपत्ति, अनुकूल वातावरण, स्नेह, सत्य प्रियता, लोभ हीनता, स्वच्छहृदयता, दृढ़ता, कर्तव्य निष्ठा, परहित कातरता, भ्रातृप्रेम, सुशीलता, गंभीरता, मर्यादा के पालन की वृत्ति, अधर्म और अनैतिकता के विरुद्ध उनका निरन्तर युद्ध। तुलसी के राम कैसे हैं? छोटों पर ममता और स्नेह, बड़ों के प्रति श्रद्धा और नम्रता, दाम्पत्य स्नेह में निपुण पर भोगासक्ति से दूर; सर्वत्र कर्तव्य-बुद्धि से प्रेरित। ऐसा ही चरित्र पृथ्वी को धर्ममय बना सकता है; ऐसा ही चरित्र पृथ्वी पर स्वर्ग की स्थापना कर सकता है। इसमें सर्वत्र सरलता है; कहीं भी कुटिलता नहीं है। विशेषतः भरत के प्रति उनके स्नेह की सीमा नहीं है। राज्याभिषेक के पूर्व शुभ अंगों के फड़कने पर राम कल्पना करते हैं कि वे भरत के ननिहाल से लौटने के ही सूचक हैं (पुलकि सप्रेम.परस्पर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं।) उदारता और निःस्वार्थ प्रेम के वशीभूत होकर ही उन्हें दुःख होता है कि हमारे वंश में सब उचित है पर छोटे भाइयों की उपेक्षा कर केवल बड़े का राज्याभिषेक किया जाता है यह अनुचित है। उन्हें न राज्याभिषेक से प्रसन्नता है, न बनवास से दुःख। वे अपने में समत्व की मूर्ति हैं। कर्तव्य और स्नेह का भाव ऐसा प्रबल है कि जब बन में लक्ष्मण और सीता को गृह तथा सम्बन्धियों की सुधि में दुखी पाते हैं तो अपना हृदयावेग रोक कर भी उनका मन बहलाते हैं। कैकयी से वे सदा उसी मातृभाव एवं प्रेम से मिलते हैं जैसे अन्य माताओं से। इतनी नम्रता और संकोच से भरे हैं कि अवध लौटने के आग्रह पर वे कर्तव्य का निर्णय गुरुजनों और

भरत पर छोड़ देते हैं। इसी प्रकार शरणागत की रक्षा, शौर्य, धैर्य, प्रेम, शील, उदारता से उनका जीवन-पट चित्रित है।

भरत का चरित्र तो राम से ही उज्ज्वल हो गया है। वह अगाध है। वह राम के प्रति असीम प्रेम और भक्ति से पूर्ण है। इस प्रेम में कहीं भी लाघव नहीं, सर्वत्र भरत ने मर्यादा की रक्षा की है। राम और भरत के परस्पर ऐसे असंदिग्ध प्रेम के होते हुए भी परिस्थितियों का चक्र ऐसा है कि भरत के निमित्त से ही राम वनवासी होते हैं। प्रेम के प्रति परिस्थिति का यह व्यंग काव्य को नाटकीय उत्कर्ष प्रदान करता है। कवि ने भरत की मनोदशा का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है। अनुताप से पूर्ण भरत का सब ऐहिक सुखों एवं कोशल का राज-त्याग तथा माता के अनुचित आचरण के प्रति प्रायश्चित्त भाव, इन दो अद्भुत तत्वों के समावेश ने भरत को संसार के साहित्य में बे जोड़ कर दिया है। मानव जाति के इतिहास में वे एक अत्यन्त दुर्लभ पर मूल्यवान 'कोटि' हैं। भारत का वर्णन करते हुए कवि तुलसीदास का रोमांच पुलकित है—राम प्रेम मूरति तनुआही (भरत राम प्रेम की मूर्ति हैं) धरे देह जनु राम सनेहूँ (मानो राम प्रेम ने शरीर धारण कर लिया हो।), भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम, रामु जप जेही। (भरत जैसा राम का स्नेही कौन होगा, जिस राम को जपता है वही राम उन्हें जपते हैं) या—

पेम अमिअ मंदरु बिरहु, भरत पयोधि गँभीर,
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपा सिंधु रघुबीर।

प्रेम अमृत है, विरह मंदराचल है, भरत गहरे समुद्र हैं; देवों और साधुओं के हित के लिए कृपालु रामचन्द्र ने स्वयं मथ कर (इस अमृत को) प्रकट किया है।

तुलसी ने राम और भरत के चरित्र एक जगह, संक्षिप्त कर के= उनका सार निकाल कर रख दिया है—

भरत अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सींव समता की।

भरत स्नेह और ममता की मर्यादा हैं और राम समता—समत्व—की सीमा हैं। लक्ष्मण का चरित्र राम के प्रति समर्पित, निर्भय, दृढ़ उत्साह से भरे हुए, त्यागी पर आवेश-प्रधान वीर युवक का चरित्र है। सदा राम की सेवा में तत्पर; सब सम्बन्धों को भूल कर केवल राम को लेकर चलने वाले। साहित्य में सेवा मूर्ति रूप, सर्व त्यागी लक्ष्मण एक अद्भुत सृष्टि हैं। इसी प्रकार कौशल्या, सीता इत्यादि के चरित्र भी श्रेष्ठ जीवन-सन्देशों से भरे हुए हैं। सब में प्रेम पर कर्तव्य, भावावेश पर विवेक का नियन्त्रण है। यहाँ सब चरित्रों की आलोचना के लिए न स्थल है, न उसकी आवश्यकता है।

भाव-चित्रण की दृष्टि से तो तुलसी का कोई जोड़ नहीं। प्रेमोद्रेक, प्रवास,

विरह, शोक, उत्साह, लज्जा, अनुताप इत्यादि मनोभावों के सुन्दर चित्रणों से उनका काव्य भरा हुआ है। मानस के रूप में तुलसी ने एक अद्भुत काव्य-सृष्टि की है। विश्व साहित्य में यह एक अद्भुत ग्रंथ है। अपने व्यापक एवं सर्वाङ्गीण सौन्दर्य से राम चरित मानस ने सब श्रेणियों एवं वर्गों को आकर्षित किया है। पण्डितों को उसने गूढ़ विचार-भक्तों को आनन्द और सरल अशिक्षित मनुष्यों को जीवित श्रद्धा प्रदान की है। कवि तथा साहित्य-रसिक उसमें काव्य का चरम आदर्श पाते हैं; नीति के पुजारियों को उसमें नीति की श्रेष्ठ व्याख्या मिलती है। हिंदू जाति के हृदय में मानस एक अमृत स्रोत की भाँति बह रहा है।

पर मानस पर विचार करते समय मुझे ऐसा लगता है और इसी लिए मेरा नम्र निवेदन यह है कि मानस की परिपूर्ण महानता को ग्रहण करने के लिए हमें आंशिक दृष्टिकोणों एवं आसक्तियों से ऊपर उठना होगा। मानस केवल काव्य नहीं है; मानस केवल नीति ग्रन्थ नहीं है; मानस केवल भक्ति की व्याख्या नहीं है। निश्चय ही वह यह सब है पर इसके अतिरिक्त भी वह कुछ है—वह जो सदा रहने वाला है, वह जो शब्दों में पूर्णतः व्यक्त नहीं हो सकता पर जो इस महान् ग्रन्थ की काया में आत्मा के समान व्याप्त है।

इस दृष्टि से देखें तो ज्ञात होगा कि मानस वस्तुतः सम्पूर्ण मानव का—नित्य मानवता का चित्र है। उसके उपादान जगत् से ही लिये गये हैं और इसी लिए वे प्रवर्तमान, प्रवर्द्धमान और ह्रासशील भी रहे हैं। उनमें जीवन अंकुरित हुआ, बढ़ा, प्रस्फुटित हुआ; उनमें उसने अपना खेल खेला है पर जब वे मुरझाकर विनष्ट हो गये हैं तब भी युग-युग व्यापी अपने अदृश्य एवं सूक्ष्म रूप तथा सन्देश को लिये वह प्रधावित है और विश्व के पथों से दौड़ता हुआ बुझे अथवा प्रगुप्त प्रदीपों को जलाता चला रहा है। प्रकाश की यह अक्षय धारा, प्रकाश का यह अक्षय दान ही उसकी विशेषता है।

मानवता की इस मन्दाकिनी में विविध पात्र स्नान कर स्वयं शीतल एवं दिव्य होते गये हैं और दूसरों की शीतलता बढ़ाने में वे सहायक भी हैं। वैसे मानस में राम हैं, रावण है, सीता हैं, शूर्पणखा है, भरत हैं, लक्ष्मण हैं, कौसल्या और कैकेयी हैं, पर उसके आत्मरूप में, उसकी उच्च कला-सृष्टि में, उसकी आत्यन्तिक धारणा में सब निमग्न हो गये हैं (या भक्ति की भावमाला में कहें तो सब राममय हैं)। वहाँ सब सुन्दर हैं, सब स्थानोचित हैं, सब मिलकर एक विराट विश्वरूप की सृष्टि करते हैं और विविध पात्र इस विराट रूप के अंग-प्रत्यंग मात्र रह जाते हैं।

राम : कर्तव्य-पालन में सतत नियुक्त पुरुषोत्तम; सीता : कर्तव्य के चरणों में

चिरन्तन नारी के चिर सौख्य का आत्म-निवेदन; लक्ष्मण : बाधाबंध विहीन, होकर भी आग्रहपूर्ण सेवा; रावण : आचरणहीन और प्रमादपूर्ण पाण्डित्य— मानव जीवन की साधना की प्रमुख धाराएँ और प्रवृत्तियाँ यहाँ एकत्र हुई हैं। इन सब के ऊपर सतत ज्योतिष्मान हीरक-मुकुट-समान भरत हैं—समुद्र की अगाध, शिशु के समान निरीह और निर्मल, अपनी अनासक्ति और से योगिराजों को लज्जित करने वाले भरत का चित्र विश्व के और किस में मिलेगा ?

परन्तु मानस की विशेषता यही नहीं है। उसकी विशेषता यह भी है उसकी गहराई में इन विविध चरित्रों एवं पात्रों की विभिन्न प्रवृत्तियाँ परस्पर गई हैं, और एक रंग दूसरे रंग को चमकाता और अमर बनाता हुआ सम्पूर्ण जीवन भरता है। इसकी विशेषता यह है कि सब चरित्रों का एक महान विश्व-प्रं के सम्पादन में, स्वभावतः, उपयोग हो गया है।

आज कल के एकाध समाज सुधारकों को मैंने कहते सुना है कि साम दृष्टि से रामायण एक प्रतिक्रियात्मक ग्रन्थ है। हिन्दी के एक लेखक और राज कार्यकर्ता कहा करते हैं कि जिन शक्तियों ने भारतीय जनता की प्रगति रोकने किया है उनमें रामायण अन्यतम है। प्रगति से उनका अभिप्राय क्या है यह मैं जानता क्योंकि आज कल अगति भी और दुर्गति भी प्रगति के रूप में हमारे रखी जा रही है। मुझे तो उनका कथन दृष्टि-दोष का फल जान पड़ता है। वस्तु को उसके पूर्ण रूप में न देख सकने के कारण ही यह भेद बुद्धि उत्पन्न होती कहीं से दो एक छंद या चौपाइयाँ उद्धृत करके, मानस की सम्पूर्ण जीवित उन्हें काट कर, आधुनिक परिस्थितियों के रंग में उन्हें देखना सत्य के सूर्य की आँख मूँद कर प्रकाश के अभाव का उलाहना देने के समान ही मिथ्या है। मैं हूँ कि मानस आधुनिक बुद्धिवाद का आख्यान नहीं है और न वह शुष्क हार्दिक नाओं का समीकरण है। वह अन्धश्रद्धा और अन्ध विश्वास का समर्थक भी नहीं उसमें कर्तव्य है पर वह आदर्श से अनुप्राणित है। उसमें श्रद्धा है पर वह नियंत्रित है। उसमें पाण्डित्य है पर उसके साथ सदाचरण के तत्वों की का निरूपण है। उसमें अनासक्ति है पर वह कर्तव्य से भागने की कायरता से नहीं है। उसमें युद्ध है पर वह युद्ध व्यक्तियों के पैशाचिक उन्माद से हुआ है। यह एक राजा से दूसरे राजा की भूमि छीन लेने का युद्ध नहीं है। युद्ध में जीवन की विजय का जो सन्देश है वह पशुबल पर नहीं, न्याय और पर आश्रित है। उसमें राज्य और भोग है पर वह राज्य और भोगक अनासक्ति

आत्मोत्सर्ग से पूर्ण है। उसमें पुरुष है जो नारी से श्रृंगार और आकर्षण की मर्यादा में बँधता है पर उत्तरोत्तर कर्तव्य और धर्म से संस्कृत एवं संयमित होता जाता है। उसमें नारी है जो पुरुष की वासना की अनुगामिनी नहीं; जो पुरुष का बंधन नहीं, उसकी मुक्ति है; जो अपने कष्ट-सहन, अपने चिरसखीत्व, अपने निरन्तर त्याग और कर्तव्य गौरव से उसको मानवता की चरम सीमा तक उठाती है। निश्चय ही इसमें पुरुष नारी का उत्पीड़क नहीं है, और इसी लिए नारी भी पुरुष की प्रतिद्वन्द्विनी नहीं है—जैसा आज कुछ लोग उसे बनाना चाहते हैं। उसमें नारी नारी है; पुरुष पुरुष है। नारी पुरुष को पुरुष रखने में और पुरुष नारी को नारी रखने में सहायक है। और फिर दोनों मिलकर एक श्रेष्ठ समाज-जीवन की सृष्टि में तत्पर हैं।

मेरी समझ से कला का चरम उद्देश्य चिरन्तन सौन्दर्य की ओर मनुष्य को जाग्रत कर देना है। काव्य का उद्देश्य भी कुछ ऐसा ही है। वह पहले आत्मरूप के प्रति और फिर जगत् के प्रति आनन्द से पूर्ण अन्तरानुभूति को स्वच्छ और स्पष्ट करता है। इसी प्रकार तत्वज्ञान का लक्ष्य भी आत्मबोध और उसके निरूपण द्वारा परमानन्द की अनुभूति है। इनमें कोई तात्त्विक भेद नहीं है। सब विभेद बुद्धि भेद से, आंशिक दृष्टि कोण से देखने के कारण, अपना विशेष सम्प्रदाय और स्कूल बना लेने से उत्पन्न होते हैं। काव्य की भूमि वादों की भूमि नहीं है, इसीलिए वह विवादों की भूमि भी नहीं है। वह आन्तरिक विकास और हार्दिक रसानुभव की भूमि है। इसी लिए उसकी दृष्टि से विश्वात्मा में सौन्दर्य का जो तत्त्व है वह सत्य और शिव से भिन्न नहीं है। सत्य, शिव, सुन्दर एक ही प्रकाश की किरणें हैं। आत्मस्वरूप अथवा विश्वरूप की अत्यन्तानुभूति में इस प्रकार की भिन्नता का कोई बोध नहीं रह सकता।

इस चरम अनुभूति की साधना ही मानसकार का लक्ष्य है। जगत् की विभिन्नताओं का एकीकरण यहाँ हम देखते हैं। यहाँ स्वरों में पूर्ण सामञ्जस्य है। उसका कुछ भी त्याज्य नहीं है। इसमें असुन्दर क्या है? अशिव क्या है? असत्य क्या है? जो कुछ है सब एक चिरन्तन चैतन्य को जाग्रत, पुष्ट और ऊर्जस्वित कर रहा है।

रामायण में भक्त, गृहस्थ, संन्यासी, देशसेवक, साधक, ज्ञानी सब के लिये पर्याप्त सामग्री हमें मिलती है इसीलिए हिन्दू जाति की आत्मा में यह सन्निविष्ट हो गया है। उसके राम हमारे साथ खेलते हैं, उसके राम हमारी निराशा की घड़ियों में हमें धीरज देते हैं, उसके राम जीवन-युद्ध के प्रत्येक पद-संचार में हमारे सहायक और पथ प्रदर्शक हैं। उत्तरा-पथ का जीवन ही राममय हो गया है।

* *

पर रामचरित मानस तो तुलसीदास की एक रचना है—यद्यपि वही उनका

हृदय है; वही उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है । तुलसीदास केवल मानसकार ही नहीं हैं, केवल प्रबन्धकाव्य लेखक ही नहीं हैं; वह श्रेष्ठ गीति काव्यकार भी हैं । विनय प[त्रिका] और गीतावली में उन्होंने ऐसी उदात्त रचना की है कि काव्यकला की दृष्टि से काव्य-रसिक इन्हें रामायण से भी ऊँचा स्थान देते हैं । गीतावली के काव्य में स[रसता] और माधुर्य बहुत अधिक है । रस इसके छन्दों में छलका पड़ता है । सूरदास के [काव्य] की विशेषताओं के दर्शन हमें यहाँ होते हैं । इसमें तुलसीदास ने बालराम के [अनेक] मनोहर रूपों की उद्भावना की है । इसमें मधुरता और रसप्रवणता रामायण से अधिक है, और शब्दावली का तो कहना ही क्या ? यहाँ स्थान-संकोच से केवल [एक] उदाहरण देता हूँ । राम का रूप वर्णन देखिए—

> प्रातकाल रघुवीर बदन छवि, चितै चतुर चित मेरे,
> होहिं विवेक विलोचन निर्मल, सुफल सुसीतल तेरे,
> रुचिर पलक लोचन जुग तारक, स्याम अरुन सित कोये,
> जनु अलि नलिन कोस महँ बंधुक सुमन सेज सजि सोये ।
> विलुलित ललित कपोलनि पर कच मेचक कुटिल सुहाये,
> मनु विधु महँ वनरुह विलोकि, अलि विपुल सकौतुक आये ।
> अधर अरुन तर दसन पाँति वर मधुर मनोहर हासा,
> मनहुँ सोन सरसिज महँ कुलिसनि तड़ित सहित कर वासा ।
> चारु चिबुक सुकतुंड विनिंदक सुभग समुन्नत नासा,
> तुलसीदास छविधाम राममुख, सुखद समन भव त्रासा ।

राम वन को चले गये हैं । माता रह-रह कर उद्भ्रान्त हो उठती हैं । नि[त्य] अभ्यासानुसार, प्रातःकाल उनके कमरे में जाकर आवाज़ देती हैं, बेटा, उठो, [तुम्हारे] अन्य भाई तथा सखा संगी सब बाहर द्वार पर हैं । कभी कहती हैं—बेटा, भोजन को बड़ी देर हो गई । महाराज (पिता) के पास जाओ और भाइयों को [बुला] कर जो अच्छा लगे, खा लो । इत्यादि ।

> जननी निरखति बान धनुहियाँ ।
> बार-बार उर नैननि लावति, प्रभु जू की ललित पनहियाँ ।
> कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति, कहि प्रिय वचन सवारे ।
> उठहु तात ! बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे ।
> कबहुँ कहति यों 'बड़ी बार भइ, जाहु भूप पहँ भैया ।
> बंधु बोलि जेइय ज्यों भावै, गई निछावरि मैया ।

कबहुँ समुझि वन गवन राम को, रहि थकि चित्र लिखी सी ।
तुलसिदास वह समय कहे तें, लागति प्रीति सिखी सी ।

इसी प्रकार तुलसी काव्य में कवितावली का स्थान भी महत्वपूर्ण है । कहीं-कहीं तो उसमें बड़े ही सुन्दर भाव हैं । जैसे केवट राम संवाद । पर रामायण के बाद उनकी सब से महत्वपूर्ण रचना विनय पत्रिका है जिसमें एक से एक उत्तम २७९ पद हैं और सब उपयुक्त राग रागिनियों में विभाजित हैं । संगीत के प्रवाह का, इनमें, सर्वत्र दर्शन होता है । इसमें उनकी काव्य-प्रतिभा के अत्यन्त उत्कृष्ट और प्रांजल चित्र मिलते हैं । उनकी अन्तिम रचना होने से इसमें प्रौढ़ता सब से अधिक है और कहीं भी शिथिलता नहीं आने पाई है । परिमार्जित शैली तथा भाषा और भावों पर उनके पूर्णाधिकार का यह विनय ग्रन्थ एक आदर्श उदाहरण है । इसके अतिरिक्त जानकी मंगल, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, श्रीकृष्ण गीतावली इत्यादि की भी कई कविताएँ उत्कृष्ट हुई हैं, भाषा की दृष्टि से तुलसी ने व्रज और अवधी दोनों में श्रेष्ठ रचना की है । मतलब, भाव, भाषा, काव्यकला, अलंकार विधान, रस-परिपाक, चरित्र-चित्रण चाहे जिस दृष्टि से आप तुलसी की परीक्षा करें, उनकी क्षमता देखकर आश्चर्य होता है । इतने पर भी एक सच्चे सन्त पुरुष की तरह अपनी कविता के प्रति वे अत्यन्त निरभिमान हैं । पण्डितराज जगन्नाथ, जयदेव, श्रीहर्ष इत्यादि संस्कृत तथा केशव, विहारी इत्यादि हिंदी कवियों की तरह की गर्वोक्तियों की कहीं छाया भी उनमें नहीं दिखाई देती । जो कुछ वह बन सके और कर सके उन सब को प्रभु की कृपा का प्रसाद समझते हैं—'जाकी कृपा लवलेस तें मतिमन्द तुलसीदास हूँ'—इत्यादि ।

कहाँ तक कहा जाय । तुलसी के विशद काव्य विस्तार में संयत, उच्च भावोन्मुख जीवन का बड़ा ही प्राणप्रद, हृदय ग्राही रूप विकीर्ण हुआ है । एडीसन ने एक स्थान पर लिखा है कि मेरी बड़ी इच्छा थी कि दर्शनों के उच्च सिद्धान्त दार्शनिकों के पुस्तकालयों से निकाल कर, साधारण लोगों के लिए, सड़कों पर बिखेर दूँ । उनकी अभिलाषा तो कदाचित् पूरी नहीं हुई पर तुलसीदास ने धर्म और आत्मविद्या के उच्च सिद्धान्तों को मधुर, सुन्दर और सरल भाषा में राज मार्गों पर ही नहीं गाँव-गाँव, घर-घर में बिखेर दिया है ।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ, जातीय कवि का सबसे बड़ा सन्देश मृत्यु पर जीवन की विजय का सन्देश है । तुलसी काव्य भक्ति विह्वल और रसमय होते हुए भी कहीं प्राण प्रद प्रेरणाओं से रहित नहीं । तुलसी हमें सदा पराजय, अनीति और विशृंखलता के जीवन से ऊपर उठने के लिए आवाहन करते हैं । वह अनीति को ललकारते चलते

हैं। उनका काव्य केवल वाणी-विलास नहीं ; उसमें परिष्कृत जीवन का संजी[illegible] है। वह हमें कहीं कर्तव्यच्युत और शिथिल नहीं करता, और अत्यन्त निरा[illegible] परिस्थितियों में भी आत्मनिष्ठ और कर्तव्यनिष्ठ रहने की प्रेरणा प्रदान करता है।

विश्व-जीवन की इन मूर्च्छा की घड़ियों में, जब प्राण रुद्ध हैं, मन रुद्ध है, शिथिल और कातर स्वरों में केवल सभ्यता के छिद्रों की ओर इंगित करती है, मानस में शिशिर के डंक चुभ गये हैं और सभ्यता के यात्रा-पथ पर निराशा की काली अमा का अंचल फैल गया है, अन्तर की वाणी दबी और मांस का [illegible] प्रबल हो गया है; मानवता का संचित कोढ़ उघड़ कर कराह रहा है तथा भो[illegible]ड़ित प्राण अभिव्यक्ति के लिए छटपटा रहे हैं, तब आज मृत्यु के बीच उदात्त की दीक्षा की भाँति तुलसी काव्य हमें पुकार रहा है। मानो वह स्वयं राम की हो—पाप और अनीति पर धर्म और न्याय, विकृति पर संस्कृति, अशोभा पर [illegible] की विजय की वाणी। सुनिए, काव्य में लोक मंगल के शाश्वत सौन्दर्य का गा[illegible] जिससे न केवल कानों में सुखद अनुभूति हो, जिससे न केवल नयन तृप्त हों प[illegible] हमारे सुप्त प्राण, हमारी जातीय आत्मा मूर्च्छा के आवकरण को तोड़ कर उभ[illegible] आवे और एक बार पुनः भारत में भारतीय सभ्यता और संस्कृति की चिरन्त[illegible] सुनाई दे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जन्म और उसका विकास।

(लेखक—श्रीसत्यदेव शास्त्री)

१९ वीं शताब्दी का उत्तरार्ध भारतवर्ष के राजनीतिक, धार्मिक, सा[illegible] और साहित्यिक क्षेत्र में नव जागरण का काल था। राष्ट्रीय भावना देश के प्रत्ये[illegible] में पनप रही थी। राष्ट्रभावना को व्यक्त करने के लिए राष्ट्रभाषा के विकास [illegible] देश के मननशील विद्वानों का ध्यान जाना स्वाभाविक ही था। ऋषि दयानंद ने विचारों के प्रसार के लिये संस्कृत के स्थान पर राष्ट्रभाषा हिंदी को ही अपना[illegible] वे इस भाषा को आर्यभाषा कहते थे। उन्होंने इसे राष्ट्रभाषा के रूप में ग्रहण [illegible] था। हिंदी गद्य के विकास का पथ प्रशस्त हो चला था। संयुक्त प्रान्त के प्रदे[illegible] से राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास एवं प्रसार का उद्योग चल रहा था। पहिले पहल [illegible] 'हिंदू समाज' ने दो तीन वर्षों तक वार्षिक अधिवेशन का आयोजन कर हिं[illegible]

का प्रशंसनीय कार्य किया। किन्तु यह समाज कई कारणों से अपनी शैशवावस्था में ही मुर्झा गया। पनप नहीं सका। दूसरा उद्योग अलीगढ़ की भाषा संवर्द्धिनी सभा की ओर से किया गया। इसके द्वारा अनेक अच्छे २ ग्रन्थ प्रकाशित हुए। तीसरा उद्योग मेरठ की देवनागरी प्रचारिणी सभा की ओर से किया गया। श्री पं० गौरीदत्त जी इस संस्था के प्राण थे। चौथा उद्योग काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से किया गया। उस समय कुछ नवयुवक विद्यार्थियों ने हिंदी की सेवा की भावना से प्रेरित होकर जिनमें सर्व श्री पं० रामनारायण जी मिश्र और श्री बाबू श्यामसुन्दरदास जी के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं १६ जुलाई सन् १८९३ ई० को काशीधाम में 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। और भी कई स्थानों में हिंदी की उन्नति के लिये संस्थाएँ और सभाएँ स्थापित हुईं। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा इन सब में ज्येष्ठा थी। भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न सभाओं एवं संस्थाओं द्वारा हिन्दी का जो काम हो रहा था उसे एक सूत्र में बाँधने के उद्देश्य से १ मई १९१० ई० के अधिवेशन में सभा ने निश्चय किया कि शीघ्र ही हिंदी साहित्य सम्मेलन किया जाय जिसमें समस्त भारतवर्ष के हिंदी विद्वानों और हिन्दी सेवियों को आमंत्रित किया जाय और सब लोग समवेत रूप से हिंदी के प्रचार और उसकी उन्नति पर विचार करें। इस निश्चय के प्रकाशित होते ही हिंदी जगत में आनन्द छा गया। चारों ओर से इस निश्चय का स्वागत और समर्थन होने लगा। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने इस कार्य को सुन्दर ढंग से संपादित करने के उद्देश्य से एक स्वागत कारिणी समिति बनाकर समस्त कार्य भार उसी के हाथ में सौंप दिया। इस समिति के कुछ प्रमुख सदस्यों के नाम नीचे दिये जाते हैं:—सर्व श्री राव शिवप्रसाद (सभापति), बाबू गौरीशंकर प्रसाद वकील (मंत्री) बाबू बालमुकुन्द वर्मा (उपमंत्री) पं० रामचन्द्र शुक्ल। पं० रामनारायण मिश्र, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू शिवप्रसाद गुप्त, रायकृष्णचन्द्र, पं० केशवदेव शास्त्री, महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी।

समिति ने शीघ्र ही एक सूचना प्रकाशित कराई जिसमें लोगों से यह पूछा गया कि अधिवेशन कब हो, सभापति कौन हो और कौन कौन से विषय विचार करने के लिए अधिवेशन में उपस्थित किए जायँ। अधिकांश सम्मति से निश्चय हुआ कि सम्मेलन आश्विन नवरात्र में सोमवार सप्तमी १० अक्टूबर को प्रारम्भ हो और माननीय पंडित मदनमोहन मालवीय उसके सभापति हों। सम्मेलन को नवरात्र में बुलाने के प्रश्न पर बड़ा विवाद खड़ा हुआ। जो लोग नवरात्र में दुर्गा की पूजा करने वाले थे वे प्रायः इस समय सम्मेलन करने के विपक्ष में थे। अस्तु अधिकांश लोगों की सम्मतिके अनुसार १० अक्टूबर १९१० ई० अधिवेशन के लिए तै पाया। फलतः नागरी प्रचा-

रिणी सभा के प्रांगण में एक बड़े सामियाने में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्र
अधिवेशन भारत भूषण पं० मालवीय जी के सभापतित्व में हुआ जिसमें देश के वि
भागों से ५०० प्रतिनिधि आए थे। दर्शकों की उपस्थिति १००० रही होगी।
सम्मेलन में १५ प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

इस अधिवेशन में प्रयाग के श्रीमान् बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ने एक
और महत्व का प्रस्ताव उपस्थित किया जिस प्रस्ताव का अंतिम टुकड़ा इस प्र
है, "इस सम्मेलन की सम्मति है कि अदालतों में नागरी प्रचार के कार्य तथा हि
साहित्य की उन्नति के लिए एक कोश इकट्ठा किया जाय जो केवल उसी कार्य
लगाया जाय"।

इस प्रस्ताव के समर्थन में चक्रधर पुर के बाबू रामचीज सिंह ने लोगों
ध्यान चक्रधरपुर में स्थापित 'हिन्दी पैसा फंड समिति' की ओर आकृष्ट किया
हिन्दी पैसा फंड समिति को देश व्यापी बनाने की मार्मिक अपील की। अंत में स
पति महादेय ने ओजस्वीवाणी में पैसा फंड में सहायता देने के लिए लोगों को उ
हित किया। फल स्वरूप उसी समय १६१२८ पैसे इकट्ठे हो गए। और २१२४
पैसों के बचन मिले। पैसों की वर्षा हो रही थी। 'हिन्दी पैसा फंड समिति'
स्थापना सम्मेलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। सम्मेलन की नींव इसी पै
फंड पर खड़ी हुई। इस फंड में ग़रीब अमीर यथा शक्ति सभी दान दे सकते थे।

सम्मेलन का अधिवेशन दो ही दिन में समाप्त होने को था; किन्तु कार्याधि
से अधिवेशन ३ दिन तक चलता रहा। जिस प्रकार किसी शिशु के जन्म दिवस
घर में आनन्द, उल्लास और उत्साह रहता है ठीक वैसे ही आनन्द और उल्लास
भावनाएं, 'सम्मेलन के इस जन्म दिन पर प्रतिनिधियों और दर्शकों के चेहरे पर स्
रूप से लक्षित हो रही थी। ३ दिन के बाद लोग हिन्दी की सेवा के प्रति एक न
स्फूर्ति लेकर अपने अपने घरों को लौटे। अगले वर्ष के लिए पदाधिकारियों का चुन
हुआ। प्रयाग के श्री बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन प्रधान मंत्री निर्वाचित हुए। टंडन जी
स्थायी रूप से प्रयाग के रहने वाले थे, इसलिए सम्मेलन का कार्यालय प्रयाग आ
गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्मेलन का जन्म काशी की नागरी प्रचारिणी
सभा की गोद में हुआ। श्री टंडन जी ने इस बीज को लाकर प्रयाग में रोपा। अपने
त्याग, तपस्या एवं तन्मयता से इसे सींच सींच कर हरा भरा किया, पुष्ट किया, ब
किया। ३२ वर्ष पूर्व सम्मेलन का जो बीज काशी नागरी प्रचारिणी सभा रूपी क्यारी
से लेकर प्रयाग में रोपा गया वह धीरे धीरे करके बड़ा हुआ और आज एक वि
वृक्ष के रूप में प्रयाग में अवस्थित जिसकी शाखायें प्रशाखायें देश के कोने कोने में

फैल गई हैं और आज राष्ट्रभाषा हिन्दी की दुन्दुभी सारे देश में प्रान्त प्रान्त में बज रही है। यह हुई सम्मेलन की जन्म कहानी। अब आगे किस प्रकार शनैः शनैः विकास हुआ— इसका इतिहास अगले लेख में देने की चेष्टा करूँगा।

नरहरि निरूपण

क्या वे गोस्वामी जी के गुरु थे ?

(ले० भूदेव विद्यालंकार)

गोस्वामी तुलसीदास जी के गुरु का नाम अनेक विद्वानों की सम्मति में नरहरि स्वामी था। इसकी पुष्टि में मानस का निम्न लिखित सोरठा अकाट्य प्रमाण के रूप में उद्धृत किया जाता है :—

बन्दौं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर॥

"आत्म नाम गुरोर्नाम नामानि कृपणस्य च", इस प्रचलित समाज नीति के अनुसार गुरु का नाम नहीं लेना चाहिये। इसी लिये गोस्वामी जी ने अपने गुरु का नाम कहीं स्पष्ट रूप से नहीं लिया है। पर इस सोरठे में प्रकारान्तर से गुरु का नाम निर्देश कर दिया है। ऐसा अनेक विद्वानों का मत है। यह ठीक नहीं है।

राम चरित मानस का प्रारम्भ किस प्रकार से हुआ है इसे यदि हम देख लें तो सब बात स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है। मानस का प्रथम सोरठा है :—

जेहि सुमिरत सिधि होई, गननायक करिवर बदन।
करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

यह सोरठा मुहूर्त वृन्दावन के निम्न लिखित श्लोक का अनुवाद मात्र है :—

जायन्ते सिद्धयो यस्य स्मरणात्सगजाननः।
कुर्यादनुग्रहं बुद्धिनाथः शुभ गुणाकरः॥

दूसरा सोरठा है :—

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़ै गिरिवर गहन,
जासु कृपा सुदयाल द्रवहु सकल कलिमल दहन।

यह महा भारत के श्लोक :—

मूकं करोति बचालं पंगुं लंघयतेगिरिम्।
यत्कृपा नमहं वन्दे परमानन्द माधवम्॥

तीसरा सोरठा है :—

नील सरोरुह श्याम, तरुण अरुण वारिज नयन,
करहु सो मम उरधाम, सदा छीर सागर सयन ॥

आश्चर्य रामायण में एक श्लोक है :—

नीलाम्बुज सम श्यामो रामो राजीव लोचन :
करोतु हृदये वासः क्षीर सागर मन्दिर :

चौथा सोरठा है :—

कुन्द इन्दु समदेह, उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन्ह पर नेह, करौ कृपा मर्दन मयन ॥

यह अनुवाद है उमा संहिता के :—

कुन्देन्दु कर्पूर तनुश्च मेशः करुणार्णवः,
दीन स्नेह करः कुर्य्यात्कृपां मदन मर्दनः।

और पाँचवा सोरठा है :—

गुरु वन्दना का जो ऊपर उद्धृत है। यह सोरठा भी अन्य सोरठों के [illegible] एक श्लोक का संस्कृत से हिन्दी रूपान्तर मात्र है। श्लोक जाबालि संहिता [illegible] और इस प्रकार है :—

बन्दे गुरु पदाब्जं यो नर रूपः स्वयं हरिः।
यद्वाक्य सूर्य्योदयतस्तमो नश्यति साम्प्रतम् ॥

यही श्लोक सोरठे में जैसा का तैसा उतरा हुआ है। "नर रूपः स्वयं ह[illegible] ही स्वयं "नरहरि" होकर सोरठे में बैठे हैं।

इस प्रकार मानस का प्रारम्भ ही सुन्दर संस्कृत श्लोकों के अनुवाद से हु[illegible] है। और इस सोरठे के पद वाक्य तथा भाव सब जाबालि संहिता के श्लोक के वाक्य तथा भाव के रूपान्तर मात्र हैं। जाबालि संहिताकार ने "नरहरि" शब्द [illegible] प्रयोग गोस्वामी जी के गुरु की दृष्टि से यहाँ किया होगा इसकी कोई सम्भावना न[illegible] है। और सोरठे को गोस्वामी जी की स्वतंत्र कृति भी कहना ठीक नहीं होगा। [illegible] के चार सोरठे और आगे के दोहे या चौपाइयाँ भी यही कहती हैं कि वे किसी न कि[illegible] श्लोक के अनुवाद हैं। ऐसी स्थिति में इस सोरठे में गुरु के नाम की कल्पना भूल [illegible] हाँ अन्य प्रमाणों से यदि गोस्वामी जी के गुरु का नाम नरहरि सिद्धि होता हो [illegible] कहना होगा कि इस सोरठे में वह घुणाक्षर न्याय से आ गया है। आशा है [illegible] विद्वज्जन इस पर विचार करेंगे।[1]

[1]अप्रकाशित मानस मौलिकता से उद्धृत।

ब्रजभाषा की व्यापकता[1]

ब्रज-मंडल की सीमाएं प्रायः अनिश्चित सी हैं। एक दृष्टि से दिल्ली के दक्षिण से इटावे तक और अलीगढ़ से लेकर धौलपुर और ग्वालियर तक ब्रज-मण्डल का विस्तार है। कहा जाता है कि दस कोस पर बोली बदल जाती है और इसमें संदेह नहीं कि उच्चारण का भेद भौगोलिक कारणों से थोड़ी-थोड़ी दूर पर बढ़ता जाता है, किन्तु भाषा की गठन एक क्षेत्र में एक सी ही रहती है। इस दृष्टि से जिस क्षेत्र में ब्रज-भाषा किसी न किसी रूप में बोली जाती है वह क्षेत्र ब्रज-मंडल के अन्तर्गत आ जाता है। मैं ब्रज मण्डल को इसी व्यापक अर्थ में लेता हूँ, और मेरे लिए वह सब भू-भाग जिसमें ब्रज-भाषा का आधिपत्य है ब्रज-मण्डल है।

किन्तु इस ब्रज-क्षेत्र का केन्द्र मथुरा ही है। ऐतिहासिक काल में कनिष्क के समय से मथुरा का राजनैतिक महत्व रहा है। मुसलमान काल में मथुरा दोनों शाही राजधानियों—दिल्ली और आगरे—का मध्यबिंदु थी। धार्मिक कारणों से मथुरा उत्तर भारत में वैष्णव धर्म की राजधानी थी। सुदूर बंगाल और गुजरात के वैष्णव ब्रज की पवित्र रज में लोटने के लिए खिंचे चले आते थे। जहाँ-जहाँ वैष्णव धर्म फैला वहाँ-वहाँ ब्रज का दर्शन और उसकी यात्रा मनुष्यों के जीवन की चरम अभिलाषा हो गई। और आज भी हिन्दुओं के हृदयों पर चाहें वे काश्मीर या पंजाब में हों और चाहे दक्षिण या बंगाल में पैदा हुए हों—उन भगवान श्रीकृष्ण का साम्राज्य है जो गोकुल में अवतरित हुए थे और जिनकी लीला पवित्र ब्रजभूमि थी। साधारण धर्मप्राण हिन्दू जनता उन्हें ब्रजचन्द्र के रूप में, और दार्शनिक हिन्दू जनता उन्हें पार्थ सारथी के रूप में पूजती है। किन्तु कृष्ण रूप में ही अधिकांश हिन्दू जनता भगवान का आराधन करती है और जब तक भगवान श्रीकृष्ण की उपासना हिन्दुओं में प्रचलित है तब तक ब्रज-मण्डल का महत्व अक्षुण्ण बना रहेगा।

इधर कुछ दिनों से प्रान्त के साहित्यिक जीवन का केन्द्र पश्चिम से हट कर पूर्व में चला गया है। हमारे तीन मुख्य विश्वविद्यालय (काशी, प्रयाग और लखनऊ) पूर्वी भाग में हैं और हमारी मुख्य साहित्यिक संस्थाएं—हिन्दी साहित्य सम्मेलन तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा भी पूर्वी छोर पर स्थित हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि पश्चिमी भाग में सांस्कृतिक और साहित्यिक जीवन शिथिल पड़ गया है। किन्तु

---

[1] ब्रज साहित्य मण्डल के सभापतित्व पद से पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी के भाषण का सारांश।

इसका सब से अधिक प्रभाव ब्रज-भाषा साहित्य के ऊपर पड़ा है क्योंकि प्रान्त के साहित्यिक जो पूर्वी भाग के हैं ब्रज-भाषा से अपरिचित होने और खड़ी बोली के उदय के कारण ब्रज-भाषा साहित्य के महत्व और गौरव को धीरे-धीरे भूलते जाते हैं उसके प्रति उनकी उपेक्षा बढ़ती जाती है । किन्तु यह अवस्था पहिले नहीं थी।

वैष्णव धर्म के उत्थान और प्रचार के साथ-साथ ब्रज प्रदेश के [illegible] विस्तार बढ़ता गया । सुदूरवर्ती बंगाल और गुजरात के वैष्णवों के लिए ब्रज-भाषा केवल सांस्कृतिक भाषा ही न थी किन्तु पवित्र भाषा भी थी क्योंकि उसी में वैष्णव महात्माओं ने, श्रीहितहरिवंश जी, व्यासजी, नन्ददासजी, सूरदासजी ने—भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया था । और वह वर्णन केवल और सरस भाषा ही में न था किन्तु ऐसे संगीत में था जो जनता को प्रिय था। पवित्र और सरस भजन रूपी पंखों पर उड़ कर ब्रज-भाषा सारे उत्तर भारत में गई । वह वैष्णव कवियों के लिए आदर्श हो गई । कवि गोविन्ददास सदृश वैष्णव कवि से लेकर गुजरात के परम वैष्णव नरसी भक्त तक की कविताओं में पदावली का प्रभाव छलका पड़ता है । बंगाली, गुजराती मराठी आदि प्रान्तीय भाषाओं पर ब्रज-भाषा के प्रभाव का ठीक-ठीक मूल्यांकन अभी तक नहीं हो पाया है, और भाषा के ऐतिहासिक महत्व को समझने के लिए उसे जानना आवश्यक है। हमारे प्रदेश में ब्रज-भाषा ने जनता को, बौद्धकाल के बाद, सब से पहिले साहित्य दिया । ब्रज-संगीत लहरी के प्रसार के बाद ब्रज-भाषा के जो कवि सरलता से सर्वप्रिय हो गए क्योंकि जनता ब्रज-भाषा से सुपरिचित हो चुकी वास्तविक बात तो यह है कि छापे की कल के होते हुए भी खड़ी बोली के [illegible] का अभी तक जनता में वह प्रसार नहीं हो पाया है जो अठारहवीं सदी में ब्रज-भाषा का हो गया था । यदि मैं यह कहूँ कि उन दिनों ब्रज-भाषा साहित्य प्रान्त के उन जिलों के गाँवों में घर कर चुका था जिनकी मातृ-भाषा ब्रजवाणी न तो कदाचित् आप में से कुछ लोग इसे अत्युक्ति समझेंगे । किन्तु मैं अत्युक्ति नहीं कर [illegible] अठारवीं सदी के उत्तरार्द्ध में एक अंग्रेज सैनिक अफ़सर उत्तरी भारत में ईस्ट [illegible] कम्पनी की सेना में था । उसका नाम था मेजर टामस ड्यूएर ब्रूटन । जब वह [illegible] ग्रहण करके इंग्लैंड वापिस गया तब उसने एक पुस्तक प्रकाशित की जिसका [illegible] "सेलेक्शन्स फ्राम दी पापुलर-पोइट्री आफ दी हिन्दूज़" अर्थात् हिन्दुओं की [illegible] कविताओं का संग्रह । यह पुस्तक सन् १८१४ में लन्दन के जान मार्टिन नामक [illegible] ने प्रकाशित की थी । इस पुस्तक के नाम से ही यह प्रकट है कि उसने उन्हीं [illegible] को संग्रह किया था जो उस समय जनता में प्रचलित थी । उसे अपने सिपा[illegible]

ति-रिवाज और सांस्कृतिक स्तर जानने की जिज्ञासा थी । ये सिपाही अधिकतर अवध जिलों के रहने वाले थे । वह उनकी कविताओं में विशेष रूप से रुचिशील था । वह अपनी भूमिका में कहता है :

"जैसी जानकारी मैं प्राप्त करना चाहता था उसकी योग्यता हिन्दुस्तान में जैसी मुझे अपने सिपाहियों में मिली वैसी किसी भी दूसरे वर्ग के लोगों में नहीं । उनमें मी जाति के हिन्दू हैं, जो कि अधिक संख्या में दोनों ऊँचे कुल के ब्राह्मण और क्षत्रिय । वे साधारणत: भारत के हर प्रान्त के सम्मानित कृषकों की सन्तान हैं और घर से कलने के पहले ही उन्हें सामान्यत: अच्छी शिक्षा मिल चुकी है । विशेषत: ब्राह्मण मिक कर्मकाण्ड और तत्सम्बन्धी पौराणिक आख्यानों से परिमित रहते हैं और कभी पण्डित होने पर सेना में भर्ती होते हैं······इसी कोटि के एक व्यक्ति से मुझे इस ह की अधिकांश कवितायें मिलीं । मैंने देखा कि किसी भी विषय पर बात करते य यह किसी न किसी जनप्रिय कवि के उद्धरण अनायास दे दिया करता था और दिन जब उसने ऐसा किया जिसमें उसका उत्साह और आनन्द दोनों मिश्रित था, उसे उन कविताओं के लिख देने और समझा देने के लिए कहा । वे दोहरा नं० १ २ थे । मुझे उनमें कोमलता और भावों की वह सरलता मिली, उनके विषय इतने झे और निश्चित थे कि मुझे और भी अधिक जानकारी इस बोली की प्राप्त करने इच्छा हुई जिसमें वे कवितायें लिखी गई थीं और यह कि वह वैसे ही पद्यों का और ह मेरे लिए करदे । मेरी इस नई अध्ययन की रुचि का पता और लोगों को लग उसी कोटि के अन्य लोगों ने भी इस विषय में मेरी अधिकाधिक सहायता की ।

और ये दोहरे कौन से थे और इस संग्रह में वे कौन सी कविताएँ संग्रहीत थीं हें अठारहवीं शताब्दी के साधारण सिपाही साधारण रीति से व्यवहार में लाते इस संग्रह के दोहे बिहारीलाल के हैं । इसमें आचार्य केशव के छन्द हैं । इसमें के कवित्त और सवैये हैं और कितने ही कवियों के छन्द हैं जिनमें कवि का न होने के कारण उनके रचयिताओं का मुझे पता नहीं लग सका । उन कविताओं तर क्या था जो अवध आदि के गाँवों के सिपाहियों की जीभ पर थे और जिनसे आनन्द प्राप्त होता था ? नमूने के लिए इस संग्रह के कुछ छन्द :—

इस संग्रह में आचार्य केशव के छन्दों में से एक छन्द यह है :—

'लीनो हमें मोल ?' 'अनबोली आई जानो मोहि ?
मोहि घनश्याम घनमाला ये बुलाई है ।'
'भयौ है है दुख जहाँ नेक न दिखाई देत,
देखो कैसें बाट !' 'केशौ दामिनी दिखाई है ।'

'ऊँचे नीचे बीच कींच कंटकन बीरें पाँउ ?'
'सहज गयन्दगति अति सुखदाई है।'
'भारी भयकारी निसि, निपट अकेली तुम ?'
'नाहीं प्राननाथ ! संग प्रेम जो सहाई है।'

देव के जिन छन्दों ने तत्कालीन जनता के हृदय में स्थान करके इस में स्थान पाया था उनमें से एक यह है :—

"बाजत मृदङ्ग, तार, डफ थहरात हौं तौ
पीतम बिछोह की ज्वालन जरी मरौं
गातीं कई फाग अनुराग भरे बैन, पापी
काम के सरों सौं अपार पीर सौं भरौं
कहत कवि देव कोकिला को सोर परो
छतियाँ चट हूक होते धीरज कैसे धरौं !
ह्वै है जब कंत तब लैहौंरी बसन्त, आज
कन्त बिन मालिनि ! बसन्त ले कहा करौं ?"

बिहारी के जिन दोहों ने मेजरब्रूटन के हृदय में जन-प्रिय काव्य का प... प्राप्त करने की प्रेरणा उत्पन्न की थी उनमें से दो ये हैं—

अति अगाधि अति ऊथरो नदी कूप सरवाय
सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय।
रहि न सकी सब जगत में सिसिर सीत के त्रास
गरमि आज गढ़ में गई तिय कुच अञ्चल बास॥

आप कदाचित् इन्हें ऊँची साहित्यिक कविताएँ कहेंगे जिनको हाईस्कूल... विश्वविद्यालयों के संग्रहों में देकर बहुत से लोग उच्चमध्यवर्ग के विद्यार्थियों को शि... बनाने का दावा करेंगे। किन्तु प्रायः डेढ़-दो सौ वर्ष पहिले के उन साधारण सिपा... में साधारण रूप से प्रचलित थे जिनको सारा देश अपढ़ समझता है और ... शिक्षित बनाने के लिए सेना विभाग आज घोर रूप से प्रयत्नशील है। शिक्षा वि... प्रकाशकों, छापेखानों और समाचार पत्रों के न होते हुए भी, रेल और तार के इस ... में जन्म लेने के पहिले, ये साहित्यिक और सुरुचिपूर्ण कविताएँ देश के गाँवों में ... दिनों कैसे फैल गई थीं ! मैं यहाँ उन सब कारणों का विश्लेषण न करूँगा ... उससे विषयान्तर हो जायगा, किन्तु एक कारण बतला देना आवश्यक है। ... कारण यह है कि ब्रज-भाषा की प्रकृति हमारे देश की जनता की प्रकृति से ... अधिक मेल खाती है, वह उसके साथ इतना अधिक एक रस हो जाती है कि ...

अपनी नैसर्गिक शक्ति के कारण ही जनता में फैल गई थी। हफीजुल्लाखाँ के 'हजारा' नामक संग्रह से इस कथन की पुष्टि होती है। इस देश के मुसलमानों की प्रकृति से भी ब्रज-भाषा की प्रकृति मिलती थी। हफीजुल्लाखाँ की तरह कितने ही मुसलमान काव्य विद्ग्धजन उसके साहित्य में रस लेते थे और रसखान, आलम, शेष, मुबारक आदि सरीखे कितने ही मुसलमान उसमें काव्य रचना भी करते थे। जनता में साहित्य का जितना प्रचार ब्रज-भाषा ने अपने बल से किया उसका एक अंग भी खड़ी बोली सरकार शिक्षा विभाग, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी के कवियों, लेखकों समाचार पत्रों हिन्दी साहित्य सम्मेलन की सहायता पाकर भी नहीं कर सकी।

व्रजभाषा साहित्य का ह्रास

किन्तु 'सबै दिन जात न एक समान।' प्रायः एक शताब्दी के ईसाई मिशनरियों के प्रचार, पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क और संघर्ष तथा शहरों में उर्दू के प्रभाव के कारण भाषा के विषय में हमारा दृष्टिकोण बदल गया। हमने कई कारणों से उर्दू से मिलती जुलती खड़ी बोली को गद्य के लिए अपना लिया। किन्तु यदि हम अपने पद्य को प्राकृतिक ढंग से विकसित होने देते तो सम्भव है कि हमारी ब्रज-भाषा के भवन पर जो शिखर बनता वह उसके अनुकूल होने के कारण अधिक लोकप्रिय होता। किन्तु हमने दिल्ली की तरह एक नगर को छोड़ कर दूसरा नगर बसाया और पुराने नगर के विशाल प्रासादों को छोड़ दिया। यदि हमने उन्हें प्रकृति की दया पर छोड़ दिया होता तब भी कोई विशेष हानि न होती—पानी, ओलों, लू और धूप से अशोक की लाटों, दिल्ली के लोहस्तम्भ, साँची के स्तूपों और खजुराहो के विशाल मन्दिरों को विशेष हानि नहीं हुई। हमने प्राचीन नगर का केवल परित्याग करके ही सन्तोष नहीं किया—हम उसे नष्ट करने के लिए उस पर गोलन्दाजी भी करने लगे। हमने खड़ी बोली की उन्नति और समृद्धि के लिए ब्रजभाषा का बलिदान आवश्यक समझा।

ब्रजभाषा साहित्य पर आक्रमण होने लगे। ईसाई प्रभाव से प्रभावित प्योरिटन हिन्दू—जो वैष्णव भावना और मनुष्य की प्रकृति से समान रूप से अपरिचित थे.—ब्रजभाषा साहित्य को शृंगारिक, अश्लील आदि कह कर धीरे-धीरे सफलता पूर्वक उसे घृणा का पात्र बनाने लगे। उन्हें ब्रज-साहित्य में, उन महात्मा की वाणियों में भी जो 'पवित्राणाम् पवित्रं यो' थे, विषय-वासना की गन्ध आने लगी। जब भक्तों और महात्माओं तक की वाणियों में इन लोगों को विषय-वासना का प्रसार दिखलाई पड़ने लगा तब भला साधारण श्रेणी के संसारी कवियों जैसे बिहारी, देव, केशव आदि की कविताओं में यदि उन्हें विशुद्ध घासलेट के दर्शन हुए तो क्या आश्चर्य है!

जब एक शैव भक्तिपूर्वक पार्थिव पूजन करता है तो उसमें सात्विक भावनाओं का ही उदय होता है। वह आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखने के कारण सिवाय देवता के प्रतिमा में और कुछ नहीं देखता। किन्तु मिस मेयो को उस प्रतिमा में जो कुछ दिखलाई पड़ी वह हृदय में भक्ति के अभाव और दृष्टिकोण के अति स्थूल होने के कारण ठीक ही थी। दोष मिस मेयो का नहीं, प्रत्युतः उनकी भावना और दृष्टिकोण का था। अपनी विकृत भावना और विकृत दृष्टिकोण के कारण उनके लिए भक्त की उपासना का मूल्याङ्कन करना असम्भव था। उसी प्रकार जो लोग ब्रजसाहित्य को स्थूल दृष्टि से, बिना वैष्णव भावना समझे हुए पढ़ते हैं, वे उसे मिस मेयो से अधिक नहीं समझ सकते। हमारे आचार्य महात्मागण उनके इस गुण से अपरिचित न थे। श्री भगवत रसिक ने अपने एक पद में कहा है—

> वह रस रीति प्रिया प्रीतम की
> दिव्य स्वांति जल जैसे
> विषयी, ज्ञानी भक्त, उपासक
> प्रापत सबकों तैसे।
> कदली, कमल, पपीहा, सीपी
> पात्र-भेद गुण तैसे
> भगवत बीज विषमता नांहीं
> भूमि भाग्य फल जैसे ॥

अँग्रेज़ी शिक्षा, ईसाई धर्म की भावनाओं के प्रचार, पश्चिमी सभ्यता के संपर्क, अँग्रेजी शिक्षा की उन्नति, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज आदि सुधारक संप्रदायों के उद्योगों के कारण धीरे-धीरे वैष्णव-धर्म का ह्रास होने लगा। अद्वैत वेदान्त का प्रचार तो स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ तथा श्रीमती बीसेण्ट के कारण कुछ हुआ भी, किन्तु द्वैत और शुद्धाद्वैत मतों का तो प्रायः लोप ही हो गया। उसके परिणाम स्वरूप पढ़े-लिखे लोगों को वैष्णव धर्म के सिद्धान्तों का परिचय भी न रहा। जो ब्रजसाहित्य वैष्णव दर्शन और भक्ति के ऊपर निर्भर था उसको उचित दृष्टिकोण से देखना और समझना इस नए युग के लोगों के लिए असंभव हो गया। और अपनी इस 'अनजानकारी' के कारण उनके लिए यह स्वाभाविक था कि वे समस्त ब्रज साहित्य को शृंगारिक और अश्लील कहकर वहिष्कृत कर दें। विदेशी साहित्य की मान्यताओं में आकंठ निमग्न रहनेवालों और भारत के प्यूरिटन संस्करणों में वैष्णव भक्ति-मूलक साहित्य को समझने और उससे रस लेने की क्षमता ही नहीं रही। जो लोग शृंगार रस का नाम सुनकर मुँह बिचकाते थे वे भला उस सिद्धान्त को कैसे समझ

सकते थे जिस पर ब्रज साहित्य के भवन का निर्माण हुआ था और जिसे देव ने संक्षेप में यों कह दिया था कि "बानी को सार बखान्यों सिंगार, सिंगार को सार किशोर-किशोरी।" शरीर में से जब आत्मा निकल जाती है तब सुन्दर शरीर भी अस्पृश्य और अशिव हो जाता है। उसी प्रकार जब पाठकों ने ब्रज साहित्य की आत्मा निकाल के उसके शव को देखना आरम्भ किया तो आश्चर्य नहीं कि उन्हें वह भयंकर लगा।

मैं यह नहीं कहता कि ब्रज-साहित्य में सभी कुछ ठीक है। उन दिनों भी ऐसे लोग थे और रहे होंगे जिनका हृदय वैष्णव भावना से शून्य था और जिन्होंने निर्जीव, नीरस और उपेक्षणीय रचनाएँ की हैं। उन दिनों भी कविगण, आज के मनोवैज्ञानिकों की भाषा में, कविता के द्वारा अपनी दबी हुई मनोकामनाओं का मांगली करण करते थे। नरेशों के विलासिता पूर्ण दरबारों और जीवन के कारण देश के सांस्कृतिक जीवन पर एक कुहरा-सा छा गया था जिसका कुप्रभाव संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि सभी ललितकलाओं पर पड़ा था। कविता उस प्रभाव से कैसे बच सकती थी? कवि युग का प्रतीक है। जिस प्रकार टंकी में भरे हुए पानी को सतह से ऊँचा फव्बारा नहीं उठा सकता, उसी प्रकार किसी युग का कवि अपने समय के सांस्कृतिक स्तर और विचारों से ऊपर नहीं जा सकता। किन्तु इसके लिये भाषा को दोष देना अन्याय है। ब्रज भाषा में यह क्षमता है कि उसी रीतिकाल के बाद जब देश में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हुई तब भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र ने उसी भाषा में वे कविताएँ लिखीं जो राष्ट्रीयता के भावों से ओत-प्रोत थीं और आज भी समयानुकूल मालूम पड़ती हैं।

ब्रजभाषा के संबंध में आधुनिक भ्रमात्मक सम्मतियों के लिए अधिकतर हमारे समालोचक उत्तरदायी हैं। वे उसकी ओर से प्रायः उदासीन हैं। यह समालोचकों का काम है कि वे साहित्य की समीक्षा करें और उसका उचित मूल्यांकन कर के साधारण पाठकों के सामने रक्खें। साधारण पाठक विशेषज्ञों की सम्मति से प्रभावित होता है और जब उसके सामने विशेषज्ञों की सम्मति न हो तो इसमें आश्चर्य नहीं कि वह विरोधियों के प्रत्यक्ष और परोक्ष प्रचार से भ्रम में पड़ जाय। मेरे स्वर्गीय मित्र पं० पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी सतसई की आलोचना का श्री गणेश किया था। वह समालोचना जिस उद्देश्य से की गई थी उसके लिये ठीक थी। किन्तु आज हमें ब्रज-भाषा साहित्य की समालोचना आधुनिक ढंग से करनी होगी जिससे आज कल के साहित्य-प्रेमी पाठक उस साहित्य के दृष्टि कोण और गुणों को समझ सकें। ब्रज-साहित्य परिषद् और ब्रज भाषा ही नहीं प्रत्युत समस्त हिंदी प्रेमियों का कर्तव्य है कि वे इस कार्य की ओर ध्यान दें। इसके लिये तटस्थ, विदग्ध और वैष्णव सिद्धान्तों को समझने वाले विद्वानों की आवश्यकता है। यदि मेरे माननीय अध्यापक

डाक्टर रामप्रसादजी त्रिपाठी, जिन्होंने इस विषय का बहुत गहरा अध्ययन किया है, तथा उन्हीं के समकक्ष अन्य विद्वान इस अत्यन्त आवश्यक कार्य की ओर ध्यान दें तो हिंदी साहित्य का बड़ा उपकार हो। ब्रज-साहित्य मण्डल का यह कर्तव्य है कि वह इस संबंध में गंभीरता पूर्वक क्रियाशील हो।

ब्रजभाषा साहित्य हमारी बहुमूल्य निधि है और यह देखकर बड़ा खेद होता है कि हमारे विद्यार्थियों की शिक्षा में उस पर दिनों-दिन कम ध्यान दिया जा रहा है। स्कूलों, कालिजों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में उस पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता और हमारे कई ब्रजभाषा प्रेमी मित्रों ने तो हिंदी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम की भी इस संबंध में थोड़ी-बहुत शिकायत की है। आधुनिक हिंदी का ज्ञान अवश्य ही आवश्यक और वांछनीय है और मैं स्वयं उसका समर्थक हूँ किन्तु इसके यह अर्थ नहीं हैं कि हम हिन्दी के सब से अधिक पुष्ट अंग की उपेक्षा करें। यदि आप चाहते हैं कि सूर, मीरा, नन्ददास, देव विहारी, रहीम, रसखान, भूषण, पद्माकर, घनानन्द भारतेन्दु, प्रतापनारायण आदि के काव्य 'मृतकाव्यों' की श्रेणी में न आजायँ तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने विद्यार्थियों को उनका परिचय बराबर कराते रहें। इस ओर सजग और सचेष्ट रहने की बड़ी आवश्यकता है।

ब्रजभाषा का प्रचार अवश्य ही अब उतना नहीं है जितना कुछ दिनों पहले था और आधुनिक हिन्दी की शिक्षा में ब्रजभाषा की उपेक्षा होने के कारण हिन्दी के बहुत से आधुनिक विद्वान् भी उससे अपरिचित रहने में कोई हानि नहीं समझते। कुछ लोग तो इच्छा करने पर भी उसे समझने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। इसके लिए एक ब्रजभाषा कोष की बड़ी आवश्यकता है। हर्ष का विषय है कि मेरे पिता पं० श्री द्वारका प्रसाद जी चतुर्वेदी ने वृद्ध होने पर भी उसके महत्त्व और आवश्यकता को समझ ब्रजभाषा कोष के निर्माण का कार्य अपने हाथ में ले लिया है। प्रायः तीन वर्ष से वे निरंतर उसी कार्य में लगे हैं। इस कोष में एक लाख से अधिक शब्द रहेंगे और आकार में यह हिन्दी शब्द सागर के लगभग ही होगा। संतोष का विषय है कि यह महत्वपूर्ण और महत् कार्य आधे से अधिक हो गया है। उसके तैयार होने पर ब्रजभाषा के अध्ययन की एक बड़ी कठिनाई दूर हो जायगी। आशा है कि उसका संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित किया जायगा जिससे साधारण पाठकों और विद्यार्थियों को भी वह सुलभ हो जाय और वे उससे लाभ उठा सकें।

ब्रजभाषा के एक प्रामाणिक व्याकरण की भी बड़ी आवश्यकता है। ... किशोरीदास बाजपेयी ने एक व्याकरण तैयार भी किया है और वह लाभदायक

किन्तु उसमें कुछ अप्रासंगिक बातें भी आ गई हैं और वह, आकार में छोटा होने के कारण, आवश्यकता की ठीक तरह से पूर्ति नहीं करता। वाजपेयीजी ने एक बड़ी आवश्यकता की पूर्ति का प्रयत्न किया है, और उनका परिश्रम स्तुत्य है। किन्तु एक वृहद् और प्रामाणिक व्रजभाषा व्याकरण की अभी आवश्यकता है और व्रज साहित्य-मण्डल यदि इस ओर भी कुछ ध्यान दे तो बड़ा लाभ होगा।

व्रज-साहित्य मण्डल का उद्देश्य केवल व्रजभाषा साहित्य की गवेषणा, शोध एवं रक्षा करना ही नहीं, किन्तु व्रज से सम्बन्ध रखने वाले समस्त विषयों जैसे साहित्य, संस्कृत, कला, धर्म, इतिहास, भूगोल, पुरातत्व, रीति-रिवाज, जीव-जन्तु आदि पर अनुसंधान करना भी है। मेरे विद्वान् मित्र डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल और श्री मनमोहन नागर का सहयोग प्राप्त करने के बाद मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मण्डल को व्रज के इतिहास और पुरातत्व सम्बन्धी कार्य में विशेष सफलता प्राप्त होगी। किन्तु इस दिशा में पहला काम यह होना चाहिए कि जनता में—और विशेष र शिक्षित और अर्द्धशिक्षित जनता तथा विद्यार्थियों में इस विषय की ओर रुचि त्पन्न की जाय। शिक्षा शास्त्री स्कूलों के लिये इतिहास के अध्ययन में स्थानीय तिहास (local history) के अध्ययन को विशेष महत्व देते हैं। यदि व्रजमण्डल एक समीचीन संक्षिप्त इतिहास तैयार करा लिया जाय और शिक्षा विभाग की अनुमति उसे वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूलों तथा अंगरेजी स्कूलों की मिडिल कक्षाओं में पढ़ाया य तो हमारे भावी व्रज-नागरिकों को अपने प्रदेश के इतिहास, संस्कृत और पुरातत्व परिचय ही नहीं होगा किन्तु उनमें इन विषयों की ओर अभिरुचि भी उत्पन्न होगी। तिहास इस प्रकार लिखा जाय कि उससे साधारण जनता को भी लाभ हो। यदि विषय में व्रज मण्डल के अध्यापकों की रुचि उत्पन्न कराई जा सके तो सभा को की कहानियों, पहेलियों, कहावतों, रीति-रिवाजों आदि का संग्रह तैयार करने में सहायता मिले। साथ ही साथ जीव-जन्तु आदि के अध्ययन में भी उनसे बहु-य सहयोग मिल सकता है। इसके लिए अध्यापकों को एक-दो महीने की शिक्षा की आवश्यकता होगी। किन्तु यदि आप गांवों में फैले हुए हजारों अध्यापकों का योग प्राप्त कर सकें तो जो काम बहुत अधिक व्यय करने पर होगा और जिसमें त समय लगेगा वह थोड़े दिनों में और अपेक्षाकृत थोड़े ही धन से हो जायगा। में स्थानीय इतिहास और संस्कृति के अज्ञान के कारण सैकड़ों प्राचीन चिह्न नष्ट जा रहे हैं। कितनी ही मूल्यवान पुस्तकें और मूर्तियाँ नष्ट कर दी जाती हैं और वों में प्राप्त होने वाले कितने ही अलभ्य सिक्के गला दिए जाते हैं। आज गाँवों अध्यापक ही ऐसा शिक्षित व्यक्ति हैं जो संस्कृति और ज्ञान का केन्द्र हो सकता है

अतएव मेरा सुझाव है कि मण्डल के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अध्यापकों का ... प्राप्त करने के उपायों पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय।

हिन्दी जगत

सम्मेलन का अधिवेशन क्यों ? हिन्दी-विद्यापीठ-घोषणा-पत्र

[हिन्दी-विद्यापीठ-कुल ने अपनी ता० २६-१-४५ की बैठक में अखिल भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के ३३ वें अधिवेशन का उदयपुर का निमन्त्रण स्वीकार होने पर अ० भा० हि० सा० सम्मेलन की कार्य-समिति को धन्यवाद देते हुए निम्नलिखित "घोषणा-पत्र" स्वीकार किया।]

अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की कार्य-समिति ने हिन्दी-विद्यापीठ उदयपुर का निमन्त्रण स्वीकार कर न केवल हिन्दी विद्यापीठ को, अपितु ... मेवाड़ और राजस्थान को एक बार और गौरवान्वित किया है। इस कृपा के ... हिन्दी-विद्यापीठ-कुल अ० भा० हि० सा० सम्मेलन की स्थायी-समिति और ... समिति अन्य सदस्यों तथा सम्मेलन के इष्ट-मित्रों का आभारी है और वह ... दिलाता है कि ३३वें अधिवेशन को सफल बनाने के लिये प्रत्येक सम्भव ... किया जायगा।

काशी-अधिवेशन में भी हिन्दी-विद्यापीठ उदयपुर की ओर से सम्मेलन ... उदयपुर के लिये निमंत्रित किया गया था; पर तब पञ्जाब की स्थिति को ... रख कर सम्मेलन ने अबोहर का निमन्त्रण स्वीकार किया। परन्तु तब से ... भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को उदयपुर निमन्त्रित करने का हिन्दी-विद्यापीठ उदयपुर का प्रयत्न जारी रहा और जयपुर में श्रीमान् श्रद्धेय पं० माखनलालजी ... एवं सुहृदवर श्री रामनाथ जी 'सुमन' के प्रोत्साहन पर 'हिन्दी-विद्यापीठ' ... ने एक बार और अपनी चिर सेवित कामना निमन्त्रण के रूप में रक्खी। यह ... सन्तोष का विषय है कि श्रद्धेय टण्डनजी तथा अन्य नेताओं ने हिन्दी-विद्यापीठ उदयपुर का वर्णन सुन कर उसके निमन्त्रण पर साग्रह ध्यान देने का ... प्रदान किया।

२१ अगस्त सन् १९३७ से हिन्दी-विद्यापीठ उदयपुर ने अपना कार्य ... किया था। प्रारम्भ में कई वर्षों से व्यक्तिगत सम्मेलन का केन्द्र चलाने वाले ...

णीय पं० उमाशंकरजी द्विवेदी "विरही" की प्रेरणा से प्रथमा तथा मध्यमा के अभ्यासक्रमों को रात्रि में दो घण्टे नियमित पढ़ाने के लिये एक विद्यालय ही चलाया गया था। पर ईश्वर के परम अनुग्रह से 'हिन्दी-विद्यापीठ' केवल सम्मेलन-परीक्षाओं के अध्ययन-अध्यापन का ही एक नियमित रात्रि-महाविद्यालय नहीं रहा—वह आज अपनी संस्थाओं तथा प्रवृत्तियों के साथ इतना फैल गया है कि ३३वें अधिवेशन के ऐतिहासिक अवसर पर इसे "राजस्थान विद्यापीठ" के रूप में बदल देने का शुभ निश्चय किया जा रहा है। हिन्दी-विद्यापीठ उदयपुर में आज (१) राष्ट्रभाषा द्वारा उच्च साक्षरता का शिक्षण (२) प्रौढ़ और लोक-शिक्षण (३) प्राचीन साहित्य की शोध-खोज, संग्रह तथा प्रकाशन (४) श्रमजीवियों एवं ग्राम्य-बालकों को पढ़ाने का काम (५) तथा अन्य साहित्यिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ स्थायी तथा रचनात्मक आधार पर चलाई जा रही हैं। उक्त कार्यों की पूर्ति के लिये इसमें सम्मेलन-परीक्षाओं के अभ्यासक्रमों को लेकर (१) रात्रि-कॉलेज (२) श्रमजीवी विद्यालय (३) प्रौढ़-शिक्षण केन्द्र (४) साक्षरता समितियां (५) रात्रि-ग्राम्यशालायें (६) प्राचीन साहित्य शोध विभाग (७) सार्वजनिक चल पुस्तकालय (८) सार्वजनिक वाचनालय (९) सरस्वती-मन्दिर (१०) ग्राम्य लोक मंच (११) विविध परिषदें तथा व्याख्यान-आसन आदि तथा संस्थायें प्रवृत्तियां विकसित की जा रही हैं। प्रारम्भ में ३) रु० के मासिक व्यय से शिक्षण, साहित्य तथा संस्कृति के जनकार्य को करने वाले इस विद्यापीठ का प्रारम्भ किया गया था और आज इसका प्रतिमास अधिक से अधिक डेढ़ हजार रुपैया खर्च है—२६ कार्यकर्ता इसमें कार्य करते हैं। हिन्दी-विद्यापीठ-कुल को परम सन्तोष है कि अपने उद्देश्यों का स्थायी तथा रचनात्मक आधार एवं शैली पर पूर्ति करने वाले एक विनीत केन्द्र के निमन्त्रण को अखिल भारतीय हिन्दी संसार ने स्वीकार किया। इससे हिन्दी विद्यापीठ को स्वीकृति तथा शक्ति प्राप्त हुई है और भविष्य में भी होगी।

'हिन्दी-विद्यापीठ-कुल' अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को उदयपुर के प्राचीन तथा गौरवपूर्ण प्रांगण में निमन्त्रित करने में अपना उत्तरदायित्व पूर्णतया [illegible]त करता है।[1] आज अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को हिन्दी की

[1] ता० १०-२-४५ को हिन्दी-विद्यापीठ-कुल ने अपना यह निमन्त्रण मेवाड़ के कर-कमलों में बहुमत से सौंप दिया। १३ व्यक्तियों की एक संयोजक तथा स्वागत कारिणी बनने तक कार्य करने वाली समिति उसने स्थापित कर दी। इस प्रकार हिन्दी-विद्यापीठ ने अपना प्रारम्भिक कर्त्तव्य पूरा कर दिया है।

—संयुक्त सम्पादक।

चतुर्मुखी सेवा का कार्य करते हुए पूरे ३२ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। भारतीय राष्ट्र के वर्तमान संघर्ष तथा रचनात्मक निर्माण के व्यापक युग में अब अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन जैसी शक्तिशाली संस्था का महत्त्व दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जाता है। राष्ट्र के इस परिवर्तन के काल में हिन्दी-विद्यापीठ-कुल यह महसूस करता है कि उदयपुर पधार कर सम्मेलन को अब नई चेतना तथा महत्त्वपूर्ण मार्ग प्राप्त करना चाहिये।

उक्त दृष्टि से हिन्दी-विद्यापीठ-कुल यह अनुभव करता है कि अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के ३३वें उदयपुर-अधिवेशन का सभापति एक ऐसा व्यक्ति हो, जो समस्त भारतीय राष्ट्र की हिन्दी-जगती को नया, दृढ़, संगठित तथा प्रगतिशील नेतृत्व दे सके; राष्ट्रभाषा हिन्दी के विशाल एवं विशद रचनात्मक तथा प्रसारात्मक कार्य को जो राष्ट्र-व्यापी गति-विधि दे सके; और जिसके प्राणवान सन्देश से समस्त राष्ट्र की हिन्दी-भारती चमत्कृत हो सके। इधर कुछ वर्षों से हमारा यह अखिल भारतीय हिन्दी-मंच संकीर्ण साम्प्रदायिकता की ओर झुकता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। जयपुर में तो यह प्रवृत्ति जैसे स्पष्ट हो गई थी। "हिन्दुस्तानी के आन्दोलन एवं भाषा के स्वरूप सम्बन्धी प्रश्नों पर मत-भेद या दृष्टि-भेद रखते हुए भी यह नितान्त आवश्यक है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने अद्वितीय राष्ट्रीय सम्बोधों, परम्पराओं और प्रगतिशील चैतन्यों को न भूले — वरन् इस संकट और बचाव के काल में उस दिशा की ओर अधिक अविचल प्रयास करे। इसके लिये यह आवश्यक है कि भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा हिन्दी का कार्य करने वाली तमाम संस्थाओं, तथा विभूतियों को एक उद्देश्य, संकल्प एवं एक सूत्र में पिरोया जाय और ऐसी सजीव गति दी जाय कि प्रतिरोधात्मक और भ्रान्ति मूलक आन्दोलन जहां ठप हो जाँय, वहाँ राष्ट्रभाषा, उसके साहित्य और राष्ट्रीय संस्कृति को अग्रसर करनेवाले प्रत्येक प्रगतिशील हिन्दी कार्य को संजीवन और मार्ग मिले। ऐसा तभी संभव हो सकता है, जब ३३वें उदयपुर-अधिवेशन का सभापति समस्त राष्ट्र का विश्वास और श्रद्धा का पात्र हो, जो हिन्दी के हित को सुरक्षित रखते हुए उसके राष्ट्रीय महत्त्व को दृढ़ता पूर्वक आगे बढ़ा सके।

हिन्दी-विद्यापीठ-कुल यह भी अनुभव करता है कि अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का रचना और विधान की दृष्टि से भी पुनर्संगठन होना चाहिये। अब वह समय आ गया है, जब प्रान्तवार सम्मेलन को जहां निश्चित योजना से फैलना चाहिये वहां उसे अपने शाखा-कार्यालय और रचनात्मक केन्द्र स्थापित करने चाहिये। राष्ट्र के चारों कोने में उसे फैल कर प्रत्येक हिन्दी-सेवी तथा हिन्दी-प्रेमी को

आवृत में संगठित करना चाहिये। हिन्दी-विद्यापीठ कुल का यह निश्चित मत है कि केवल परीक्षाओं के प्रसार मात्र से ही अब सम्मेलन को सन्तुष्ट न रहना चाहिये। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रसार के लिये उसे ठोस रचनात्मक कार्यक्रम उदयपुर में बनाना चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि सम्मेलन अपने वर्तमान विधान की ओर दृष्टिपात करे और मौजूदा आवश्यकताओं के अनुकूल अपने संगठन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करे। हिन्दी-विद्यापीठ-कुल एकमत से यह अनुभव करता है कि युद्धोत्तर भारत में अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन को राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण-कार्य में प्रमुख भाग लेना होगा। हिमालय से कन्या कुमारी तक भारत के राष्ट्रीय अन्तरात्मा और संजीवनी के विकास का भगीरथ कार्य उसे करना है। हिन्दी की गति-मति की पूर्ण रक्षा करते हुए, संकीर्णताओं और वादों से दूर रह कर अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन को उदयपुर में दृढ़ता और साहस के साथ अपना आत्म-निरीक्षण कर आगे बढ़ना है। आज वह समय आ गया है जब सम्मेलन को राष्ट्र की प्रगति और चैतन्य की वाहक संस्था बना कर राष्ट्र की भारती के विकास का एक अखिल भारतीय केन्द्र बना दिया जाय। इसके लिये उसे हिन्दी साहित्यकारों का ही नहीं अहिन्दी प्रान्तों के साहित्यकारों का भी सहयोग लेना चाहिये। क्या ही अच्छा हो सम्मेलन के अन्तर्गत "आन्तर प्रान्तीय अहिन्दी-प्रान्त साहित्यकार सम्मेलन" जैसी वस्तु प्रारंभ की जा सके। अपने ही साहित्यकारों और विद्वानों का उसे अधिक से अधिक सहयोग प्राप्त करने के लिये भी सम्मेलन को योजना बद्ध कार्य उदयपुर में प्रारंभ करना चाहिये।

उक्त नम्र सुझाव हैं और केवल संकेत मात्र हैं 'हिन्दी-विद्यापीठ-कुल' सम्मेलन को उसके सामने मुंहबाये खड़े हुए कार्य में सम्पूर्ण सहयोग देने का वचन देता है और देश की समस्त हिन्दी संस्थाओं में अपने इस घोषणा-पत्र पर विचार करने के लिये प्रार्थना करता है।

लक्ष्मीलाल जोशी — जनार्दनराय नागर
कुलपति — पीठ स्थविर

दीवान बहादुर सर टी. विजय राघवाचार्यजी, प्रधान मंत्री, मेवाड़ राज्य की ओर से।

डी० ओ० नं० १६७७–७८. — महकमाखास, उदयपुर।
१७ जनवरी १९४५

(विषय: अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन।)

प्रिय महोदय,

कृपया अपने १६ नवम्बर १९४४ के प्राइम-मिनिस्टर को लिखे अपने पत्र को

देखिये। प्राइम-मिनिस्टर अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के आगा... अधिवेशन को उदयपुर निमंत्रित करने के विचार का समर्थन करते हैं। सरकार ... संभव सहायता करेगी।

आपका

(हस्ता०) बी. महता. सेक्रेटरी स्टेट कार्या...

[श्री रामनाथ 'सुमन' हिन्दी विद्यापीठ महा-विद्यालय में उत्तमा ... मौखिक परीक्षक होकर पधारे तब आप श्रीमान् प्रभाशचन्द्रजी चटर्जी, फाइनेन्स ... रेवेन्यू मिनिस्टर, श्रीमान् रामगोपालजी त्रिवेदी मिनिस्टर-इन-वेटिङ्ग तथा चीफ सेक्रे... श्री भगवतसिंहजी महता से मिले थे। तीनों महानुभावों ने अ० भा० हि० सा... सम्मेलन के ३३वें अधिवेशन के उदयपुर में होने की आवश्यकता प्रकट की। ... होना आप सज्जनों ने उदयपुर का सौभाग्य बताया। श्री सुमनजी को आप तीनों ... मिल कर बड़ा सन्तोष हुआ। सर टी० विजय राघवाचार्यजी तब उदयपुर में नहीं ... अतः वे एक पत्र छोड़ गये। पत्र का उत्तर दिया गया है। सम्पादक]

हमारी डाक

[आये हुए पत्रों से उद्धरण]

मैं आशा करता हूँ कि उदयपुर की निर्मल और श्रमशीला, शक्तियाँ, रियास... के सम्मुख अपने अधिवेशन की उत्तमता का उदाहरण पेश कर सकेंगी। यदि एक ... आप मुझ से मिल लें, तो एक साथ कुछ चर्चा हो ले और नोट तैयार हो। पत्रों ... बहुत कम लिखा जा सकेगा।

माखनलाल चतुर्वेदी, खण्ड...

६—३—४५

आपका पत्र मिला। उदयपुर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन आ रहा है ... खुशी की बात है। मेरा विचार 'भारतीय-परिषद्' का है। किन्तु सहयोग की इ... मुझे आवश्यकता है।

कन्हैयालाल मुंशी, बम्बई

६—३—४५

आपका पत्र पाकर आनन्द हुआ। विद्यापीठ ने सम्मेलन को निमन्त्रण दे... उचित ही किया। विद्यापीठ का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करने का भी सौभाग्य मिला है ... विद्यापीठ का वृत्तान्त मैं जानता हूँ अधिवेशन की तिथियां मालूम पड़ने पर उपस्थि... आदि के बारे में कहा जा सकेगा, वैसे आना तो अवश्य ही है। प्रस्तावादि भी ... समय यहां से सुझाये जावेंगे। निधि व रचनात्मक सम्बन्धी सुझाव आने चाहिये...

आपका सुयश चाहता हूँ।

मा० वि० कीबे, इन्दौर
१०-३-४५.

ईश्वर उदयपुर में होने वाले अ. भा. हि. सा. सम्मेलन का कार्य सकुशल व सफलतापूर्वक पूर्ण करे। आपने जो रचनात्मक सुझावों के लिये लिखा, यह आपकी सज्जनता का परिचायक है। उदयपुर हिन्दी-विद्या-पीठ के जो संस्थापक और सफल संचालक हैं, उनके द्वारा मेरे जैसे अननुभवी व्यक्ति से सुझाव मांगना अपने अनुगत को मान देने के लिये ही है। मैं यथा समर्थ सेवा के लिये प्रस्तुत हूँ और ईश्वर से आपके अनुष्ठान की सफलता का प्रार्थी हूँ।

विश्वेश्वरनाथ रेऊ, जोधपुर
८—३—४५

सम्मेलन संबंधी बातें भी कुछ दिमाग में हैं। और भी नई बातें मनमें पैदा हुई हैं। आप एक रोज के लिये आ जाओ तो कैसा? उदयपुर सम्मेलन को जयपुर सम्मेलन से बहुत आगे बढ़ जाना है। विवादास्पद व लड़ाई-झगड़ों की बातों में न पड़ कर राजस्थान के द्वारा सम्मेलन के उद्देश्य की पूर्ति का व सम्मेलन के द्वारा राजस्थान के निर्माण कार्य का ही हमें ध्यान रखना है। रचनात्मक दृष्टि से मिलने पर सब बातें करेंगे।

हरिभाऊ उपाध्याय अजमेर
२-३-४५

निमंत्रण से अब तक का कार्य :—

जयपुर हिन्दी-विद्यापीठ उदयपुर के प्रधान मंत्री श्री जनार्दनराय नागर ने हिन्दी-विद्यापीठ की ओर से अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के ३३वें अधिवेशन को उदयपुर निमंत्रित किया। मेवाड़ की प्रायः सभी मुख्य मुख्य सार्वजनिक संस्थाओं ने हिन्दी-विद्यापीठ के इस निमन्त्रण को अपना समर्थन प्रदान करते हुए सम्मेलन को उदयपुर पधारने के लिये साग्रह लिखा। फलतः अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की कार्य-समिति ने जयपुर-अधिवेशन के प्रस्तावानुसार ता० १५ जनवरी १९४५ की अपनी बैठक में हिन्दी-विद्यापीठ उदयपुर का निमन्त्रण स्वीकार किया।

सूचना मिलने पर बसन्त-पञ्चमी के दिन से ही हिन्दी-विद्यापीठ के प्रधान-मंत्री द्वारा कार्यारम्भ कर दिया गया। निमन्त्रण स्वीकृति की सूचना और आगे के संयोजन एवं कार्य-क्रम पर हिन्दी-विद्यापीठ-परिषद् तथा हिन्दी-विद्यापीठ-कुल में क्रमशः विचार

हुआ । तदनुकूल ता० २६-१-४५ को हिन्दी-विद्यापीठ-कुल की बैठक में विचार और यह निश्चय किया गया कि मेवाड़ के साहित्यकारों, विद्वानों तथा हिन्दी नागरिकों के सहकार से हिन्दी-विद्यापीठ स्वागत-समिति बना कर अधिवेशन को लता के साथ सम्पन्न करे । पर कई एक इष्ट-मित्रों तथा हितैषियों की सलाह हुई निमन्त्रण मेवाड़ ही की ओर से होना चाहिये; एक संस्था की ओर से नहीं। इसमें मेवाड़ तथा हिन्दी-विद्यापीठ की शोभा है । इस पर हिन्दी-विद्यापीठ कार्य-कारिणी प्रस्ताव पर ता० ४-२-४५ को हिन्दी-विद्यापीठ कुल की पुनः बैठक हुई और बहुमत हिन्दी-विद्यापीठ ने अपना स्वीकृत निमन्त्रण मेवाड़ के कर-कमलों में सौंप दिया। ही निम्नलिखित १३ व्यक्तियों की एक संयोजन समिति बना दी गई, जो स्वा कारिणी के संगठन तक कार्य भी करे । इस संयोजन समिति ने आवश्यकतानुसार सज्जनों को और कोआप्ट कर लिया ।

सदस्य निम्नलिखित हैं :—

(१) श्रीमान् पं० लक्ष्मीलालजी जोशी, कुल-पति हिन्दी-विद्यापीठ
(२) श्रीमान् पं० जनार्दनरायजी नागर
(३) ,, भवानीशंकरजी वैद्य
(४) ,, मोहनलालजी सुखाड़िया
(५) ,, यमुनालालजी वैद्य
(६) ,, हमीरलालजी मुड़िया
(७) ,, भेरूलालजी गेलड़ा
(८) ,, भगवतसिंहजी महता
(९) ,, रा० कु० मानसिंहजी
(१०) ,, धर्मेन्द्रजी शिवहरे
(११) ,, केसरीलालजी बोरदिया
(१२) ,, वी० ग० वारपूते
(१३) ,, लालचन्दजी रांका
(१४) ,, पं० मोतीलालजी मेनारिया
(१५) श्रीमती कमलाकुमारीजी श्रोत्रिय

ता० ३० अप्रेल १९४५ तक ३) रु० देकर स्वागत-सदस्य बनने की अवधि निश्चित की गई ।

संयोजन-समिति की प्रथम बैठक ता० १०-२-४५ को हुई, जिसमें निश्चय किया गया कि ता० ३० अप्रेल १९४५ तक ३) रु० देकर सदस्य बनने वाला सज्जन ही स्वागत-समिति का सदस्य मान लिया जाय और ७ मई १९४५ को स्वागत कारिणी-समिति का चुनाव करवा लिया जाय । श्रीमान् भगवतसिंह महता, सेक्रेटरी स्टेट कौन्सिल, संयोजक-समिति के अर्थ-संग्रह-मंत्री चुने गये । श्री वी० ग० वारपूते को जगह तथा स्वयंसेवकों के बारे में संयोजन का काम दिया गया । श्री केसरी लालजी बोरदिया को सम्मेलन-परिषदों का संयोजन तथा श्री देवीलालजी सामर को आमोद-प्रमोद के संयोजन का भार दिया गया । पं० मोतीलालजी मेनारिया को प्रदर्शिनी का विभाग सौंपा गया । निश्चय हुआ कि संयोजक-समिति का मन्त्री

र्य करे। संयोजक-समिति ने यह भी निश्चय किया कि भारतवर्ष के हिन्दी सेवी तथा मी मात्र के पास सम्मेलन का सन्देश पहुँचाने के लिये "अधिवेशन-समाचार" नामक लेटिन निकाला जाय। संयोजक-समिति ने अपनी पहली बैठक में "हिन्दी-विद्यापीठ" सम्मेलन को निमन्त्रण देने के लिये धन्यवाद दिया और सहर्ष अधिवेशन संबंधी त्कालिक भार ग्रहण किया। हिन्दी-विद्यापीठ कुल का निमन्त्रण-संबंधी घोषणा-पत्र पनाते हुए संयोजक-समिति ने उसके वितरण का निश्चय किया।

अब स्वागत-समिति के सदस्य बनाये जा रहे हैं तथा साधारण संयोजन और चार का कार्य जमाया जा रहा है। श्रीमान् भगवतसिंहजी महता ने अर्थ-संग्रह के लिये कार्य प्रारम्भ कर दिया है। प्रचार का कार्य भी प्रारम्भकर दिया गया है। अभी तो कार्यालय हिन्दी-विद्यापीठ प्रधान-कार्यालय में ही है; पर स्वागत-कारिणी बनते ही कार्यालय अलग कर दिया जायगा। वातावरण बन रहा है।

अर्थ संग्रहार्थ श्रीमान् भगवतसिंहजी महता ने एक अर्थ-समिति की स्थापना । श्रीमान् शोभालालजी गेलड़ा ने अर्थ-संग्रह की योजना श्रीमान् भेरूलालजी ड़ा की सहायता से बना कर तदनुकूल कार्यारम्भ कर दिया है। श्री शोभालालजी इसका संयोजक भी बना दिया गया तथा श्रीमान् भगवतसिंहजी इस समिति के ध्यक्ष रहे। अर्थ-समिति ने सम्मेलन के अधिवेशन का व्यय २०,०००) रु० माना । अर्थ-समिति के निम्नलिखित सदस्य हैं :—

मान् लक्ष्मीलालजी जोशी	श्रीमान् भगवतसिंह महता (अध्यक्ष)
महता सा० जसवन्तसिंहजी	,, शोभालालजी गेलड़ा (संयोजक)
बन्सीलालजी वकील	,, जीवनसिंहजी चोरड़िया
भूरालालजी बया	,, सत्यप्रसन्नसिंहजी भण्डारी
मनोहरलालजी चतुर	,, जनार्दनरायजी नागर

बीकानेर राज्य में साहित्यिक दौरा

साहित्य समिति सरदार शहर (बीकानेर) के निमन्त्रण पर हिन्दी साहित्य लन प्रयाग के साहित्य मन्त्री श्री रामनाथ 'सुमन' ने ३१ मार्च से ४ अप्रेल तक गढ़ तथा सरदार शहर का दौरा किया। १ अप्रेल को रतनगढ़ की साहित्यिक ओं का निरीक्षण, आवश्यक सुझाव तथा कार्यकर्ताओं से परिचय आदि के बाद 'सुमन' जी ने रात को 'युवक समाज और गृहजीवन' विषय पर उपयोगी और रक भाषण दिया। २ अप्रैल को सरदार शहर में साहित्य समिति के वार्षिक वेशन के सभापतित्व का कार्य और उसी सिलसिले में 'सुमन' जी ने 'भारतीय त्य' और हमारी संस्कृति विषय का रोचक प्रतिपादन किया। ३,४ अप्रैल को

नगर की संस्थाओं के निरीक्षण के साथ प्रमुख बुद्धिजीवी साहित्यिकों और लि
के प्रश्नों का उत्तर भी 'सुमन' जी ने दिया। इसी अवसर पर सार्वजनिक पुस्त
की ओर से 'गृहधर्म की पुनर्रचना' पर 'सुमन' जी का सारगर्भित भाषण बहुत
सभा में हुआ। उपस्थिति अधिक होते हुए भी 'सुमन' जी का भाषण सब
लिए रोचक उपदेशप्रद और नवजागरण का द्योतक रहा। ऐसे साहित्यिक
हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि में सहायक होंगे इसका अनुमान 'सुमन' जी के
से सहज ही हो जाता है।

प्राप्ति स्वीकार

(ले०—लक्ष्मीनारायण मिश्र)

अटैचीकेस—कहानी संग्रह, लेखक शिवचन्द्र शर्मा अद्भुत। प्रा
साहित्य सेवक संघ, छपरा मूल्य १।।)

इस संग्रह में लेखक की पाँच कहानियाँ संग्रहीत हैं। इसमें सन्देह नहीं
भाव और भाषा पर समान अधिकार दिखा सका है, किन्तु कहानी कला है
नहीं कि वह ध्वंसात्मक है बल्कि इसलिए कि वह रचनात्मक है। अपनी कहानि
में लेखक को प्रेम के भीतर केवल हाहाकार और चीत्कार ही मिल सका है यहीं
है कि इन सभी कहानियों के प्रधानपात्र अस्वाभाविक रूप में मर जाते हैं।
के अधिक पात्रों का असत्य रूप में अन्त कर लेखक अपनी समझ के अनुसार
तत्व पा जाता है किन्तु प्रेम का तत्व मृत्यु नहीं है। मनचले कुमार और कु
यदि इसी तरह आत्महत्या करते चलें, या सभी बीमार पड़कर क्षय, ज्वर के
हों तब तो फिर जिस प्रेम के नाम पर वे समाज का चीर हरण करते हैं वह प्रेम
का गला घोंट देगा। प्रेम और कला दोनों ही का निखार शील और संयम में
है और जहां शील और संयम का अभाव है वहां प्रेम और कला दोनों ही क्षा
है। लेखक को यह जान लेना चाहिए।

"उसी को जिसने मेरे मानस में साहित्य के अविरल अनवरत,
प्रवाहित स्रोत को जीवनोन्मुख किया। और जो अब मुझसे दूर, बहुत दूर है
जिसे मैं कभी भूल नहीं सकता।" समर्पण के इन शब्दों को साधारण पाठक
समझकर विस्मित होंगे किन्तु विवेक की आँच लगते ही ये शब्द वर्फ की त
कर गायब हो जाते हैं और इनके नीचे लेखक की वह मनःस्थिति दिखाई

जिसका धरातल वासना जनित अतृप्ति है। स्वतन्त्र प्रेम के नाम पर समाज के विरुद्ध कोड़ा लेकर निकल पड़ने से काम नहीं चलेगा। सोचना तो यह होगा कि कोड़े का प्रयोग किसकी पीठ पर किया जाय। व्यक्तियों की पीठ से समाज की पीठ बनी है और उन्हीं व्यक्तियों में इस पुस्तक का लेखक भी है। भावावेश और किशोरावस्था की रंगीनी से निकलकर लेखक जब नैसर्गिक विवेक से जीवन और उसकी समस्याओं की ओर देखेगा तो उसे स्वयं मालूम हो जाएगा कि समाज का संयम व्यक्ति की ही रक्षा के लिए है और उसे तोड़ कर तो वह स्वंय ही अरक्षित हो जाता है।

अपरिचिता—कहानी-संग्रह। लेखक 'कुंवर केशरी' चंद्र सेठिया। नवयुग ग्रन्थ कुटीर बीकानेर मूल्य १।)

लेखक की बारह कहानियों का संग्रह यह पुस्तक है। विचार मूलक होते हुए भी इन कहानियों में उत्तेजना का वातावरण नहीं है। आज दिन हिन्दी के कथा साहित्य में प्रचार की उत्तेजना इतनी अधिक बढ़ गई है कि सही और स्वाभाविक जीवन की बनावट बहुत कम देखने को मिलती है। इस संग्रह की कहानियां जीवन की स्वाभाविक बनावट में कुछ ऐसे निरालेपन के साथ मिल जाती हैं कि इन्हें बारबार पढ़ने का जी होता है। विस्मय, कौतूहल और बाद को चिन्तन, इन कहानियों के विकास का यही क्रम है और यही क्रम है जीवन के विकास का। 'त्रिकोण' कहानी में उपेक्षिता पत्नी कमला विदुषी सपत्नी सुधा की आत्मग्लानि के फल स्वरूप पुनः बैरिस्टर पति मनोहर को पा जाती है। सुधा विष पीकर कमला की गोद में जा गिरती है और वहीं मर जाती है। लेखक को इस सस्ती मृत्यु के चक्कर में न पड़ कर उसकी आत्मग्लानि को इतना स्वस्थ और पूर्ण करना चाहिए था कि सपत्नीत्व का भाव ही मिट जाता। यदि अवसर आही जाय तो क्या सपत्नियां दो लताओं की तरह एक ही वृक्ष का आश्रय नहीं ले सकती। यह सुझाव ठीक है किन्तु सुधा का विष पान पाठक के मन में विकृति नहीं पैदा करता इसलिए कुंवर केशरीचन्द्र इस दोष से मुक्त भी हैं। 'पुनर्मिलन कहानी में पति के खो जाने के कारण प्रभा विधवा करार दी गई और उसे यह अधिकार भी समाज में न मिला कि वह अन्य सखियों के साथ होली भी खेले। मेधावी श्वसुर गोविन्द ने अपनी सुधार वृत्ति के कारण उसका पुनर्विवाह कर दिया। इस दूसरे पति के साथ कभी उसे सम्मान न मिला और वह पहली सास के यहां आई और उसी समय उसका गुम पति भी साधुओं की मण्डली से निकालकर गोविन्द सिंह द्वारा लाया गया। यदि प्रभा का दूसरा विवाह न हुआ होता तब तो वह इस पति के साथ रह जाती। प्रभा की यह स्थिति विधवा विवाह के प्रचारकों को भी विचार में डाल देती है और ऐसा लगता है कि नहीं विधवा विवाह ठीक नहीं। जीवन के प्रति निष्ठा साहित्य और

कला की सबसे बड़ी शक्ति है और यह शक्ति इस लेखक में है। आशा है भविष्य में लेखक अपनी कहानियों में और भी विकसित धरातल दे सकेगा।

प्रसाद—ले० काज़ी अशरफ़ महमूद। प्रकाशक के० ए० महमूद कलचरल रिसर्च इन्सटिट्यूट, नागपूर।

कविता संग्रह जिसमें कविकी ब्रजदर्शन; शुभलग्न, रहस्य, दर्शनोल्लास विरागिनी और उन्मना शीर्षक कवितायें दी गई हैं। खड़ी बोली में ब्रज भाषा की प्रवणता और माधुर्य लाने में कवि को विस्मय जनक सफलता मिली है। श्रीकृष्ण और गोपियों के प्रेम के आलम्बन का इस युग के अनुरूप कवि ने जो वर्णन किया उसमें कहीं कहीं तो रहीम और रसखान की तन्मयता, निष्ठा और मन में अनायास पैठ जाने वाली भक्ति और विश्वास की धारा है। इस देश का मुसलमान द्वारा देश की वाणी और संस्कृति में किस अंश तक सही हो सकता है काजी असरफ़ महमूद की इन छोटी कविताओं से स्पष्ट हो जाता है। संग्रह उठा लेने पर पढ़े बिना जी नहीं मानता और यह काजी असरफ के प्रकृत कवि होने का निश्चित प्रमाण है।

रिमिक झिमिक झिम
रिमिक झिमिक झिम
नर्तन पद हरि आये,
हो! हो! नर्तन पद हरि आये,
मेरे प्राण भुलावन आये,
मेरे नयन भुलावन आये।

इस तरह की मनोरम पंक्तिया संग्रह में सर्वमय हैं। इस क्षेत्र में हम सच्चे कवि का स्वागत करते हैं।

———

जातक

[प्रथम तथा द्वितीय खण्ड]

अनुवादक : भदन्त आनन्द कौसल्यायन

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है कि "विश्व के वाङ्मय में 'जातक' जन-साधारण की सब से पुरानी कहानियाँ हैं, मनोरंजकता, सुरुचि, सरलता, आडम्बरहीन सौन्दर्य और शिक्षाप्रद होने में उनका मुक़ाबला नहीं हो सकता। ये बच्चों के लिये सरल और आकर्षक, जवानों और बूढ़ों के लिये भी रुचिकर और विद्वानों के लिये प्राचीन भारत के जीवन का जीता-जागता चित्रण करने के कारण अत्यन्त मूल्यवान हैं।"

प्रथम खंड, पृष्ठ संख्या ५४०—५५; डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

द्वितीय खंड, पृष्ठ संख्या ४६४—२४ डिमाई साइज़; सजिल्द मूल्य ५)

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अभूतपूर्व प्रकाशन

प्रेमघन-सर्वस्व

(प्रथम भाग)

'दो शब्द'-लेखक, माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन

परिचय-लेखक, स्वर्गीय आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल

आधुनिक हिन्दी के एक निर्माता, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व सभापति, स्वर्गीय उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की सम्पूर्ण कविताओं का विशाल संग्रह-ग्रंथ। हिन्दी में प्रथम और अपूर्व काव्य। लेखक के चित्रों से सुसज्जित और सजिल्द।

मूल्य ४॥)

साहित्य मंत्री—हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

रजिस्टर्ड नं० ए०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकें

(१) सुलभ साहित्यमाला

१ भारत-गीत =)
२ राष्ट्रभाषा ॥)
३ शिवाबावनी =)
४ पद्मावत पूर्वार्द्ध १), १॥)
५ सूरदास की विनयपत्रिका =)
६ नवीन पद्यसंग्रह १।)
७ बिहारी-संग्रह =)
८ सती कथायें ॥)
९ हिन्दी पर फारसी का प्रभाव ॥=)
१० ग्रामों का आर्थिक पुनरुद्धार १।)

(२) साधारण पुस्तकमाला

१ अकबर की राज्यव्यवस्था ३)

(३) वैज्ञानिक पुस्तकमाला

१ सरल शरीर-विज्ञान ॥), ।॥)
२ प्रारम्भिक रसायन १)
३ सृष्टि की कथा १)

(४) बाल-साहित्य माला

१ बाल नाटक-माला
२ बाल-कथा भाग २
३ बाल विभूति
४ वीर पुत्रियाँ

(५) नवीन पुस्तकें

१ सरल नागरिक शास्त्र
२ कृषि प्रवेशिका
३ विकास (नाटक)
४ हिंदू-राज्य शास्त्र
५ कौटिल्य की शासन-पद्धति
६ गावों की समस्यायें
७ मीराँबाई की पदावली
८ भट्ट निबंधावली
९ बंगला-साहित्य की कथा
१० शिशुपाल वध
११ ऐतिहासिक कथायें
१२ दमयन्ती स्वयंवर

नवीन पुस्तकें

१—मैथिली लोकगीत—रामइकबालसिंह 'राकेश', भूमिका लेखक—परिडत अमरनाथ झा
२—गोरखबानी—स्व० डाक्टर पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल
३—दीवाली और होली—(कहानी संग्रह) श्री इलाचन्द्र जोशी
४—महावंश—भदन्त आनन्द कौसल्यायन
५—हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—श्री नन्ददुलारे वाजपेयी
६—स्त्री का हृदय—(एकांकी नाटक) श्री उदयशंकर भट्ट
७—राजस्थानी लोकगीत—स्व० सूर्यकरण पारीक
८—सामान्य भाषाविज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना
९—काव्यप्रकाश—मम्मटाचार्य, अनुवादक स्व० हरिमंगल मिश्र
१०—समाचार-पत्र शब्दकोष—डा० सत्यप्रकाश डी० एस-सी०

प्रकाशक—श्रीरमाप्रसाद घिल्डियाल, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग।
मुद्रक—श्री रामचरण अग्रवाल, हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग।